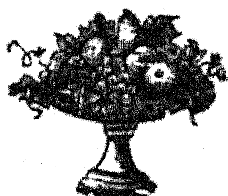
आनन्द मठ



स्वर्गीय बंकिमचन्द्र चटर्जी।

सस्ती ग्रन्थमाला-संख्या १ ।

स्वर्गीय बाबू बङ्किमचन्द्र चटर्जी कृत

आनन्द मठ



अनुवादक—

आरा निवासी

पण्डित ईश्वरीप्रसाद शर्म्मा

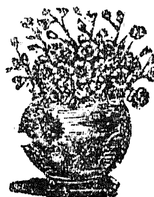
सम्पादक—

पण्डित छविनाथ पाण्डेय, बी० ए० एल० एल० बी०

हिन्दी पुस्तक एजेन्सी
१२६, हरिसन रोड,
कलकत्ता ।

द्वितीयवार]   सं० १९८२   [मूल्य ॥)

प्रकाशक—
हिन्दी पुस्तक एजेन्सी
१२६, हरिसन रोड,
कलकत्ता।



मुद्रक—
किशोरीलाल केडिया
"वणिक् प्रेस"
१, सरकार लेन कलकत्ता।

प्रकाशकका निवेदन

आज हम हिन्दी-संसारके सामने सस्ती उपयोगी ग्रन्थ-मालाका प्रथम रत्न, आनन्द-मठ लेकर उपस्थित होते हैं। इतनी ग्रन्थ-मालाओंके होते हुए भी इस ग्रन्थ-मालाके निकालनेका एकमात्र यही उद्देश्य है कि उपयोगी और अलभ्य पुस्तकोंको पाठकोंके पास स्वल्प मूल्यमें पहुंचानेकी अधिकाधिक चेष्टा की जाय। प्रकाशनकी व्यवसायिक वृत्तिपर ध्यान न देकर केवल प्रचारके उद्देश्यसे ही इस मालाके रत्न निकाले गये हैं।

'आनन्द-मठ'को इस मालाका प्रथम रत्न बनानेका यही कारण है। इस पुस्तककी उपयोगिता सर्वविदित है। इसका प्रचार घर-घर होना चाहिये। पर इसके लिये कोई उपयुक्त साधन नहीं था। पहला अनुवाद, जो वेंकटेश्वर प्रेस बम्बईसे निकला था, दुष्प्राप्य है, दूसरा अनुवाद भी अभी एक अन्य स्थानसे निकला है, जिसमें मूल ग्रन्थसे बहुत काट-छांटकर अनुवाद करनेपर भी मूल्य बहुत अधिक रखा गया है, अर्थात् उपयोगिता-का ख्याल न कर लाभपर विशेष दृष्टि रखी गयी है। इसलिये हमने यह तीसरा अनुवाद निकालनेका प्रयत्न किया है जो बहुत ही कम मूल्यपर पाठकोंकी सेवामें उपस्थित किया गया है। आशा है, हिन्दीके उदार पाठक इस मालाको सर्वथा उपयोगी समझकर इसे अपनानेकी चेष्टा करेंगे।

अन्तमें हम पण्डित जगन्नाथप्रसादजी चतुर्वेदीके अतिशय कृतज्ञ हैं, जिन्होंने असीम कृपा कर बंगला 'वन्दे मातरम्' गानका अपना हिन्दी पद्यमय अनुवाद उद्धृत करनेकी आज्ञा दी है।

विनीत

प्रकाशक

प्राग्भाषण

——:०:——

स्वर्गीय बङ्किमचन्द्रका नाम बंगालके आबाल-वृद्ध-वनिता सभी जानते हैं। उनके उपन्यास वहां सभी श्रेणी और सभी अवस्थाके लोगोंके प्रिय हैं। उनके समान प्रतिभाशाली औपन्यासिक भारतके किसी प्रान्तमें पैदा नहीं हुआ। उनका एक-एक उपन्यास बहुमूल्य रत्नके समान है। हिन्दीमें भी उनके उपन्यासोंके अनुवाद हो चुके हैं और हिन्दी पढ़नेवालोंमें उनकी पुस्तकोंका कैसा प्रचार है, वह इसीसे समझ लीजिये कि उनकी एक-एक पुस्तकके भिन्न–भिन्न अनुवाद भिन्न-भिन्न स्थानोंसे निकल कर बराबर बाजारमें बिकते रहते हैं।

यों तो उनके सभी उपन्यास प्रशंसनीय, पठनीय और सुविख्यात हैं, तथापि जबसे लार्ड कर्जनने १६०५ ई० में बंगालके दो टुकड़े किये, तबसे 'आनन्दमठ' का नाम सर्वापेक्षा प्रसिद्ध हो गया है। जो 'वन्देमातरम्' मन्त्र इस समय सारे देशकी जबानपर हर जगह हर घड़ी मौजूद रहता है, जिस 'वन्देमातरम्' गानको हम अपना राष्ट्रीय गान मानते हैं, जिस 'वन्देमातरम्' ध्वनिको मुंहसे निकालनेके अपराधपर ही बंगालके दो टुकड़े किये जानेसे दुखित बंगालियोंको पुलिस और न्यायालयोंसे बड़े-बड़े दण्ड दिये गये, वह मन्त्र और गान इस पुस्तकमें दिया हुआ है। इसी ग्रन्थमें पहलेपहल भारतीय राष्ट्रको जन्मभूमिमें मातृभाव रखना सिखलाया गया था और 'कविके मुखसे निकले हुए इस दिव्यादेशकी अभिव्यक्तिका अवसर प्रदान करनेहीके लिये मानों बंगालके टुकड़े किये गये और बंगालियोंने इस आदेशको सारे देशमें फैला दिया। इस समय बङ्किम केवल बंगालकी ही सम्पत्ति नहीं;

सारे देशकी सम्पत्ति हैं। इस गौरवको उन्होंने 'आनन्द मठ' लिखकर ही प्राप्त किया है।

इसी कारण 'आनन्द मठ' का इतना आदर है। कुछ दिन हुए, इसका अनुवाद भी हिन्दीमें निकला था; पर इधर वह दुष्प्राप्य हो रहा था, इसीसे हमारा विचार इसका अनुवाद करनेका हुआ। थोड़ी कापी लिखी जानेपर हमें हालका छपा हुआ एक दूसरा अनुवाद भी देखनेको मिला। परन्तु जब हमने उन दोनों अनुवादोंको मूलसे मिलाया, तो कुछ भूलें नजर आयीं, इसलिये हमने अनुवादका काम न रोककर इसे पूरा कर डाला। उन अनुवादोंमें क्या क्या त्रुटियां हैं, वह सब हम यहां बतलानेकी कोई जरूरत नहीं समझते। सिर्फ इतना ही कहना चाहते हैं कि हमने इस अनुवादमें मूलका रस-भङ्ग नहीं होने दिया। कहीं कोई वाक्य, शब्द या वाक्यखण्ड समझमें न आनेके कारण, छोड़नेकी चेष्टा नहीं की; तथा अनुवादकी भाषा अत्यन्त सरल रखनेका प्रयास किया है। साथ ही मूलमें जो दो परिशिष्ट अंगरेजीमें हैं, उनका हिन्दी-अनुवाद भी दे दिया है; क्योंकि यदि उन्हें अंगरेजीमें ही रहने दिया जाता, तो वह भाषा न जाननेवाले उससे कुछ भी लाभ नहीं उठा सकते। आशा है, पाठकोंको हमारा यह परिश्रम प्रिय प्रतीत होगा।

आरा, आषाढ़ शुक्ला १ सं १९७९ — निवेदक ईश्वरीप्रसाद शर्मा

कथा मुख



बड़ी दूरतक फैला हुआ घना जङ्गल है। और और तरहके पेड़ मौजूद होनेपर भी अधिकतर शालके ही वृक्ष दिखाई पड़ते हैं। उन पेड़ोंके सिरे और शाखा-पत्र एक दूसरेसे ऐसे मिले हुए हैं, और बहुत दूरतक वृक्षोंकी ऐसी घनी श्रेणी बन गयी है, कि उनके बीचमें तनिक भी छिद्र या फाँक नहीं मालूम पड़ती; यहांतक कि, प्रकाश आनेका भी कहींसे रास्ता नहीं रह गया है। इस प्रकार वृक्षके पल्लवोंका अनन्त समुद्र हवाकी तरङ्गोंपर नाचता हुआ, कोसोंतक फैला हुआ दिखाई पड़ता है। नीचे घोर अन्धकार है। दोपहरमें भी सूर्यकी रोशनी साफ नहीं मालूम पड़ती। वहांका दृश्य बड़ा ही भयानक मालूम पड़ता है; इसीसे उसके भीतर कभी कोई आदमी नहीं जाता। पत्तोंकी लगातार खड़खड़ाहट और जंगली जानवरों तथा चिड़ियोंकी बोलीके सिवाय और कोई शब्द वहाँ नहीं सुनाई पड़ता।

एक तो इस लम्बे चौड़े और घने जंगलमें आप ही सदा अन्धकार छाया रहता है; दूसरे, रातका समय, फिर क्या पूछना है? दोपहर रात बीत गयी है—बड़ी अँधेरी रात है। जंगल तो जङ्गल, बाहर भी घुप अन्धेरा है; हाथको हाथ नहीं सूझता। वनके भीतर तो ऐसा अन्धेरा हो रहा है, जैसा भूगर्भमें होता है।

सारे पशु-पक्षी चुप हैं। न जाने कितने, लाखों-करोड़ों पशु पक्षी, कीट पतङ्ग इस जङ्गलमें बसेरा करते हैं; पर इस समय किसीकी बोली नहीं सुनाई पड़ती। उस अन्धकारका अनुमान भले ही हो जाय; पर शब्दमयी पृथ्वीकी इस निस्तब्धताका तो अनुमान ही नहीं हो सकता। उसी अनन्त शून्य अरण्यमें, उसी सूचीभेद्य अन्धकारमयी रात्रिमें, उस प्रगाढ़ निस्तब्धताको भङ्ग करते हुए न जाने किसने कहा,—"मेरी मनोकामना पूरी न होगी?"

इस आवाजके बाद ही वह अरण्य मानों फिर निस्तब्धताके समुद्रमें डूब गया। अब भला कौन कह सकता है कि इस जङ्गलमें अभी मनुष्यकी बोली सुनाई पड़ी थी? थोड़ी ही देर बाद फिर वैसा ही शब्द सुनाई पड़ा—फिर भी किसी मनुष्य-कण्ठने उस निस्तब्धताके समुद्रको मथते हुए कहा,—"क्या मेरी मनोकामना पूरी न होगी?"

इस प्रकार तीन बार उस निस्तब्ध समुद्रमें खलबली पैदा हुई। तब किसीने मानों पूछा,—"अच्छा, बोलो, दाँवपर क्या रखते हो?"

प्रत्युत्तर मिला,—"मैं अपना जीवन-सर्वस्व दाँवपर लगाता हूँ।"

प्रतिशब्द हुआ,—"जीवन तुच्छ पदार्थ है, उसे तो सभी लोग त्याग सकते हैं।"

"तब और मेरे पास है ही क्या, जो दे सकूँ?"

उत्तर मिला,—"भक्ति!"



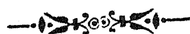
आनन्दमठ ।



पहला खण्ड ।



पहला परिच्छेद



संवत् ११७६ की ग्रीष्म ऋतुका समय है। कड़ाकेकी धूप पड़ रही है। बंगालके पदचिह्न नामक गाँवमें घर तो बहुत हैं; पर आदमी कहीं नहीं दिखाई पड़ते। बाज़ारमें कतारकी कतार दूकानें हैं, हाटमें छपरियोंका तांतासा लगा हुआ है, हर टोले-मुहल्लेमें सैकड़ों मिट्टीके बने मकान नजर आते हैं, बीच-बीचमें छोटी-बड़ी अटारियाँ भी दिखाई देती हैं; पर आज सब जगह सन्नाटा छाया हुआ है। बाज़ारकी दूकानें बन्द हैं—दूकानदार किधर भाग गये हैं, पता नहीं। आज हाटका दिन है, तो भी हाट नहीं लगी। आज 'सदावर्त्त' का दिन है; पर भिखमंगे भिक्षा लेनेके लिये घरसे बाहर निकले ही नहीं। जुलाहोंने आज कपड़ा बुनना छोड़ दिया है और घरके एक कोनेमें बैठे हुए रो रहे हैं। व्यापारी अपना रोजगार छोड़ बच्चेको गोदमें लिये आँसू बहा रहे हैं। दाताओंने दान देना बन्द कर रखा है, पण्डितोंने पाठशाला बन्द कर दी है। शायद दूध पीते बच्चे भी खुलकर रोनेका साहस नहीं करते। राजपथपर आदमी चलते फिरते नहीं नजर आते, सरोवरोंपर कोई स्नान करनेवाला नहीं दिखलाई देता, घरके दरवाजोंपर कोई आदमी बैठा नहीं दीखता, पेड़ोंपर पंछी न रहे, चरागाहोंमें गौए चरती नहीं दीखतीं—हाँ, श्मशानमें स्यारों और कुत्तोंकी पलटन तैयार है। एक बड़ीसी अट्टालिकाके बड़े बड़े छड़दार खम्भे दूरसे उस गृहारण्यमें शैलशिखरकी तरह शोभा दे रहे हैं। पर यह शोभा भी कोई शोभा है? दरवाजे बन्द हैं, घरमें कोई आदमी नहीं मालूम पड़ता, किसी तरहकी आहट नहीं सुनाई देती। शायद हवा भी विघ्नोंके भयसे उस घरमें प्रवेश करती हुई डरती है।

मकानके भीतर इस दोपहरके समय भी अन्धेरा छाया है। उसी अन्धेरे घरके एक कमरेमें एक अति सुन्दर स्त्री और पुरुष बैठे हुए सोच-सागरमें डूब उतरा रहे हैं। उनके सामने प्रलयका दृश्य उपस्थित है।

संवत् ११७४ में फ़सल अच्छी नहीं हुई; इसलिये ११७५ में चावलकी बड़ी महँगी रही, प्रजा घोर विपदमें रही; लेकिन राजाने अपनी मालगुजारी पाई-पाई वसूल कर ली। माल-गुज़ारी बेबाककर बेचारी दरिद्र प्रजाने एक ही वक्त खाकर दिन बिताये। ११७५ में अच्छी बरसात हुई; लोगोंने सोचा, कि चलो, इस साल तो दैवकी कृपा हो गयी। आनन्दसे फूलके ग्वाले खेतोंमें गीत गाते हुए दिखाई देने लगे; गृहस्थोंकी स्त्रियाँ अपने स्वामीसे चाँदीके गहने गढ़ा देनेके लिये मचलने और हठ करने लगीं। यकायक आश्विनके महीनेमें विधाता बाम हो गये। आश्विन और कार्त्तिकमें एक बूँद भी जल न पड़नेसे खेतोंके धान सूखकर खाक हो गये। किसी किसीके एक दो बीघोंमें धान नहीं सूखने पाये थे; पर वे सब राजाके नौकरोंने सैनिकोंके खर्चके लिये ख़रीद लिये। अब तो लोगोंको अन्न मुहाल हो गया। पहले तो लोगोंने कुछ दिनोंतक एक ही बेला भोजन किया, फिर एक ही बेला आधा पेट खाकर बिताया, इसके बाद दोनों बेला उपवास करने लगे। चैतमें थोड़ी बहुत रबी पैदा हुई सही पर वह भी सबके खानेभरको न हुई। इतनेपर भी सरकारी तहसीलदार मुहम्मद रजा खाँने इसी मौक़ेको अपनी खैरख्वाही दिखलानेके लिये अच्छा समझा और एकबारगी दस रुपया सैकड़ा लगान बढ़ा दिया। सारे बंगालमें घोर हाहाकार मच गया।

पहले तो लोगोंने भीख माँगनी शुरू की, पर भीख मिलनी भी मुश्किल हो गयी। कौन किसे भीख देता? सब लगे उपवास करने। धीरे-धीरे लोग बीमार पड़ने लगे। लोगोंने

गाय-गोरू बेंच दिये, हल-बैल बेंच दिये, बीजके अन्न खा डाले घर द्वार बेंच डाला, जगह-जमीन भी बेंच दी। इसके बाद लड़की बेचना शुरू किया। फिर लड़के बिकने लगे। अन्तमें स्त्री बेचनेकी भी नौबत आ पहुँची। पर लड़का-लड़की और स्त्री भी कोई कहाँतक खरीदे! खरीदारोंका ही टोटा हो गया। सब बेचनेको ही तैयार नजर आने लगे। अन्न न मिलनेपर लोग पेड़के पत्ते नोच नोचकर खाने लगे। उससे हटे, तो घास खाने लगे। जङ्गली पेड़-पौधोंपर दिन काटने लगे। नीच और जङ्गली लोग तो कुत्तों, बिल्लियों और चूहोंको मार-मारकर खाने लगे। बहुतसे आदमी देश छोड़कर भाग गये, पर वे विदेशमें ही अन्नके अभाव-से मर गये। जो नहीं भागे, उनमेंसे कितने अखाद्य भोजनसे भूखे रहनेके कारण रोगी होकर प्राण-त्याग करने लगे।

मौका पाकर रोगोंने जोर पकड़ा। ज्वर, हैजा, क्षयी और चेचकका प्रकोप बढ़ गया। खासकर चेचकका तो बहुतही जोर हुआ। घर घरमें चेचकसे मौत होने लगी। कौन किसे जल देता है? कौन किसे छूने जाता है? न कोई किसीकी चिकित्सा करता है, न किसीको देखने जाता है, मरनेपर कोई लाश उठा-नेवाला भी नहीं मिलता। लाशें घरमें पड़ी पड़ी सड़ने लगीं। जिस घरमें चेचक प्रवेश करती, उस घरके लोग डरके मारे रोगीको छोड़कर भाग जाते।

इस ग्राममें महेन्द्रसिंह बड़े धनी थे। पर आज धनी-निर्धन सब एक ही भाव हो रहे हैं। इसी दुःखकी घड़ीमें व्याधि-ग्रस्त हो, उनके सभी आत्मीय-स्वजन और दास-दासी उन्हें छोड़कर चल दिये। कोई मर गया, कोई भाग गया। आज उनके बहुत बड़े परिवारमें केवल उनकी स्त्री, एक छोटी कन्या और स्वयं वे रह गये हैं। इस समय हम उन्हींका हाल लिखते हैं।

उनकी पत्नी कल्याणीने, लज्जा छोड़, गोशालामें जाकर स्वयं अपने हाथों दूध दूहा। उसे गरमकर कन्याको पिलाया

और गौओंको घास और जल देने चली गई। उसके लौट आनेपर महेन्द्रने कहा,—"इस तरहसे कितने दिन चलेगा?"

कल्याणीने कहा,—"बहुत दिन तो नहीं चलनेका, पर जबतक चलता है चलाये जाती हूं। इसके बाद तुम लड़कीको लेकर शहरमें चले जाना।"

महेन्द्र—"जब शहरमें गये बिना काम नहीं चलनेका; तब फिर तुम्हें इतना दुःख क्यों दूं। चलो अभी चलें।"

इसपर दोनोंमें खूब तर्क-वितर्क होते रहे। अन्तमें कल्याणीने कहा—"क्या शहरमें जानेसे कोई विशेष उपकार होगा?"

महेन्द्र—"सम्भव है, वह स्थान भी ऐसा ही जनशून्य हो गया हो और वहां भी प्राणरक्षाका कोई उपाय न हो।"

कल्याणी—"मुर्शिदाबाद, कासिम बाजार या कलकत्ते जानेसे प्राणरक्षा हो सकती है। अब तो यह स्थान अवश्य ही छोड़ देना चाहिये।"

महेन्द्र—"यह घर बाप-दादोंके समयसे सञ्चित धनोंसे परिपूर्ण है, इसे छोड़कर चले जानेसे तो सब लुट जायगा।"

कल्याणी—"यदि घरमें लुटेरे आ ही पड़ेंगे, तो हमीं दोनोंसे रक्षा थोड़े हो सकेगी? जब प्राण ही न रहेंगे, तब धन कौन भोगेगा? चलो अभी घरमें ताला बन्दकर चल दें। यदि प्राण बच गये,तो फिर लौट आनेपर इन सब चीजोंकी फिकर करेंगे।"

महेन्द्र—"क्या तुम पैदल रास्ता चल सकोगी? पालकी-वाले कहार तो सब मर चुके। यदि बैल हैं, तो गाड़ीवान नहीं और गाड़ीवान हैं; तो बैल नहीं।

कल्याणी—"मैं पदल चल सकूंगी, तुम इसके लिये चिन्ता मत करो।"

कल्याणीने मन ही मन सोचा, कि यदि मैं रास्ता न चल सकी, तो बहुत होगा मैं मर जाऊंगी; पर ये दोनों बाप बेटी तो बच जायंगे।

दूसरे ही दिन सवेरे दोनों स्त्री-पुरुष, थोड़ा-सा द्रव्य अपने साथ ले घरमें ताला लगा, गाय गोरूको खुला ही छोड़, कन्याको गोदमें ले राजधानीको ओर चल पड़े। थोड़ी दूर चलकर महेन्द्र-ने कहा—"रास्ता बड़ा ही विकट है, पग पगपर लुटेरे मिलते हैं, खाली हाथ जाना ठीक नहीं। यह कह, वे लौट पड़े और घर-मेंसे बन्दूक, और थोड़ीसी गोली बारूद ले ली।

यह देख, कल्याणीने कहा—"हथियारकी भी अच्छी याद दिलायी। तुम जरा सुकुमारीको गोदमें लिये रहो—मैं भी कुछ हथियार सङ्ग ले लूं।" यह कह, कन्याको महेन्द्रकी गोदमें दे, कल्याणी भी घरके अन्दर जाने लगी।

महेन्द्रने पूछा-"तुम कौनसा हथियार सङ्ग ले चलोगी?"

घरमें आकर कल्याणीने एक छोटीसी डिबिया निकाली और उसे अपने कपड़ेके अन्दर छिपा लिया। उस डिबियामें जहर रखा हुआ था। विपत्तिके दिन हैं, न जाने कब क्या हो, यही सोचकर कल्याणीने पहलेसे ही अपने पास विष रख लिया था।

जेठका महीना था। कड़ाकेकी धूपसे पृथ्वी आगसे भरी भट्टीकी तरह दहक रही थी। दोपहरकी लूह आगकी लपटोंको मात करती थी। आसमान तपे हुए ताम्बेके चद्दरकी तरह तप रहा था। रास्तेकी धूल आगकी चिनगारी बन रही थी। कल्याणीको राह चलते चलते पसीना आने लगा। वह कभी बबूलके पेड़के नीचे, कभी खजूरकी छायामें बैठकर, सूखे हुए सरोवरका गदला पानी पीकर बड़े कष्टसे रास्ता तय करने लगी। लड़की महेन्द्रकी गोदमें थी। वे रह रहकर उसके मुंहपर हवा करते जाते थे। इस तरह चलते चलते उन्हें हरे हरे पत्तोंसे सुशोभित, सुगन्धित कुसुमोंसे लदी हुई लताओंसे वेष्टित वृक्षों-की सघन छाया मिली, दोनोंने बैठकर विश्राम किया।

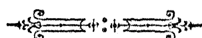
महेन्द्र कल्याणीकी श्रमसहिष्णुता देखकर विस्मित थे।

पासमें एक छोटासा जलाशय था; उसमेंसे अपना वस्त्र भिँगो लाये और उसी जलसे अपने मुंह, हाथ, पैर धोये ।

कल्याणीका जी कुछ ठंढा हुआ। पर क्षुधाकी ज्वालासे वे बड़े व्याकुल हो उठे। पर अपने पेटकी उन्हें उतनी परवाह नहीं थी, जितनी कन्याके लिये थी। उसे वे भूखी-प्यासी नहीं देख सकते थे। इसलिये वे लोग फिर रास्ता चलने लगे। उसी भीषण आगकी लूहमें चलते हुए वे सांझ होते होते एक चट्टीमें आ पहुंचे। महेन्द्र मन ही मन बड़ी आशा किये हुए थे कि चट्टीमें पहुंचनेपर स्त्री कन्याके मुंहमें ठंढा पानी और प्राणरक्षाके लिये चार दाने अन्नके पहुंचा सकेंगे। पर चट्टीमें तो आदमी जनका कहीं पता ही नहीं है। बड़े बड़े घर हैं, पर सब खाली पड़े हैं। आदमी सब भाग गये हैं। इधर उधर देख भालकर महेन्द्रने स्त्री कन्याको एक घरमें सुला दिया और आप बाहर आकर जोर जोरसे आवाजें देने लगे, पर किसीने उत्तर नहीं दिया।

महेन्द्रने कल्याणीसे कहा;—"तुम जरा साहस करके थोड़ी देर अकेली बैठी रहो, मैं जरा देखूं; कहीं भगवानकी दयासे गाय मिल जाय, तो थोड़ा दूध दूह लाऊं।" यह कह महेन्द्र वहींपर पड़ा एक छोटासा मिट्टीका घड़ा लिये बाहर निकले।

दूसरा परिच्छेद।



महेन्द्रके चले जानेके बाद कल्याणी अकेली बैठी, कन्याको गोदमें लिये हुए, उस जनशून्य, अंधेरी कोठरीमें चारों तरफ दृष्टि दौड़ा रही थी। उसके जीमें बड़ा भय पैदा हो रहा था। कहीं कोई आदमी नहीं, किसी मनुष्यकी आहटतक नहीं मिलती, केवल स्यार कुत्तोंका भूकना सुनाई पड़ता था। वह मन ही मन सोच रही थी,—"मैंने क्यों उन्हें जाने दिया?

थोड़ी देर और भूख प्यास सह लेती।" फिर विचारा कि चारों ओरके किवाड़ बन्द कर दें पर किसी दरवाजेमें किवाड़ नदारद थे, तो किसीके किवाड़में सांकल ही नहीं थी। इसी तरह वह चारों ओर देख रही थी कि सामनेके दरवाजेपर एक छाया-सी दीख पड़ी। आकार प्रकार तो मनुष्यका-सा मालूम पड़ा, पर शायद वह मनुष्य नहीं था। अत्यन्त दुबला पतला, सूखी ठठरीवाला, काला नङ्ग-धड़ङ्ग, विकटाकार मनुष्यका-सा न जाने कौन आकर दरवाजेपर खड़ा हो गया। कुछ देर बाद उस छायाने मानों अपना हाथ ऊपर उठाया और हड्डी चाम भर बचे हुए अपने लम्बे हाथकी लम्बी और सूखी उंगलियोंको घुमाकर किसीको सङ्केतसे अपने पास बुलाया। कल्याणीकी जान सूख गयी! इतनेमें एक और छाया उस छायाके पास आकर खड़ी हो गयी। यह छाया भी पहली हीकी तरह थी। इस तरह एक एक करके न जाने कितनी ही छायायें आ पहुंचीं। सबकी सब चुपचाप आकर घरमें घुस गयीं। वह अन्धकारमय गृह, स्मशान-सा भयंकर मालूम पड़ने लगा। इसके बाद उन प्रेत-मूर्त्तियोंने कल्याणी और उसकी कन्याको चारों ओरसे घेर लिया। कल्याणी मूर्च्छित हो गई। तब उन कृष्णवर्ण शीर्ण आकारोंने कल्याणी और उसकी कन्याको उठाया और उन्हें लिये हुए घरसे बाहर हो मैदान पारकर एक जङ्गलमें घुस गये।

कुछ ही देर बाद महेन्द्र घड़ेमें दूध लिये हुए वहां आ पहुंचे। उन्होंने देखा कि कहीं कोई नहीं है। उन्होंने चारों ओर बहुत ढूंढा, स्त्री और कन्याका नाम ले लेकर बार बार पुकारा, पर न तो किसीने उत्तर दिया, न किसीका पता चला।



तीसरा परिच्छेद।



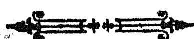
जिस जङ्गलमें डाकुओंने कल्याणीको ले जाकर जमीनपर रखा वह बड़ा मनोहर था। न तो वहां प्रकाश था और न ऐसे परखया ही थे जो वहांकी शोभाको देख और समझ सकें। जिस तरह दरिद्रके हृदयके सौन्दर्यका कोई मूल्य नहीं होता उसी तरह उस वनकी शोभा निरर्थक थी। देशमें खानेको अन्न हो वा न हो, पर वह वन विकसित था, जिनकी सुगंधसे वह अन्धकार प्रकाशमय हो रहा था। वनके बीच एक साफ सुथरे और सुकोमल पुष्पोंसे भरे हुए भूमिखण्डमें डाकुओंने कल्याणी और उसकी कन्याको ला रखा था। वे उन्हें चारों ओरसे घेरकर बैठ गये और आपसमें वाद विवाद करने लगे, कि उन दोनोंका क्या करना चाहिये। कल्याणीके शरीरपरके गहने तो उन्होंने पहले ही निकाल लिये थे। कुछ डाकू उन्हींका बंटवारा करनेमें लगे थे। गहनोंका बंटवारा हो जानेपर एक डाकूने कहा,—"भाई, हम सोना चांदी लेकर क्या करेंगे? एक गहना लेकर यदि कोई मुट्ठीभर चावल दे दे तो प्राण बचें। भूखके मारे जान निकली जा रही है। आज केवल पेड़के पत्ते खाकर रह गया हूं।" एकके मुंहसे यह बात निकलते ही सब भोजन! भोजन!! चिल्लाने लगे। हमें सोना चांदी नहीं चाहिये, भूखसे प्राण निकले जा रहे हैं।" उनके सरदारने उन्हें समझा बुझाकर चुप कराना चाहा, पर कोई चुप न हुआ, उलटे सबके सब और जोरसे चिल्लाने और गाली बकने लगे। अन्तमें मार पीटकी नौबत आ पहुंची। जिन लोगोंको बंटवारेमें गहने मिले थे, उन्होंने क्रोधमें आकर उन गहनोंको सरदारके ऊपर जोरसे फेंक मारे। सरदारने भी एक दोको खूब पीटा। तब सब मिलकर सरदारपर टूट पड़े और उसे मारने लगे। बेचारा

सरदार भी कई दिनोंका भूखा था और कमजोर हो रहा था, इसलिये दो ही चार धौल धप्पेमें उसका काम तमाम हो गया। तब भूखसे पीड़ित, क्रोधित, उत्तेजित और ज्ञानशून्य डाकुओंमेंसे एकने कहा,—"भाइयो! भूखसे प्राण निकले जा रहे हैं। स्यार कुत्तोंका मांस तो बहुत खाया, आओ, आज इसी सालेका मांस खायें।" यह सुनते ही सब "जय काली मैयाकी" कहकर जोरसे चिल्ला उठे। "बम काली! आज मनुष्यका ही मांस उड़ने दो।" यह कहकर वे सब दुबली पतली और प्रेत सदृश काली काली मूर्त्तियां अन्धकारमें खिल खिलाकर हंसने और ताली बजा बजाकर नाचने लगीं। एकने सरदारकी लाश भूननेके लिये आग जलानेका उपाय करना आरम्भ किया। सूखी लताएं, लकड़ियां और तृण बटोरकर उसने चकमकसे आग पैदाकर उनके ढेरमें आग लगा दी। आग धीरे धीरे जलने लगी और उसके प्रकाशमें पासवाले आम, नीबू, कटहल, ताड़, खजूर और इमलीके पेड़ोंके हरे हरे पत्ते चमकने लगे। कहीं तो पत्ते उजेलेमें चमक उठे, कहीं घासपर रोशनी पड़ने लगी और कहीं अँधेरा और भी बढ़ गया। आग खूब धधक उठनेपर एकने लाशकी टांग पकड़ी और उसे आगमें डालनेके लिये ले चला। इतनेमें एक बोल उठा,—"ठहर जा, यार! ठहर जा। अगर आज नरमांस खाकर ही प्राण बचाने हैं, तो फिर इस बूढ़ेकी सूखी ठठरी जलाकर क्यों खायें? लाओ आज हम जिसे पकड़ लाये हैं, उसीको भूनकर खायें, उसी अल्पवयस्क बालिकाका मुलायम मांस ही खाकर प्राण बचायें।" दूसरेने कहा—"जो कुछ हो, जल्द भून डालो, बाबा! अब तो भूख नहीं सही जाती!" सभीकी जीभसे लार टपक पड़ी और सबके सब उधर ही चले जहां कल्याणी अपनी कन्याके साथ मूर्च्छित पड़ी थी। आकर सबोंने देखा कि वहां कोई नहीं है, न मांका पता है, न बेटीका। डाकुओंको लड़ाई झगड़ेमें फंसा देख, सुयोग पाकर

कल्याणी कन्याको गोदमें लेकर जङ्गलमें भाग गयी थी। शिकारको इस तरह हाथसे निकल गया देख, वे सब प्रेत-मूर्त्ति डाकू "मारो! मारो!! पकड़ो! पकड़ो!! करते हुए चारों ओर दौड़ पड़े।"

सच पूछो तो, अवस्था-विशेषमें मनुष्य भी हिंस्र जन्तु ही हो जाता है।

चौथा परिच्छेद



वनमें निविड़ अंधेरा था, बिचारी कल्याणीको रास्ता नहीं सझता था। एक तो वृक्षों, लताओं और कुश कांटोंकी बहुतायतसे आपही रास्ता छिप गया था; दूसरे निविड़ अन्धकार; कुश-कांटोंके बीचसे कल्याणी वनमें प्रवेश करने लगी। रह रहकर लड़कीके बदनमें कांटे चुभ जाते थे इससे वह रो उठती थी उसकी आवाज सुनकर डाकू और भी चिल्लाने लगे। इस प्रकार आहत शरीर बालिकाको लिये हुए कल्याणी बहुत दूर-तक जङ्गलमें चली गई। कुछ देर बाद चन्द्रमा निकल आये। अबतक तो कल्याणीको यही भरोसा था कि अंधेरेमें डाकू उसे न देख सकेंगे, इधर उधर ढूंढ़ खोजकर थक जायंगे; पर चन्द्रोदय हो जानेसे उसका यह भरोसा भी टूट गया। आसमानमें निकलतेही चन्द्रमाने जंगलके सिरपर प्रकाशकी वर्षासी कर दी; वनके भीतर वाले अंधकारपर रोशनीके छींटेसे पड़ गये। अन्धकार भी उज्ज्वल हो गया। बीच बीचमें थोड़ा छिद्र पाकर प्रकाश वनके भीतर प्रवेश करके झांकने लगा। चाँद जितना ही ऊपर उठने लगा, उतनी ही अधिक उजियाली वनमें प्रवेश करने लगी। कल्याणी कन्याको लिये और भी घने जंगलमें छिपने लगी। डाकुओंने और भी अधिक चिल्लाहट और

शोरगुलके साथ वनमें चारों ओर दौड़ना शुरू किया। लड़की डरके मारे और भी जोर जोरसे रोने लगी। कल्याणीने लाचार हो, भागनेका विचार छोड़ दिया। एक बड़ेसे पेड़के नीचे, जहां हरी हरी घास उगी थी और कुश-कांटे नहीं थे, कन्याको गोदमें लिए वह बैठकर पुकार पुकारकर कहने लगी—"हे भगवन्! तुम कहां हो? मधुसूदन! तुम्हें मैं नित्य पूजती और प्रणाम करती हूं। तुम्हारे ही भरोसे मैं इस जंगलमें घुसी थी। बताओ तुम कहाँ हो? इसी समय भय तथा भक्तिकी प्रगाढ़ता और क्षुधा-तृष्णाकी मारसे बाह्य ज्ञानशून्य हो आन्तरिक चैतन्यसे भरकर कल्याणीको अन्तरिक्षमें स्वर्गीय गान सुनाई देने लगा, मानों कोई गा रहा है---

"हरे मुरारे, मधुकैटभारे!
गोपाल गोविन्द मुकुन्द शौरे!
हरे मुरारे मधुकैटभारे!"

कल्याणी लड़कपनसे ही पुराणोंमें सुनती आयी थी कि, देवर्षि नारद वीणा हाथमें लिये,हरिनामका कीर्तन करते, गगन-पथमें विचरण करते हुए भुवन-भ्रमण किया करते है। यही कल्पना उसके मनमें जाग उठी। उसे मालूम होने लगा मानों शुभ्र-शरीर, शुभ्र-केश, शुभ्र-वसन, महाशरीर, महामुनि वीणा हाथमें लिये, चन्द्रलोकमें प्रदीप्त नीलाकाशमें गा रहे हैं,—

"हरे मुरारे मधुकैटभारे!"

क्रमशः गीत और भी पास सुनाई देने लगा। उसे साफ सुनाई दिया कि कोई कह रहा है—"हरे! मुरारे!! मधुकैटभारे!!!"

क्रमशः गाना और भी निकट—और भी स्पष्ट—मालूम पड़ने लगा। मानों कोई गाता है—

"हरे! मुरारे! मधुकैटभारे!"

अन्तमें कल्याणीके सामने वनस्थलीसे भी उस गीतकी प्रतिध्वनि गूंज उठी--

"हरे ! मुरारे ! मधुकैटभारे !"

कल्याणीने आंखें खोलीं। उसने क्षीण प्रकाशमें देखा, कि वही शुभ्र-शरीर, शुभ्र-केश, शुभ्र-वसन ऋषि मूर्त्ति उसके सामने खड़ी है ! अन्यमनस्का कल्याणीने श्रद्धा भक्ति युक्त उन्हें प्रणाम करना चाहा; पर प्रणाम न कर सकी। सिर झुकाते ही बेहोश होकर गिर पड़ी।

पांचवां परिच्छेद

उस वनके एक विस्तृत भागमें पत्थरोंके ढोकोंसे घिरा हुआ एक बड़ा मठ था। उसे यदि कोई पुरातत्त्ववेत्ता देख पाये, तो यही कहेगा कि यह पहले बौद्धोंका 'विहार' रहा होगा, पीछे हिन्दुओंका मठ हो गया। अट्टालिका दुमंजिली है—बीचमें बहुतसे देवमन्दिर हैं, जिनके सामने नाट्यशाला बनी हुई है। मठके चारों तरफ दीवार खींची हुई है और बाहरसे जंगली वृक्षोंकी श्रेणी द्वारा ऐसा छिपा हुआ है कि पास जानेपर भी यह नहीं मालूम होता कि यहां पक्का मकान है। अट्टालिकाएं जगह जगहसे टूटी फूटी थीं परन्तु दिनको देखनेसे मालूम होता था, कि उन सबकी हालमें ही मरम्मत हो गयी है। इससे प्रगट होता था कि इस गम्भीर और अभेद्य अरण्यमें मनुष्य बास करते हैं।

मठके एक कमरेमें बड़ी भारी धूनी जल रही थी। होशमें आकर कल्याणीने देखा कि वही शुभ्र-शरीर, शुभ्र-वसन महापुरुष उसके सामने खड़े हैं। कल्याणी विस्मयसे उनकी ओर देखने लगी। पर बहुत सोचनेपर भी उसे कुछ स्मरण नहीं हो सका। यह देख उस महापुरुषने कहा—"बेटी ! शंका न करो, यह देवताका स्थान है। थोड़ा दूध है, इसे पीलो, तब तुम्हें सब कथा सुनाऊंगा।

पहले तो कल्याणी कुछ समझ न सकी पर मन कुछ स्थिर हो जानेपर उसने उन महात्माको प्रणाम किया। महात्माने शुभ आशीर्वाद दिया फिर दूसरे कमरेसे एक सुगन्धित मिट्टीका बर्त्तन लाया और आगपर दूध गरम किया। दूध गरम होनेपर उन्होंने कल्याणीको देकर कहा—"बेटी! थोड़ा तुम पीओ और थोड़ा लड़कीको भी पिलाओ, इसके बाद बातें करूंगा।" यह सुन, कल्याणी प्रसन्न-मन कन्याको दूध पिलाने लगी। इसी समय वे महापुरुष यह कहकर मन्दिरसे बाहर चले गये,—"कि मैं जबतक नहीं आऊं, किसी प्रकारकी चिन्ता न करना।" कुछ देर बाद बाहरसे लौट आनेपर उन्होंने देखा कि कल्याणी कन्याको तो दूध पिला चुकी है, पर अभी स्वयं नहीं पिया है। दूध ज्योंका त्यों रखा हुआ है, यह देख उस महापुरुषने कहा—"बेटी! तुमने क्यों नहीं पिया? लो, मैं बाहर जाता हूं, जबतक तुम न पी लोगी, मैं न लौटूंगा।"

यह कहकर वे महापुरुष चले ही जा रहे थे कि कल्याणीने उन्हें दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम किया।

वनवासीने पूछा—"क्या कुछ कहोगी?" कल्याणीने कहा—"मुझे दूध पीनेके लिये अनुरोध न करें—एक आपत्ति है। मैं नहीं पी सकती।" यह सुन वनवासीने अत्यन्त करुण स्वरमें कहा—"कौनसी आपत्ति है, मुझसे कहो। मैं जंगलमें रहनेवाला ब्रह्मचारी हूं। तुम मेरी लड़कीके बराबर हो। कहो, मुझसे भी कहने लायक नहीं हो, ऐसी कौन सी बात है। जब मैं तुम्हें जंगलसे बेहोशीकी हालतमें उठा लाया था, उस समय तुम बहुत भूखी प्यासी मालूम पड़ती थी। बिना कुछ खाये पिये प्राण कैसे बचेंगे।"

कल्याणीने रोते-रोते कहा—"आप देवता हैं, इसीसे आपसे कहती हूं। मेरे स्वामी अभीतक भूखे होंगे। बिना उन्हें देखे

या उनके बिना खा पी लेनेका संवाद पाये, मैं भला कैसे दूध पी सकती हूं।

ब्रह्मचारीने पूछा—"तुम्हारे स्वामी कहां हैं?"

कल्याणी—"यह मुझे नहीं मालूम! वे दूध लाने बाहर चले गये थे। इसी समय डाकू मुझे उठा लाये।" ब्रह्मचारीने एक एक करके कल्याणी और उसके स्वामीका सारा हाल मालूम कर लिया। कल्याणीने अपने स्वामीका नाम नहीं बतलाया, क्योंकि वह उनका नाम मुंहसे नहीं निकाल सकती थी, परन्तु ब्रह्मचारी-जीने अन्य बातोंसे सब कुछ समझ लिया पूछा—"क्या तुम्हीं महेन्द्रकी स्त्री हो?" कल्याणीने कुछ जवाब नहीं दिया। केवल सिर झुकाये हुए वह आगमें लकड़ी उठाकर डालने लगी। ब्रह्मचारीने कहा—"मेरी बात मानो, दूध पी लो। मैं तुम्हारे स्वामीका समाचार लाने जाता हूं। तुम दूध न पीयोगी तो मैं जाऊंगा ही नहीं।

कल्याणीने कहा—"थोड़ा-सा पानी मिलेगा?"

ब्रह्मचारीने जलके घड़ेकी ओर इशारा किया। कल्याणीने हाथ फैलाया, ब्रह्मचारीने पानी ढाल दिया। जलसे भरी हुई अंजलि ब्रह्मचारीके पैरोंके पास ले जाकर कल्याणीने कहा—"आप इसमें अपनी पदरज दे दीजिये।" ब्रह्मचारीने अपने पैरके अंगूठेसे उस जलको स्पर्श कर दिया। बस, कल्याणी उसे पी गयी और बोली—"मैंने अमृत पान कर लिया, अब और कुछ खाने पीनेको न कहिये। स्वामीका संवाद पाये बिना मुझसे कुछ भी ग्रहण नहीं किया जायगा।"

ब्रह्मचारीने कहा—"अच्छा तुम निर्भय होकर इस देवमन्दिर-में बैठी रहो—मैं तुम्हारे स्वामीका पता लगाने जाता हूं।"

———

छठा परिच्छेद



रात बहुत बीत गयी है। चन्द्रदेव मध्य आकाशमें आ गये हैं। आज पूर्णमासी नहीं है, इससे प्रकाश तेज नहीं है। एक अत्यन्त विस्तीर्ण मैदानके ऊपर उस अन्धकारकी छायासे युक्त धुंधली रोशनी पड़ रही है। उस रोशनीमें मैदानका आरपार नहीं दिखाई देता। मैदानमें क्या है, कौन है, नहीं मालूम पड़ता। सारा मैदान अनन्त जन-शून्य और डरावना मालूम पड़ रहा है। रास्तेके किनारे एक छोटीसी पहाड़ी है, जिसपर आम आदिके बहुतसे पेड़ लगे हैं। पेड़ोंकी पत्तियां चांदनीमें चमकती हुई हिल रही हैं, उनकी छाया काले पत्थरपर पड़कर और भी काली हो गयी है और लगातार कांपती मालूम पड़ती है। ब्रह्मचारी उसी पहाड़ीके शिखरपर चढ़कर चुपचाप खड़े हो, न जाने क्या सुनने लगे—किस चीजकी आहट लेने लगे, नहीं कहा जा सकता। उस अनन्त प्रान्तमें कहीं कोई शब्द नहीं सुनाई पड़ता था केवल वृक्षोंके पत्तोंकी खड़खड़ाहट सुनाई पड़ती थी। पहाड़ीके नीचे ही घना जंगल था।

ऊपर पहाड़ी; नीचे राजपथ और बीचमें जंगल था। वहींपर न जाने कैसा शब्द हुआ, सो तो हमें नहीं मालूम; पर हां, ब्रह्मचारी उसीकी सीधपर चल पड़े। घने जंगलमें प्रवेश कर उन्होंने देखा, कि उस जंगलके पेड़ोंके नीचे अंधेरेमें ही बहुतसे आदमी कतार बांधे बैठे हुए हैं। वे सभी लम्बे तगड़े, काले काले और हथियार बन्द थे। पत्तोंके बीचसे छनकर आनेवाली रोशनी उनके पैने हथियारोंपर पड़ रही थी, जिससे वे खूब चमक रहे थे। इसी प्रकार दो सौ आदमी वहां जमा थे; पर किसीके मुंहसे बोली नहीं निकलती थी। धीरे धीरे उनके पास पहुंचकर

ब्रह्मचारीने न जाने किस बातका इशारा किया; पर न तो कोई उठकर खड़ा हुआ, न कोई बोला, न कोई कुछ हिला डुला वे सबके सामनेसे, हरएकको देखते हुए निकल गये, अंधेरेमें हर एकका चेहरा बड़े गौरसे देखते हुए चले, पर शायद वे जिसे खोज रहे थे, उसे न पा सके। खोजते खोजते, एकको पहचानकर उन्होंने उसका अङ्ग-स्पर्शकर कुछ इशारा किया। इशारा करते ही वह उठ खड़ा हुआ। ब्रह्मचारी उसे दूर ले जाकर खड़े हुए। वह आदमी नौजवान था। काली काली दाढ़ी मूंछोंसे उसका चांदसा चेहरा छिपा हुआ था। वह बड़ा बलिष्ठ और अति सुन्दर पुरुष मालूम पड़ता था। गेरुआ वस्त्र पहने था और सारी देहमें चन्दन लगाये हुए था। ब्रह्मचारीने उससे कहा,—"भवानन्द! क्या तुम महेन्द्रसिंहका कुछ पता ठिकाना जानते हो?"

यह सुन, भवानन्दने कहा—"महेन्द्रसिंह आज सवेरे स्त्री कन्याके साथ घर छोड़कर जा रहे थे। रास्तेमें एक चट्टीमें—"

इतना सुनते ही ब्रह्मचारी बीच हीमें बोल उठे,—"चट्टीमें जो हुआ, वह मुझे मालूम है, पर तह तो कहो, यह किसकी कार्रवाई थी?" भवानन्द,—"गांवके नीच जातियोंका काम है, और क्या? इस समय सभी गांवोंकी नीच जातियां पेटकी मारसे डाकू बन गयी हैं। आजकल कौन डाकू नहीं हो रहा है? आज हमलोगोंने ही लूटकर अन्न पाया है; कोतवाल साहबके लिये दो मन चावल जा रहे थे, हमलोगोंने उसे लूटकर वैष्णवोंको खिला दिया।"

ब्रह्मचारीने हंसकर कहा,—"मैंने चोरोंके हाथसे उसकी स्त्री कन्याको तो बचा लिया है और इस समय उन्हें मठमें ही रख छोड़ा है। अब मैं तुम्हारे ऊपर इसका भार सौंपता हूं, कि महेन्द्रको ढूंढ़ निकालो और उसकी स्त्री कन्याको उसके

हवाले कर दो। यहां जीवानन्द ही रहें, तो यहांका सारा काम चला जा सकता है।"

भवानन्दने स्वीकार कर लिया। ब्रह्मचारी दूसरी तरफ चले गये।

सातवां परिच्छेद



चट्टीमें बैठे बैठे केवल सोच विचार करते रहनेसे कोई नतीजा न निकलेगा, यही सोचकर महेन्द्र वहांसे उठे। शहरमें जाकर सरकारी अमलोंकी सहायतासे स्त्री कन्याका पता लगा लूंगा, यही सोचकर वे उधर ही चल पड़े। कुछ दूर चलकर उन्होंने देखा, कि बहुतसे सिपाही अनेक बैलगाड़ियोंको घेरे हुए चले जा रहे हैं।

११७६ सालमें बंगाल प्रान्त अंगरेजोंके शासनाधिकारमें नहीं आया था। उस समयतक अंगरेजोंके हाथमें यहांकी दीवानी ही थी। ये लोग मालगुजारी वसूल करते थे सही; पर उस समयतक बंगालियोंके जानोमालके रक्षक नहीं बने थे। उन दिनों लगान वसूल करना तो अंगरेजोंके हाथमें था और प्रजाके प्राण और सम्पत्तिकी रक्षाका भार था पापी, नराधम, विश्वास-घातकी और मनुष्य-कुल-कलङ्क मीरजाफरके हाथमें। पर मीर-जाफर तो अपनी ही रक्षा नहीं कर सकता था, सारे बंगालकी रक्षा वह क्या करता? मीरजाफ़र अफीम खाकर पिनक लिया करता और अँगरेज लोग रुपया वसूलकर विलायतको खरीते लिख लिखकर भेजा करते। बंगाली मरें, चाहे आठ आठ आँसू रोया करें, इसकी किसे चिन्ता थी!

अतएव बंगालकी मालगुजारी अँगरेजोंको ही देनी पड़ती थी; किन्तु शासनका भार नवाबपर था। जहां जहां अंगरेज

लोगोंको अपनी मालगुजारी वसूल करनी पड़ती थी, वहाँ उन्होंने अपना एक कलक्टर मुकर्रर कर दिया था। मालगुजारी वसूल करके कलकत्ते भेज दी जाती थी। लोग भले ही खाये बिना मरें; पर मालगुजारीकी वसूली कभी बन्द नहीं होती थी। पर अब वसूलीमें कमी पड़ने लगी; क्योंकि माता वसुमती धन न दें; तो कोई गढ़कर थोड़े ला सकता था!

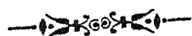
इस बार जो कुछ वसूल हुआ था, वही बैलगाड़ीपर लादकर, सिपाहियोंके पहरेमें कलकत्ते कम्पनीके खजानेमें जमा करनेके लिये भेजा जा रहा था। आजकल डाकुओंका उपद्रव जोरोंपर है, यही सोचकर पचास हथियारबन्द सिपाही खुली सङ्गीनें लिये गाड़ीके आगे-पीछे चले जा रहे थे। उनका अफसर एक गोरा था। गोरा सबके पीछे घोड़ेपर सवार था। धूपके मारे सिपाही दिनको रास्ता नहीं चलते, इसीलिये वे लोग रात-को चले जा रहे थे। उन्हीं गाड़ियों और सिपाहियोंको महेन्द्रने देखा था। सिपाहियों और बैलगाड़ियोंसे रास्ता रुका देख, महेन्द्र हटकर बगलमें खड़े हो गये। तोभी सिपाहियोंने एकाध धक्का दे ही दिया। यह सोचकर कि यह समय इनसे वादविवाद करनेका नहीं है, महेन्द्र रास्तेके उस ओर जिधर जंगल था, जाकर खड़े हो गये।

यह देख एक सिपाहीने कहा—"देखो, देखो, एक डाकू भागा जा रहा है।"

महेन्द्रके हाथमें बन्दूक देख, उसका यह विश्वास और भी दृढ़ हो गया। वह झटपट दौड़ा हुआ महेन्द्रके पास गया और उनका गला धर दबाया। इसके बाद "साला चोर बदमाश कहींका" कहता हुआ उसने उनको जोरसे एक घूँसा जमाया और उनके हाथसे बन्दूक छीन ली। महेन्द्रने खाली हाथ हो जाने-पर भी उसे उलटकर एक घूंसा रसीद किया। उसकी मारसे सिपाहीका सिर घूम गया और वह चक्कर खाकर, बेहोश हो

रास्तेमें गिर पड़ा। यह देख, तीन चार सिपाहियोंने महेन्द्रको पकड़ लिया और उन्हें घसीटते हुए सेनापति साहबके पास ले गये—बोले, इस आदमीने एक सिपाहीका खून कर डाला है। साहब चुरुट पी रहे थे, शराबका भी तेज नशा बढ़ा हुआ था, झट बोल उठे,—"सालेको पकड़ ले चलो, इससे शादी कर लेना।" बेचारे सिपाहियोंकी समझमें न आया, कि वे इस बन्दूकधारी डाकूसे किस प्रकार विवाह करेंगे? पर नशा टूटने-पर साहबकी मत बदल जायगी और वे हमसे फिर यह न कहेंगे, कि इससे शादी कर लो, यही सोचकर तीन चार सिपा-हियोंने रस्सेसे उनके हाथ पैर बांध दिये और एक गाड़ीपर लाद दिया। महेन्द्रने देखा कि इतने लोगोंके साथ ज़ोर आज-मायश करना बेकार है। लड़ भिड़कर छुटकारा पानेसे ही क्या लाभ है! स्त्री कन्याके शोकसे महेन्द्र इतने कातर हो रहे थे, कि उन्हें जीनेकी इच्छा ही नहीं रह गयी थी। सिपाहियोंने महेन्द्रको भलीभांति गाड़ीके पहियेके पासवाले बांसमें बांध दिया। इसके बाद वे पहलेकी तरह सरकारी खजाना लिये हुए धीरे धीरे आगे बढ़े।

आठवां परिच्छेद।



ब्रह्मचारीकी आज्ञा पा, भवानन्द मृदु स्वरसे हरिनाम लेते हुए उसी चट्टीकी ओर चले, जिसमें महेन्द्रने डेरा किया था। उन्होंने सोचा कि महेन्द्रका पता वहीं जानेसे लग सकता है।

उन दिनों आजकलकी सी सड़कें नहीं थीं। छोटे मोटे शहरोंसे कलकत्ते जाते समय मुसलमान बादशाहोंकी बनवायी हुई विचित्र सड़कोंसे ही जाना पड़ता था। महेन्द्र भी पदचिह्नसे नगर जाते समय, दक्षिणसे उत्तरकी ओर चले जा रहे थे।

इसीलिये उनकी सिपाहियोंसे मुठभेड़ हो गयी थी। भवानन्द तालपहाड़से जिस चट्टीकी ओर चले, वह भी दक्षिणसे उत्तरकी ओर थी। इसलिये कुछ ही दूर जाकर उनका सिपाहियोंसे मुकाबिला हो गया। उन्होंने भी महेन्द्रकी ही तरह सिपाहियोंको रास्ता दे दिया। एक तो सिपाहियोंको सहज ही इस बातका अन्देशा था, कि डाकू खजानेको लूटनेकी अवश्य ही चेष्टा करेंगे, दूसरे, रास्तेमें उन्होंने एक डाकूको गिरफ्तार भी कर लिया था, इसीसे भवानन्दको फिर इस रातके समय किनारा काटकर जाते देख, उनको पूरा विश्वास हो गया, कि यह भी कोई डाकू ही है। फिर क्या था! सिपाहियोंने उन्हें झट गिरफ्तार कर लिया।

भवानन्दने धीरेसे मुस्कराकर कहा,—"क्यों भाई! मुझे क्यों पकड़ते हो?"

एक सिपाहीने कहा,—"तू साला डाकू है।"

भवा०—"देखते नहीं हो, मैं गेरुआधारी ब्रह्मचारी हूं। क्या डाकू ऐसे ही होते हैं?"

सिपाही—"बहुतेरे ससुरे साधु-संन्यासी चोरी डकैती करते हैं।" यह कह, सिपाहीने भवानन्दको, गरदनमें हाथ डाल, धक्का देकर अपनी ओर खींचा। भवानन्दकी आंखें क्रोधके मारे लाल हो गयीं पर वे और कुछ न कहकर अत्यन्त विनीत भावसे बोले,—"प्रभो! आज्ञा दीजिये, मुझे क्या करना होगा?"

भवानन्दकी विनयसे सन्तुष्ट हो सिपाहीने कहा,—"ले चल साला! यह गठरी सिरपर उठा ले।" यह कह, उसने भवानन्दके सिरपर एक गठरी रख दी। यह देख, एक दूसरे सिपाहीने कहा,—"नहीं यार! ऐसा न करो। साला भाग जायगा। पहलेको जहां बांध रखा है, इसको भी वहीं बांध दो। यह सुन, भवानन्दको बड़ा कौतूहल हुआ, कि देखें इन सबने किसे कहां बांध रखा है। यही सोचकर भवानन्दने सिरकी गठरी नीचे फेंक

दी और जिस सिपाहीने उसके सिरपर गठरी रखी थी, उसके गालमें जोरसे चपत मारी। इसपर बिगड़कर सिपाहियोंने भवानन्दको भी बांधकर महेन्द्रके पास ही ला पटका। भवानन्द देखते ही पहचान गया कि यही महेन्द्रसिंह हैं।

सिपाही लोग फिर बेफिक्रीके साथ शोर गुल मचाते हुए जाने लगे। गाड़ियां चुर्र मुर्र करती हुई चलने लगीं। तब भवानन्दने धीमे स्वरमें, जिसे सिवाय महेन्द्रके और कोई न सुन सके, कहा,—"महेद्रसिंह! मैं तुम्हें पहचानता हूं और तुम्हारी ही सहायताके लिये यहां आया हूं। मैं कौन हूं, यह तुम अभी सुनकर क्या करोगे? मैं जो कुछ कहूं, उसे सावधानीसे करो; तुम अपने बंधे हाथका बन्धन गाड़ीके पहियेपर रखो।"

महेन्द्र बड़े अचम्भेमें पड़े; पर बिना कुछ कहे भवानन्दके कहे मुताबिक काम करनेको तैयार हो गये। अंधेरेमें खिसकते हुए वे गाड़ीके पहियेके पास गये और जिस रस्सीसे उनके हाथ बंधे हुए थे, उसे पहियेपर रख दिया। पहियेकी रगड़से रस्सी धीरे धीरे कट गयी। इसी तरह उन्होंने पैरोंका बन्धन भी काट डाला। इस प्रकार बन्धनसे मुक्त होकर वे भवानन्दके परामर्शके अनुसार चुपचाप गाड़ीपर पड़े रहे। भवानन्दने भी उसी प्रकार अपने हाथ पैरके बन्धन काट डाले। दोनों चुप्पी साधे रहे।

जंगलके पास राजपथपर जहां खड़े होकर ब्रह्मचारीने चारों ओर देखा था, उसी रास्तेसे होकर इन लोगोंको जाना था। सिपाहियोंने उस पहाड़ीके पास पहुंचकर देखा, कि एक टीलेपर एक आदमी खड़ा है। नीचे आकाशमें प्रदीप्त चन्द्रमाके प्रकाशमें प्रकाशमान उसका काला शरीर देख, हविलदारने कहा, "यार! वह देखो, एक साला और भी है, पकड़ लाओ। गठरी ढोयेगा।" यह सुन, एक सिपाही उसे पकड़ने दौड़ा। पर वह आदमी ज्योंका त्यों खड़ा रहा, ज़रा भी हिला

डुला नहीं। सिपाहीने उसे जाकर पकड़ लिया। वह कुछ न बोला। उसे पकड़कर वह हविलदारके पास ले गया, तोभी वह कुछ न बोला। हविलदारने कहा, इसके सिरपर गठरी रख दो। सिपाहीने उसके सिरपर गठरी रख दी। उसने चुपचाप माथेपर गठरी रख ली। इसके बाद हविलदार पीछे फिरा और गाड़ीके साथ चला। इसी समय एकाएक पिस्तोलकी आवाज आयी। हविलदारकी खोपड़ीमें गोली लगी और वह जमीनपर गिर पड़ा और मर गया। "इसी सालेने हविलदारको गोली मारी है" यह कहकर एक सिपाहीने उस मजदूरका हाथ पकड़ लिया। मजदूरके हाथमें उस समय भी पिस्तौल मौजूद थी, उसने झट सिरकी गठरी नीचे फेंक पिस्तौलका घोड़ा दबाकर दनसे फायर की। सिपाहीका सिर छिद गया। उसने उसका हाथ छोड़ दिया। इसी समय हरि! हरि! हरि! का शब्द करते हुए दो सौ हथियारबन्द जवानोंने वहां आकर सिपाहियोंको घेर लिया। उस समय वे बेचारे सिपाही साहबके आनेकी राह देख रहे थे। साहबने यह सोचकर कि डाकुओंने छापा मारा है, सिपाहियोंको हुक्म दिया कि गाडियोंको चारों ओरसे घेरकर खड़े हो जाओ। विपत्तिके समय अङ्गरेजोंका नशा टूट जाता है। सिपाही चारों ओरसे गाड़ीको घेरकर हथियार लिये हुए सामनेकी ओर मुंह किये खड़े हो रहे। सेनापतिके दूसरी बार हुक्म देते ही उन लोगोंने अपनी अपनी बंदूकें सीधी कीं। इसी समय न जाने किसने साहबकी कमरसे उनकी तलवार निकाल ली। तलवार लेकर उसने झटपट उनका सिर काट लिया। साहबका सिर कटकर धड़से अलग हो गया और वे फायर करनेका हुक्म न दे सके। सबोंने देखा कि एक आदमी बैलगाड़ीपर तलवार लिये खड़ा है और "हरि! हरि! हरि!" कहता हुआ सिपाहियोंको मार डालनेका हुक्म दे रहा है। वह आदमी भवानन्द थे।

सहसा सेनापतिका सिर कटते देख और आत्मरक्षाकी

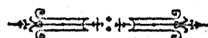
आज्ञा किसीसे न पाकर सिपाही कुछ देरतक भौंचकसे चुप खड़े रह गये। इसी समय तेजस्वी डाकुओंने उनमेंसे कितनोंको मार गिराया और कितनों हीको घायल कर डाला। इसके बाद गाड़ियोंके पास आ, उनपर जो रुपयेके बक्स लदे थे, उनपर अधिकार कर लिया। सिपाही हारसे हताश होकर भाग गये।

तब वह व्यक्ति, जो टीलेके ऊपर खड़ा था और अन्तमें जिसने इस युद्धका नेतृत्व ग्रहण कर लिया था, भवानन्दके पास आकर उसके गलेसे लिपट गया। दोनों खूब गले गले मिले। भवानन्दने कहा, भाई जीवानंद! तुम्हारा व्रत सार्थक हुआ।

जीवानंदने कहा—"भवानन्द! तुम्हारा नाम सार्थक हो।"

इसके बाद लूटकी रकमको यथास्थान पहुंचानेका भार जीवानन्दको सौंपा गया। वे अपने अनुचरोंके साथ शीघ्र ही वहांसे अन्यत्र चले गये। भवानन्द अकेले रह गये।

नवां परिच्छेद



गाड़ीसे नीचे उतरकर महेन्द्रने एक सिपाहीका हथियार छीन लिया और युद्ध करने ही जा रहे थे कि यकायक उन्हें यह ख्याल हो आया, कि ये लोग डाकू हैं और इन्होंने रुपये लूटनेके लिये ही इन सिपाहियोंपर आक्रमण किया है। यही सोचकर वे युद्धभूमिसे हटकर अलग जा खड़े हुए, क्योंकि डाकुओंका साथ देनेसे उन्हें भी उनके पापका भागी बनना पड़ता। यह सोचकर वे तलवार फेंक चले ही जा रहे थे, कि इसी समय भवानन्द उनके सामने आ खड़े हुए। महेन्द्रने पूछा—"महाशय! आप कौन हैं?"

भवानन्दने कहा—"यह जानकर तुम क्या करोगे?"

महेन्द्र—"मुझे जानना जरूरी है ; क्योंकि आज आपने मेरा बड़ा उपकार किया है।"

भवानन्द—"इस बातका ज्ञान भी तुम्हें है, ऐसा तो मैं नहीं समझता, क्योंकि तुम युद्धके समय तलवार हाथमें रहते हुए भी दूर ही खड़े रह गये। जमींदारोंके लड़के ऐसे ही होते हैं। दूध घी खानेमें तो वे बड़ी बहादुरी दिखलाते हैं, पर समर भूमि भा दुर्लभ प्राणा!"

भवानन्दकी बात पूरी होते न होते महेन्द्रने घृणाके साथ कहा—"राम! राम! यह भी कोई काम है! डकैती बड़ा बुरा काम है!"

भवानन्दने कहा,—"डकैती ही सही, पर तुम्हारा तो हमने उपकार ही किया है? अभी हम तुम्हारी और भी बहुत कुछ भलाई करना चाहते हैं।"

महेन्द्र,—"तुम लोगोंने मेरा कुछ उपकार किया है, इसमें कोई सन्देह नहीं, पर अब और कौनसा उपकार करोगे? डाकुओंसे उपकार होनेकी अपेक्षा न होना ही अच्छा है।"

भवानंद—"उपकार ग्रहण करना, न करना तो तुम्हारी इच्छापर निर्भर है। खैर, यदि अपनी कुछ भलाई हमारे हाथों चाहते हो, तो मेरे साथ साथ चलो, मैं तुम्हें तुम्हारी स्त्री कन्यासे मिला दूंगा।"

महेन्द्र घूमकर खड़े हो गये और बोले,—"क्या कहा?"

भवानंद इस प्रश्नका उत्तर दिये बिना ही चल पड़े। लाचार महेंद्र भी उनके पीछे हो लिये। वे मन ही मन सोचते जाते थे: "ये तो अजीब तरहके डाकू हैं!"



दशवां परिच्छेद

उस चांदनी रातमें दोनों व्यक्ति उस निस्तब्ध मैदानको पारकर चले। महेंद्र चुप थे। उनके मनमें शोक, गर्व और कौतूहलकी लहर उठ रही थी

सहसा भवानंदने अपना वेश बदला। अब भवानंद शान्त और धीर प्रकृति संन्यासी न रहे, वह रणनिपुण वीर, वह सेनापतिका सिर काटनेवाले योद्धा न रहे। अभी जिसने पूर्ण अभिमानसे महेंद्रका तिरस्कार किया था, वह न रहे। उस ज्योत्स्नामयी, प्रशांत पृथ्वीके गिरि, कानन, और नदीकी शोभा देख, उनके मनमें उमङ्ग पैदा हो गयी, मानों चंद्रमाको उदय होते देख, समुद्र खिलखिला उठा। भवानंदके मुखपर प्रसन्नताकी गहरी रेखा छा गयी, मीठी मीठी बातें करनेके लिये उनका जी व्याकुल हो उठा। भवानंदने बातचीत करनेकी बड़ी चेष्टा की, पर महेंद्र न बोले। लाचार भवानंद आप ही आप गाने लगे,—

बन्दौं भारत भूमि सुहावन।

सजल सफल श्यामल थल सुंदर,

मलय समीर चलय मम भावन॥

महेंद्र गीत सुनकर बहुत विस्मित हुए। वे यह न समझ सके कि यह सजल सफल श्यामल थल सुंदर मलय समीर चलय भावन आदि गुणोंसे युक्ता माता कौन है। उन्होंने पूछा—"यह माता कौन है?" पर भवानंद इसका उत्तर न दे, गाते चले गये—

हिमकर निकर प्रकाशित रजनी,
कुसुमित लता ललित छबिवारी ॥
दिन मनि उदित मुदित मन पक्षी।
विकसित कमल नयन सुखकारी ॥

महेंद्रने कहा—"यह देश है; माँ नहीं।"

भवानंद बोले,—"हम लोग अन्य कोई माता नहीं जानते। 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' जन्मभूमि ही हमारी माता है। हमारे मां नहीं, पिता नहीं, बन्धु नहीं, कलत्र नहीं, पुत्र नहीं, घर नहीं, द्वार नहीं—हमारी तो बस वही 'सजल सफल श्यामल थल सुंदर मलय समीर चलय मनभावन' आदि गुणोंसे युक्ता सब कुछ हैं।"

भवानंदके भावको समझकर महेंद्रने कहा—"अच्छा तो एक बार गाओ।"

भवानंदने फिर गाना आरम्भ किया :—

बन्दौं भारत भूमि सुहावन ।
सजल सफल श्यामल थल सुन्दर,
मलय समीर चलय मन भावन ॥
हिमकर निकर प्रकाशित रजनी,
कुसुममित लता ललित छबिवारी।
दिनमनि उदित मुदित मन पक्षी,
विकसितकमल नयन सुखकारी ॥
तीस कोटि सुत जाके गर्जित,
दुगुन करन करवाल उठाये
कौन कहत तोहि अबला जननी,
प्रबल प्रताप चहूं दिसि छाये ॥
धर्म्म कर्म्म अरु मर्म्म तुही है,



शक्ति मुक्ति देनी जय करनी।
तू जननी आराध्य हमारी,
बहुबल धारिनि रिपुदल दमनी॥
तू दुर्गा दस आयुध धारिनि,
तू ही कमला कमल विहारिनि॥
सुखदा, वरदा, अतुला, अमला,
वानी, विद्या-दायिनि, तारिनि॥
सुस्मित, सरला, भूषित विमला,
धरती, भरती, जननी, पावनि।
"जगन्नाथ" कर जोरे बंदत;
जय जय भारत भूमि सुहावनि॥

महेंद्रने देखा, डाकू गाते गाते रोने लगा। महेंद्रने विस्मित होकर पूछा—"भाई! आप लोग कौन हैं?"

भवानंद—"हमलोग संतान हैं।"

महेंद्र—"सन्तान क्या? किसकी सन्तान?"

भवा०—"मांकी सन्तान।"

महेंद्र—"अच्छा तो क्या संतानका काम चोरी डकैती करके मांकी पूजा करना है? यह कैसी मातृ-भक्ति है?"

भवा०—"हमलोग चोरी डकैती नहीं करते!"

महेंद्र—"अभी तो तुम लोगोंने भरी गाड़ी लूट ली है?"

भवा०—"यह चोरी डकैती थोड़े ही है? हमने किसका धन लूटा है?"

महेंद्र—"क्यों? राजाका?"

भवा०—"राजाका यह धन लेनेका उसे क्या अधिकार है?"

महेंद्र—"यह राजकर था।"

भवा०—"जो राजा प्रजाका पालन नहीं करता, वह राजा कैसा?"

महेंद्र—"देखता हूं, तुम लोग किसी दिन सिपाहियोंकी

तोपके सामने खड़ करके उड़ा दिये जाओगे।"

भवा०—"बहुत ससुरे सिपाहियोंको हम देख चुके हैं। आज भी तो कितने ही थे।"

महेंद्र—"अभीतक पूरी तरह पाला नहीं पड़ा है, जिस दिन पड़ जायगा, उस दिन छठीका दूध याद आ जायेगा।"

भवा०—"अच्छी बात है, मरना तो एक दिन है ही, दो बार तो मरेंगे ही नहीं।"

महेंद्र—"फिर जान बूझकर जान देनेसे क्या लाभ?"

भवा०—"महेंद्रसिंह! तुम्हें देखकर मैंने समझा था, कि तुममें भी कुछ मनुष्यत्व है पर अब मालूम हुआ कि जैसे सब हैं वैसे ही तुम भो हो, तुम केवल पेट पालनेके लिये ही पैदा हुए हो। देखो, साँप पेटके बल रेंगता है, उससे घटकर नीच जीव ही और कोई नहीं है। पर पैर तले दब जानेपर वह भी फन काढ़कर खड़ा हो जाता है। पर क्या तुम्हारा धैर्य अब भी नष्ट नहीं हुआ? क्या मगध, मिथला, काशी, काञ्ची, दिल्ली, काश्मीर किसी भी देशकी ऐसी दुर्दशा हो रही है? क्या इनमेंसे एक भी देशके निवासी दाने दानेको तरसते हुए घास, पत्ता, जङ्गली लताएं, सियार-कुत्तोंके मांस और आदमी तककी लाश खानेको मजबूर हो रहे हैं? किस देशमें प्रजाको द्रव्य रखनेमें भी कल्याण नहीं है? देवताकी उपासना करनेमें भी कल्याण नहीं है? घरमें बहू-बेटियोंको रखनेमें कल्याण नहीं है? बहू-बेटियोंके गर्भ धारण करनेमें कल्याण नहीं। उनके पेट चीर-कर लड़के निकाल लिये जाते हैं! सब देशोंके राजा प्रजाका पालन करते हैं, परन्तु हमारे मुसलमान राजा क्या हमारी रक्षा करते हैं? धर्म्म गया, जाति गयी, मान गया और अब प्राण भी जाया चाहते हैं। इन नशाखोरोंके भगाये बिना हिन्दुओंकी हिन्दु-आई अब नहीं रह सकती।"

महेंद्र—"कैसे भगाओगे?"

भवा०—"मार भगायेंगे ?"

महेन्द्र—"तुम क्या अकेले ही थप्पड़ मारकर भगा दोगे ?"

डाकूने फिर गाया,—

तीस कोटि सुत जाके गर्जित
दुगुन करन करवाल उठाये
कौन कहत तोहि अबला जननी,
प्रबल प्रताप चहूं दिसि छाये।

महेन्द्र—"पर मैं तो देखता हूं, कि तुम अकेले ही हो।"

भवा०—"क्यों ? अभी तो तुमने दो सौ आदमी देखे हैं ?"

महेन्द्र—"क्या वे सभी सन्तान ही हैं ?"

भवा०—"हां, सबके सब सन्तान ही हैं।"

महेन्द्र—"और कितने लोग हैं ?"

भवा०—"ऐसे हजारों हैं। धीरे धीरे और भी हो जायेंगे।"

महेन्द्र—"मान लिया, कि दस बीस हजार आदमी इकट्ठे ही हो गये, तो क्या होगा ? क्या इसीसे मुसलमानोंको मार भगाओगे ?"

भवा०—"पलासीमें अंग्रेजोंके पास कितनी फौज थी ?"

महेन्द्र—"अंग्रेजों और बंगालियोंकी क्या तुलना ?"

भवा०—"क्यों नहीं ? देहके जोरसे क्या होता है ? देहमें अधिक जोर होनेसे क्या अधिक गोली चलाई जा सकती है ?"

महेन्द्र—"फिर मुसलमानों और अंग्रेजोंमें इतना फर्क क्यों ?"

भवा०—"देखो, अंग्रेज प्राण जानेपर भी मैदानसे नहीं भागते और मुसलमान देहमें आंच लगते ही भाग जाते हैं और शरबत पानीकी धुनमें लग जाते हैं। इसके सिवा अंग्रेजोंमें दृढ़ता होती है, वे जिस कामको उठा लेते हैं, उसे पूरा किये बिना नहीं छोड़ते। पर मुसलमान महा आलसी हैं। बिचारे सिपाही रुपयेके लिये प्राण देते हैं, फिर भी बिचारोंको ठीक ठीक वेतन नहीं मिलता। इसके सिवाय साहस चाहिये। तोपका गोला एक

जगह छोड़कर दस जगह तो गिरेगा नहीं, फिर एक गोलेके डरसे दस आदमियोंके भागनेका क्या काम है? पर एक गोला छूटते ही दलके दल मुसलमान भाग खड़े होते हैं। इधर सैकड़ों गोले देखकर भी एक अंग्रेजका बच्चा नहीं भागता।"

महेन्द्र—"तो क्या तुम लोगोंमें ये सब गुण मौजूद हैं?"

भवा०—"नहीं; पर गुण किसी पेड़में फलते नहीं, अभ्यास करनेसे ही आते हैं।"

महेन्द्र—"क्या तुम लोग अभ्यास कर रहे हो?"

भवा०—"देखते नहीं, हम सब सन्यासी हैं? इसी अभ्यासके लिये हमलोगोंने सन्यास ग्रहण किया है। काम पूरा होनेपर, अभ्यास भी पूरा हो जायगा और हमलोग फिर गृहस्थ हो जायंगे। हमारे भी पुत्र कलत्र हैं।"

महेन्द्र—"तुम लोग तो इस बन्धनसे मुक्त होकर मायाका जाल काट चुके हो?"

भवा०—"सन्तानको झूठ नहीं बोलना चाहिये। मैं तुम्हारे सामने झूठी बड़ाई न करूंगा। मायाका जाल कौन काट सकता है? जो यह कहता है, कि मैंने मायाका फन्दा काट दिया है, उसे या तो माया व्यापी ही नहीं, अथवा वह बड़ा भारी झूठा है, व्यर्थकी डींग मारता है। हमलोगोंने मायाका फन्दा नहीं काटा है, केवल व्रतकी रक्षा कर रहे हैं। क्या तुम भी सन्तान होना चाहते हो?"

महेन्द्र—"बिना स्त्री कन्याका संवाद पाये मैं कुछ नहीं कह सकता।"

भवा०—"चलो तुम्हारी स्त्री कन्यासे मुलाकात करा दूं।"

इतना कह, दोनों चल पड़े। भवानन्द फिर "वन्देमातरम्" गाने लगे। महेन्द्रका गला बड़ा सुरीला था; सङ्गीत विद्यामें कुछ अनुराग भी था, अतएव वे भी साथ ही साथ गाने लगे। उन्होंने देखा, कि गाते गाते आंखें आप ही आप भर आती हैं। महे-

न्द्रने कहा,—यदि स्त्री कन्याको न छोड़ना पड़े तो मुझे भी यह व्रत ग्रहण कराओ।"

भवा०—"जो यह व्रत ग्रहण करता है, उसे स्त्री कन्या छोड़ देनी पड़ती है। यदि तुम यह व्रत ग्रहण करोगे, तो स्त्री कन्यासे न मिल सकोगे। हां उनकी रक्षाका पूरा बन्दोबस्त किया जायगा, परन्तु व्रतकी सफलता पर्यन्त तुम उनका मुख देख न सकोगे।"

महेन्द्र,"—तब तो मैं यह व्रत न लूंगा।"

ग्यारहवां परिच्छेद।

रात बीती, सवेरा हुआ। वह निर्जन वन जो अबतक अंधकारमय और सूनसान था, प्रकाशमय हो गया और पक्षियोंकी चहचहाहटसे आनन्दमय हो उठा। उसी आनन्दमय प्रभातमें, उस आनन्द काननके 'आनन्द मठ' में सत्यानन्द ब्रह्मचारी मृगचर्मपर बैठे सन्ध्या कर रहे हैं। पासमें जीवानन्द बैठे हुए हैं। इसी समय भवानन्द महेन्द्रसिंहको साथ लिये हुए आ पहुंचे। पर ब्रह्मचारीजी एकाग्रचित्त सन्ध्या कर रहे थे, इससे किसीको बोलनेका साहस न हुआ। कुछ देर बाद जब इनकी सन्ध्या समाप्त हुई, तब भवानन्द और जीवानन्द दोनों ही उन्हें प्रणाम कर, उनके पैरोंकी धूल सिरपर चढ़ा, विनम्र होकर बैठ रहे। सत्यानन्दने भवानन्दको इशारेसे अपने पास बुलाया और उन्हें बाहर ले गये। क्या बातचीत हुई, नहीं मालूम, पर जब वे दोनों मन्दिरमें लौट आये, तब ब्रह्मचारीने अपने मुंहपर दया भरी हंसी लाकर महेन्द्रसे कहा,—"बेटा! मैं तुम्हारे दुःखसे स्वयं बड़ा

दुःखी हो रहा हूं। कल एकमात्र दीनबन्धु भगवानकी ही दयासे मैं तुम्हारी स्त्री कन्याके प्राण बचा सका हूं।" यह कह, ब्रह्मचारी-ने कल्याणीकी रक्षाका सारा हाल कह सुनाया। इसके बाद बोले,—"चलो, अब वे दोनों जहां बैठी हैं, वहीं तुम्हें ले चलूंगा।"

यह कह, ब्रह्मचारीजी आगे आगे चले और महेन्द्र उनके पीछे। दोनों देवालयके भीतर गये। वहां पहुंचकर महेन्द्रने देखा, कि बड़ाही लम्बा चौड़ा और ऊंचा कमरा है। उस बालसूर्यकी किरणोंसे जब साराका सारा जंगल प्रस्फुटित मणिकी भांति जगमगा रहा है, उस लम्बे चौड़े कमरेमें प्रायः अंधेरा ही छाया हुआ है। पहले महेन्द्रको यह न मालूम पड़ा, कि उस घरमें क्या रखा है; पर आंखें गड़ाकर देखनेसे उन्हें दिखलाई पड़ा कि एक विशाल चतुर्भुज मूर्त्ति विराजमान है, जिसके चारों हाथोंमें शंख, चक्र, गदा, पद्म विराजमान हैं, हृदयपर कौस्तुभमणि शोभा पा रहा है और सामने सुदर्शन चक्र मानों घूम रहा है। सामने दो सिरकटी मूर्त्तियां है—जिनके शरीर रक्तरञ्जित हैं, सामने पड़ी हुई हैं जो शायद मधु और कैटभकी हैं। बाईं ओर बिखरे केश कमलकी मालासे सुशोभित लक्ष्मी भयभीत सी खड़ी हैं। दाहिनी ओर सरस्वती पुस्तक, वीणा और मूर्त्तिमत् राग-रागि-नियोंसे घिरी हुई खड़ी हैं। विष्णुकी गोदमें एक मोहिनी मूर्ति पड़ी हुई है, जो लक्ष्मी और सरस्वतीसे कहीं अधिक सुन्दरी और ऐश्वर्य और प्रतापमें बढ़ी चढ़ी मालूम पड़ती है। गन्धर्व, किन्नर, देव, यक्ष, सब उसकी पूजा कर रहे हैं। ब्रह्मचारीने अति गम्भीर और अति भीत स्वरसे पूछा,—"क्यों महेन्द्र! सब देख रहे हो न?"

महेन्द्र—"हां, देख रहा हूं।"

ब्रह्म०—"विष्णुकी गोदमें कौन है?"

महेन्द्र—"देखता तो हूं, पर वे कौन हैं?"

ब्रह्म०—"मां।"

महेन्द्र—"मां कौन ?"

ब्रह्म०—"हमलोग जिसकी सन्तान हैं।"

महेन्द्र—"वे कौन हैं ?"

ब्रह्म०—"समय आनेपर उन्हें पहचान लोगे, बोलो, "बन्दे मातरम्"। अब चलो, तुम्हें और कुछ दिखलाऊं।"

यह कह, ब्रह्मचारी उन्हें एक दूसरे कमरेमें ले गये। वहां जाकर महेन्द्रने देखा, कि एक अपूर्व, सर्वाङ्गसम्पन्ना, सर्वाभरण-भूषिता जगद्धात्रीकी मूर्त्ति रखी है। महेन्द्रने पूछा—"ये कौन हैं ?"

ब्रह्म०—"मां, जैसी पहले थीं, उसीकी वह मूर्त्ति है।"

महेन्द्र—मांने हाथी और सिंह आदि जंगली जानवरोंको पैरों तले कुचलकर जंगली जानवरोंके रहनेके स्थानमें अपना पद्मासन जमाया था। उस समय वह सर्वालङ्कारभूषिता और हास्यमयी सुन्दरी थीं। इनकी बाल सूर्यकी तरह कान्ति थी, ये सब ऐश्वर्योंसे भरी पूरी थीं। इन्हें प्रणाम करो।"

महेन्द्रने बड़ी भक्तिसे जगद्धात्रिरूपिणी मातृभूमिको प्रणाम किया। तब ब्रह्मचारीने उन्हें एक अंधेरी सुरंग दिखलाते हुए कहा—"इसी रास्तेसे चले आओ।" यह कह वे स्वयं आगे आगे चले। महेन्द्र डरते डरते उनके पीछे हो लिये। भूगर्भके अंधेरे कमरेसे न जाने कैसी रोशनी आ रही थी। उस हलकी रोशनीमें उन्होंने एक काली मूर्त्ति देखी।

ब्रह्मचारीने कहा,—"देखो यह मांका वर्तमान रूप है।"

महेन्द्रने डरते हुए कहा,—"मां काली हो गयी हैं ?

ब्रह्म०—"हां, काली हो हा गयी हैं—एकदम अन्धकारसे घिरी हुई कालिमामयी हो रही हैं। इनका सर्वस्व लुट गया है, इसीसे नंगी हो रही हैं। आज सारा देश श्मशान-तुल्य हो रहा है इसीलिये मांने कंकालकी माला धारण कर ली है।

अपने सौभाग्यको अपने ही पैरों तले कुचल रही है। हाय मां!" यह कहते कहते ब्रह्मचारीकी आंखोंसे आंसुओंकी धारा बह चली।

महेन्द्रने पूछा—"हाथमें खड्ग-खप्पर क्यों है?"

ब्रह्म०—"हम उनकी सन्तान हैं, इसीसे हमने मांके हाथमें यही अस्त्र दे दिये हैं। बोलो—बन्दे मातरम्।"

"बन्दे मातरम्" कहकर महेन्द्रने कालीको प्रणाम किया। तब ब्रह्मचारीने कहा,—"इधर आओ।" यह कह, वे दूसरी सुरंगमें घुसे और उसी राहसे ऊपर चढ़ने लगे। सहसा उनकी आंखें प्रातःकालके सूर्यकी किरणोंसे चमक उठीं। चारों ओरसे पक्षी सुरीले गीत गाने लगे। महेन्द्रने देखा कि एक संगमर्मरके बने हुए लम्बे चौड़े मन्दिरके अन्दर एक सोनेकी बनी हुई दश-भुजी मूर्त्ति, बालसूर्यकी किरणोंसे देदीप्यमान मानों हंस रही है। ब्रह्मचारीने प्रणाम कर कहा,—"देखो, मांका यही भविष्य रूप होगा। दशों दिशाओंमें दशों भुजाएं फैली हुई हैं, जिनमें हथियारके स्थान तरह तरहकी शक्तियां सुशोभित हैं; पैरों तले शत्रु विमर्दित होकर पड़ा हुआ है; उनके चरणोंकी सेवा करने-वाले बड़े बड़े वीर केसरी शत्रु संहार करनेमें लगे हुए हैं। "दिग्भुजा" कहते कहते सत्यानन्दका गला भर आया और वे रोने लगे,—"दिग्भुजा, नाना आयुधधारिणी शत्रु मर्दिनी वीरेन्द्र-पृष्ठ-विहारिणी; दक्षिण भागमें भाग्यरूपिणी लक्ष्मी और वाम भागमें वाणी, विद्या-विज्ञान-दायिनी सरस्वती मौजूद हैं। साथ ही बलरूपी कार्त्तिकेय और कार्य-सिद्धि-रूपी गणेश भी विराजमान हैं। आओ; हम दोनों ही मांको प्रणाम करें।"

तब वे दोनों व्यक्ति ऊपरको सिर उठा; हाथ जोड़; एक स्वरसे प्रार्थना करने लगे।

"सर्वमंगलमांगल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके!

शरण्ये त्र्यम्बिके गौरि ! नारायणि ! नमोऽस्तु ते ।"

दोनों व्यक्तियोंने भक्ति भावसे प्रणाम किया । तब महेन्द्रने गद्गद कंठसे पूछा,—"मांकी यह मूर्त्ति कब दिखाई देगी ?"

ब्रह्मचारीने कहा,—"जिस दिन मांकी सभी सन्तान उन्हें मां कहकर पुकारने लगेंगी; उसी दिन वे प्रसन्न होंगी ।"

सहसा महेन्द्र पूछ बैठे,—"मेरी स्त्री कन्या कहां हैं ?"

ब्रह्मचारी—"चलो दिखलादूं ।"

महेन्द्र—"उन्हें एक बार देखकर ही मैं बिदा कर दूंगा ।"

ब्रह्मचारी—"क्यों ?"

महेन्द्र—"मैं यह महामन्त्र ग्रहण करूंगा ।"

ब्रह्म०—"उन्हें कहां भेजोगे ?"

महेन्द्र कुछ देर सोचनेके बाद बोले—"मेरे घरपर कोई नहीं है और कोई दूसरा स्थान भी नहीं है । इस महामारीके जमानेमें उन्हें रखनेको और स्थान ही कहां पाऊंगा ।"

ब्रह्म०—"जिस राहसे तुम यहां आये हो, उसी राहसे मन्दिरके बाहर जाओ । मन्दिरके दरवाजेपर ही तुम्हारी स्त्री और कन्या बैठी हैं । कल्याणीने अबतक भोजन नहीं किया है । जहां वे दोनों मां बेटी बैठी हैं, वहीं खाने पीनेको चीजें भी रखी हैं । उन्हें खिला पिलाकर, तुम्हारी जो इच्छा हो करना । अब तुम हममेंसे किसीको न देख सकोगे । तुम्हारा मन यदि ऐसा ही रहा, तो उपयुक्त समय आनेपर मैं आ मिलूंगा ।"

यह कहकर, ब्रह्मचारी न जाने किस पथसे जाकर अन्तर्धान हो गये । महेन्द्रने बतलाये हुए रास्तेसे बाहर आते ही देखा कि कल्याणी कन्याको गोदमें लिये नाट्यशालामें बैठी है ।

इधर सत्यानन्द एक दूसरी सुरंगसे नीचे उतरकर तहखानेके एक कमरेमें चले आये । वहाँ जीवानन्द और भवानन्द रुपये गिन गिनकर उनकी अलग अलग, गड्डियां लगा रहे थे । उस घरमें ढेरके ढेर सोना, चांदी, तांबा, हीरा, मूंगा और मोती आदि

रखे हुए थे। ये दोनों कल रातके लूटे हुए रुपयोंकी गड्डियां लगानेमें लगे हुए थे। सत्यानन्दने कमरेमें प्रवेश करते ही कहा—"जीवानन्द! महेन्द्र भी हमारे दलमें आनेवाला है। उसके मिल जानेसे सन्तानोंका विशेष उपकार होगा; क्योंकि उसके बाप दादोंका सञ्चित सारा धन मांकी सेवामें लग सकेगा, पर जबतक वह काय मनो वाक्यसे मातृभक्त नहीं बन जाता उसे ग्रहण न करना। अपना अपना काम करके तुम लोग भिन्न भिन्न समयपर उसका अनुसरण करते रहना। अवसर देखकर उसे श्रीविष्णु भगवानके मण्डपमें ले आना। समय कुसमयमें उसकी रक्षा बराबर करते रहना; क्योंकि दुष्टोंका शासन करना जैसा धर्म है वैसा ही शिष्टोंकी रक्षा करना भी है।

बारहवां परिच्छेद।

अनेक कष्ट सहनेके बाद महेन्द्र और कल्याणीकी मुलाकात हुई। कल्याणी फूट फूटकर रोने लगी। महेन्द्र तो और भी फूट फूटकर रोने लगे। रोने धोनेके बाद आंखें पोंछने लगे। जितना अधिक आंखें पोंछते उतने ही अधिक आंसू उमड़ आते। आंसू रोकनेके लिये ही कल्याणीने खाने पीनेकी बात छेड़ दी। ब्रह्मचारीके अनुचर जो कुछ भोजन रख गये थे; उसको खानेके लिये उसने महेन्द्रसे अनुरोध किया। दुर्भिक्षके दिनोंमें अन्न व्यञ्जन कहां मिलते हैं। पर देशमें जो कुछ है, वह 'सन्तानों' के लिये सुलभ ही है। उस जंगलमें साधारण मनुष्यकी पहुंच नहीं थी, इसलिये इस दुर्गम वनके फलोंको कोई नहीं लेने आता था, नहीं तो जहां कहीं फल दिखाई पड़ते थे, भूखसे तड़पते हुए लोग उसे तोड़कर खा जाते थे। इसीसे ब्रह्मचारीके

अनुचर अनेक तरहके जङ्गली फल और थोड़ा सा दूध रख गये थे। इन संन्यासियोंके बहुत सी गायें भी थीं। कल्याणीका कहा मान, महेन्द्रने पहले तो स्वयं कुछ फलाहार किया। इसके बाद दूधमेंसे थोडासा लड़कीको पिलाया और थोड़ासा बचाकर रख दिया; कि फिर पिलायेंगे। इसके बाद ही दोनोंको नींद आने लगी और उन्होंने निश्चिन्त होकर कुछ देर विश्राम किया। नींद टूटनेपर दोनोंमें इस बातकी सलाह होने लगी कि अब कहां चलना चाहिये। कल्याणीने कहा;—"विपदकी बात सोचकर ही घर छोड़कर बाहर निकले थे। पर अब देखती हूं कि घरसे तो बाहर ही विपद बहुत है। तब चलो, घर ही लौट चलें।" महेन्द्रका भी यही अभिप्राय था। वे चाहते थे कि कल्याणीको घरपर रख किसीको उसकी देख रेखके लिये ठीक कर चला आऊं और इस परम रमणीय अलौकिक, पुनीत मातृ-सेवा-व्रतमें लग जाऊं। इसलिये वे झट राजी हो गये। इस तरह दोनों व्यक्ति पूरी तरह विश्राम कर कन्याको गोदमें ले पद-चिन्ह ग्रामकी ओर चले।

पर उस अगम वनसे पदचिन्ह जानेका रास्ता उन्हें नहीं मिला। उन्होंने सोचा था कि जङ्गलसे बाहर निकलते ही रास्ता मिल जायगा पर यहां तो बाहर निकलनेका ही रास्ता न मिला। वे बड़ी देरतक जङ्गलके भीतर भटकते रहे; फिर फिर कर उसी मठमें लौट आते थे। कहींसे रास्ता नहीं दिखाई देता था। सामने ही एक वैष्णवोंका बाना पहने हुए ब्रह्मचारी खड़े हंस रहे थे। उन्हें देख, महेन्द्रने झुंझलाकर कहा—"बाबाजी! हंसते क्यों हो?"

बाबाजी—"तुम लोग इस वनमें कैसे आये?"

महेन्द्र—"चाहे जैसे आये, पर आ गये हैं।"

बाबाजी—"फिर बाहर क्यों नहीं निकल पाते?" इतना कह वे फिर हंसने लगे।

महेन्द्र झल्ला उठे, बोले,—"बड़े हंसनेवाले बने हो; पर क्या तुम स्वयं बाहर निकल सकते हो ?"

वैष्णव बाबाने कहा,—"हां, मेरे साथ आओ, मैं तुम्हें अभी रास्ता दिखाये देता हूं। तुम दोनों अवश्यही किसी संन्यासी या ब्रह्मचारीके साथ यहां आये हो, नहीं तो इस मठमें आने जानेका रास्ता और किसीको नहीं मालूम है।"

यह सुन महेन्द्रने पूछा—"तो क्या आप भी सन्तान हैं ?"

वैष्णवने कहा—"हां, मैं भी सन्तान ही हूं। आओ, मेरे साथ साथ चले आओ। मैं तुम लोगोंको रास्ता दिखलानेके लिये ही यहां खड़ा हूं।" महेन्द्र—"आपका नाम क्या है ?"

वैष्णव—"धीरानन्द गोस्वामी।"

यह कह, धीरानन्द आगे आगे चले और महेन्द्र तथा कल्याणी उनके पीछे। बड़े टेढ़े रास्तेसे उन्हें जङ्गलके बाहर निकालकर धीरानन्द फिर उसी वनमें चले आये।

आनन्द वनसे बाहर हो कुछ दूर जाते ही उन्हें हरे भरे वृक्षोंसे भरा हुआ मैदान दिखाई दिया। एक ओर तो मैदान था और दूसरी ओर जङ्गलके बगलसे सड़क चली जाती थी। एक स्थानपर वनके बीचमेंसे बहती हुई एक छोटीसी नदी कलकल कर रही थी। उसका जल नि॰ल और अति नीले रंगका था। नदीके दोनों ओरके सुन्दर शोभामय नाना भांतिके वृक्षोंकी छाया जलपर पड़ रही थी। तरह तरहके पक्षी वृक्षोंपर बैठे हुए कलरव कर रहे थे। वह मीठी मीठी बोलियां नदीके मधुर कल कल शब्दमें मिल जाती थीं। उसी तरह वृक्षोंकी छाया और जलके रंग भ। आपसमें मिल गये थे। कदाचित् कल्याणीका मन भी उस छायामें रम गया। कल्याणी एक वृक्षके नीचे बैठ गयी और स्वामीसे भी बैठनेके लिये अनुरोध करने लगी। कल्याणीने स्वामीकी गोदसे कन्याको लेकर अपनी गोदमें बिठा लिया। इसके बाद स्वामीका हाथ अपने हाथमें लिये

हुए वह कुछ देरतक चुपचाप बैठी रही। फिर पूछा,—"आज मैं आपको बड़ा उदास देख रही हूं। सिरपर जो विपद् आयी थी, वह तो टलही गयी, फिर यह उदासी किस लिये ?"

महेन्द्रने एक लम्बी सांस लेकर कहा,—"अब मैं अपने आपेमें नहीं हूं। क्या करूं, कुछ समझमें नहीं आता।"

कल्याणी---"क्यों ?"

महेन्द्र—"तुम्हारे खोजानेपर मेरे ऊपर जो बीती, उसका हाल कहता हूं, सुनो।"

यह कह महेन्द्रने सारी कथा व्यौरेवार कह सुनायी।

कल्याणीने कहा,—"मेरे ऊपर भी बड़े सङ्कट आये। मैं भी बड़ी मुसीबतमें पड़ गयी थी। पर वह सब सुनकर क्या लाभ, इतना दुःख होनेपर भी मुझे कैसे नींद आ गयी थी, समझमें नहीं आता; कल रात पिछले पहर मुझे नींद आ गयी थी। नींदमें मैंने स्वप्न देखा, किस पुण्यबलसे मैंने वैसा स्वप्न देखा, नहीं कह सकती। मैंने देखा कि मैं एक अपूर्व स्थानमें पहुंच गयी हूं। वहां मिट्टीका नामोनिशान नहीं है—है केवल ज्योति—अत्यन्त शीतल, तड़ित प्रवाहकी तरह अत्यन्त मधुर ज्योति। वहां मनुष्य नहीं हैं—केवल ज्योतिर्मयी मूर्त्तियांही दिखाई पड़ती हैं। वहां किसी तरहका शब्द नहीं होता—केवल कहीं दूरपर मधुर गीत वाद्यकी तरह कोई शब्द सुनाई पड़ता है। नवविकसित लक्ष लक्ष मल्लिका मालती तथा गन्धराजकी गन्ध चारों ओर फैली है। वहां सबसे ऊपर, सबके दर्शनीय स्थानमें न जाने कौन बैठा है, मानों नील पर्वत अग्निके समान भीतर ही भीतर मन्द मन्द जल रहा हो। उनके सिरपर बड़ा भारी दीप्तमान किरीट शोभा पा रहा है। उनके चार हाथ हैं और उनके दोनों तरफ कौन थीं, मैं नहीं पहचान सकी कदाचित् वे स्त्री-मूर्तियां थीं, किन्तु उनमें इतना रूप, इतनी ज्योति, इतना सौरभ था कि मैं तो उनकी ओर देखते ही

विह्वलसी हो गयी। और अच्छी तरह आंखें लगाकर न देख सकी और न पहचान सकी, कि ये कौन हैं। उन्हीं चतुर्भुज देवताके पास एक और स्त्री-मूर्ति थी। वह जो ज्योतिसे जगमगा रही थी; पर चारों ओर मेघ छा रहे थे, इसलिये ज्योति अच्छी तरह फूटकर बाहर नहीं निकल रही थी—धुंधली दिखाई दे रही थी। इससे मालूम होता था, कि वह कुछ खिन्न सी हो रही है। मुझे ऐसा मालूम पड़ा मानों कोई अत्यन्त रूपवती स्त्री मार्मिक वेदनाके कारण रो रही है। मन्द सुगन्धि युक्त वायुके तरङ्गोंमें प्रवाहित मैं भी उसी चतुर्भुजी मूर्तिके सिंहासनके सामने आ गयी। तब मानों उसी दुःखिता और मेघमण्डिता स्त्रीने मेरी ओर इशारा करते हुए कहा—"बस यही है वह, जिसके कारण महेन्द्र मेरी गोदमें नहीं आता।" इसी समय मुझे सुरीली मधुर ध्वनि सुनाई पड़ी। उस चतुर्भुजने मानों मुझसे कहा—"तुम स्वामीको छोड़कर मेरे पास चली आओ। यही तुम लोगोंकी मां है—तुम्हारा स्वामी इनकी सेवामें लगने वाला है। यदि तुम अपने स्वामीके पास रहोगी, तो वह इनकी सेवा न कर सकेगा। तुम चली आओ।" मैं रो पड़ी और बोली, कि स्वामीको छोड़कर कैसे आऊँ? एक बार फिर वही मधुर ध्वनि सुनाई पड़ी कि मैं ही स्वामी, मैं ही माता, मैं ही पिता, मैं ही पुत्र और मैं ही कन्या हूं—तुम मेरे निकट आ जाओ। इसपर मैंने क्या उत्तर दिया, याद नहीं है; क्योंकि इसके बाद ही मेरी नींद टूट गयी।" यह कहकर कल्याणी चुप हो गयी।

महेन्द्र भी विस्मय और भयसे चुप हो रहे। पेड़के ऊपर दहियल नामक पक्षी बोल उठा, पपीहा 'पी कहां'के शोरसे आसमान गुंजाने लगा, कोयलकी कूक दशों दिशाओंमें गूंज गयी, भृंगराज अपने सुरीले कण्ठसे काननको प्रतिध्वनित करने लगे। सामने नदी कलकल शब्द कर रही थी। हवा जङ्गली फूलोंकी

भीनी भीनी सुगन्धमें सराबोर थी, बीच बीचमें कहीं कहीं नदीके जलमें सूर्यकी किरणें झलमला रही थीं। कहीं ताड़के पत्तोंका मृदु-मधुर मर्मर शब्द हो रहा था। दूरपर नीले रङ्गकी पर्वत-श्रेणी दिखाई दे रही थी। इन सब सौन्दर्यका आनन्द लेते हुए दोनों बड़ी देरतक चुपचाप बैठे रहे। इसके बाद कल्याणीने पूछा—"क्या सोच रहे हो?"

महेन्द्र—"यही, कि क्या करूं। स्वप्न केवल निर्भाषिका मात्र है, यह आप ही मनमें उत्पन्न होता और आप ही लय हो जाता है। वह और कुछ नहीं—जीवनका जल-विम्ब मात्र है। चलो, घर चलें।"

कल्याणी—"देवता तुम्हें जहां जानेको कहें वहीं जाओ।" यह कहकर कल्याणीने कन्याको स्वामीकी गोदमें दे दिया।

महेन्द्रने कन्याको गोदमें लेकर पूछा—"और तुम—तुम कहां जाओगी?"

कल्याणीने दोनों हाथोंसे आंखें मूंद, सिर थामकर कहा,—"मुझे भी देवता जहां जानेको कहेंगे, वहीं चली जाऊंगी।"

महेन्द्र चौंककर बोले—"वह जगह कहां है? वहां किस तरह?"

कल्याणीने स्वामीको जहरकी डिबिया दिखला दी।

महेन्द्रने विस्मित होकर पूछा—"क्या तुम विष खाओगी?"

"खानेका विचार कर चुकी थी, परन्तु"—इतना कहकर कल्याणी कुछ सोचने लगी। महेंद्र उसके मुंहकी ओर ताकते रह गये। उन्हें एक एक पल एक एक वर्ष मालूम पड़ने लगा। कल्याणीने पूरी बात नहीं कही यह देख महेंद्रने पूछा—"तुम क्या कह रही थी कहो न?"

कल्याणी—"खानेका इरादा कर चुकी थी पर तुम्हें और सुकुमारीको छोड़कर बैकुण्ठमें भी जानेकी मेरी इच्छा नहीं होती। मुझसे मरा न जायगा।"

यह कह कल्याणीने विषकी डिबिया जमीनमें रख दी। फिर दोनों व्यक्ति भूत और भविष्यके सम्बन्धमें बातें करने लगे। ध्यान बट गया। लड़कीने खेलते खेलते विषकी डिबिया उठा ली, दोनोंमेंसे किसीने न देखा।

सुकुमारीने उस डिबियाको कोई उमदा खिलौना समझा। उसने एक बार उसे बायें हाथसे पकड़कर दाहिने हाथसे जोरसे दबाया। फिर दाहिने हाथसे पकड़कर बायें हाथसे दबाया। इसके बाद दोनों हाथोंसे उसे खोलनेकी चेष्टा करने लगी। अन्तमें डिबिया खुल गयी और विषकी गोली नीचे गिर पड़ी।

गोली उसके पिताके कपड़ेपर गिरी थी। उसे देखकर सुकुमारीने सोचा कि यह कोई और भी अच्छा खिलौना है। डिबिया छोड़कर उसने गोलीकी ओर हाथ बढ़ाया और उसे झटपट उठा लिया।

गोली उठाकर उसने मुंहमें डाल ली।

"क्या खाया? क्या खाया? हाय, सर्वनाश हुआ!" यह कह, कल्याणीने झट उसके मुंहमें उंगली डाल दी। दोनोंने देखा कि विषकी डिबिया खाली पड़ी है। इसे भी एक तरहका खेल समझकर सुकुमारी अपनी नन्हीं नन्हीं दंतुलियां निकाल अपनी मांकी ओर देखकर हँसने लगी। इतनेमें विषकी गोली जो कसैली मालूम पड़ी तो सुकुमारीने झट मुंह बा दिया और कल्याणीने गोली उसके मुंहसे बाहर निकालकर फेंक दी। बालिका रोने लगी।

गोली ज्योंकी त्यों जमीनमें पड़ी रही। कल्याणी दौड़ी नदी-से आंचल भिगो लायी और कन्याके मुहमें जल निचोड़ने लगी। उसने अधीर होकर महेन्द्रसे पूछा,—"क्या कुछ जहर पेटमें भी चला गया है?"

सबसे पहले सन्ततिकी दुष्कामना ही मां बापके ध्यानमें

आती है। जहां अधिक प्रेम होता है, वहां आशंका भी अधिक होती है। महेन्द्रने पहले नहीं देखा था, कि विषकी गोली कितनी बड़ी थी। यह प्रश्न सुन, उसे अच्छी तरह देख भालकर बोले,—"हां, मालूम होता है, कि बहुतसा खा गयी है।'

कल्याणीको भी सहज ही इस बातका विश्वास हो गया। वह भी बड़ी देरतक विषकी गोलीको देखती रही। थूकके साथ विषका कुछ अंश पेटमें चला गया था, अतएव विषके प्रभावसे वह बेहोश होने लगी। वह छटपटाने लगी और रोती रोती एकदम बेसुध हो गयी। तब कल्याणीने स्वामीसे कहा,—"अब क्या देखते हो? सुकुमारीको देवताओंने बुला लिया। वह जिस राहपर गयी है, मुझे उस राहपर जाना है।" यह कह, कल्याणी उस विषकी गोलीको मुंहमें डालकर तुरत ही निगल गयी।

महेन्द्र रो पड़े बोले,—"हाय! कल्याणी! तुमने यह क्या कर डाला?"

कल्याणीने कुछ उत्तर न दिया, स्वामीके पैरोंकी धूल माथे चढ़ाकर बोली,—"स्वामी, अब बातें करना व्यर्थ है, मैं तो चली।"

"हाय! कल्याणी! यह तुमने क्या कर डाला।" यह कहकर महेन्द्र जार जार रोने लगे। कल्याणीने बड़े ही धीमे स्वरमें कहा, —"मैंने जो कुछ किया है, अच्छा ही किया है। तुच्छ नारीके कारण तुम्हें देवताके कार्यसे विमुख होना पड़ता। मैंने देवताकी बात टाल देनी चाही थी, इससे मेरी लड़कीके प्राण गये। अधिक अवज्ञा करती, तो कदाचित् तुम्हींको खोना पड़ता।"

महेन्द्रने रोते हुए कहा,—"मैं तुम्हें कहीं रख आता। जब हमलोगोंका कार्य सिद्ध हो जाता, तब फिर तुम्हें लेकर सुखसे जीवन बिताता। कल्याणी! तुम्हारे ही दमतक तो मेरा इस दुनियांसे नाता था। तुमने आज यह क्या कर डाला? जिस हाथके बलपर मैं तलवार पकड़ता वही हाथ तुमने आज काट डाला। तुम्हारे बिना अब मैं व्यर्थ हूं।"

कल्याणी,—"तुम मुझे कहां ले जाकर रख आते ? ऐसा कौन स्थान रह गया है ? माँ, बाप, भाई बन्धु सभी तो इस अकाल चक्करमें पड़कर मर गये। फिर मेरे लिये किसके घरमें जगह थी, जहां ले जाते ? मुझे कौन सी राह ले जाते, तुम्हीं कहो ? मैं तुम्हारे गलेकी फांस थी, मर गयी, बला टली। अब मुझे आशीर्वाद दो, कि मैं मरकर उसी ज्योतिर्मय लोकमें जाऊं और वहीं तुमसे मिलूं।" यह कहकर कल्याणीने फिर स्वामीकी पदरज माथेपर चढ़ायी। महेन्द्र कुछ बोल न सके, फिर रोने लगे। कल्याणी अति मृदु, अति मनोहर, अति स्नेहमय कण्ठसे फिर कहने लगी,—"देवताकी इच्छाको कौन टाल सकता है ? उन्होंने मुझे संसारसे बिदा होनेकी आज्ञा दी है, अब मैं चाहूं भी तो ठहर नहीं सकती। यदि मैं अपने आप विष खाकर न मरती तो मुझे और ही कोई मारता। इसलिये प्राण देकर मैंने कुछ बुरा काम नहीं किया। तुमने जो व्रत ग्रहण किया है, उसे काय वचन मनसे सिद्ध करो, इससे तुम्हें पुण्य होगा। इसी पुण्यके प्रभावसे मुझे स्वर्ग मिलेगा। फिर हम तुम इकट्ठे हो अनन्त कालतक स्वर्गका सुख भोग करते रहेंगे।" इधर सुकुमारीने एक बार वमन किया, इससे वह कुछ सम्हल गयी। उसके पेटमें इतना विष नहीं पहुंचा था, जिससे जान निकल जाती। पर उस समय महेन्द्रका ध्यान उसकी ओर नहीं था। वे कन्याको कल्याणीकी गोदमें रख, दोनोंको गाढ़ आलिङ्गन कर रोने लगे। उसी समय जङ्गलके भीतरसे मृदु, पर मेघकी तरह गम्भीर शब्द सुनाई दिया,—

"हरे ! मुरारे ! मधुकैटभारे !
गोपाल ! गोविन्द ! मुकुन्द ! शौरे !"

उस समय कल्याणीकी नस नसमें विष प्रवेश कर रहा था, उसकी चेतना कुछ कुछ लुप्त हो रही थी। उसने बेहोशीकी ही

हालतमें सुना मानों उसी बैकुण्ठमें उसी बंसीकी सुरीली तानमें कोई गा रहा है :—

"हरे ! मुरारे ! मधुकैटभारे !
गोपाल ! गोविन्द ! मुकुन्द ! शौरे !"

कल्याणी भी उसी बेहोशीकी हालतमें अपने सुमधुर कण्ठसे पुकार उठी,—"हरे ! मुरारे ! मधुकैटभारे !" उसने महेन्द्रसे कहा,—"बोलो—हरे ! मुरारे ! मधुकैटभारे !"

जङ्गलसे आते हुए उस मधुर स्वर तथा कल्याणीके मुंहसे निकले हुए मधुर स्वरसे विमुग्ध हो, ईश्वरकी सहायतामें विश्वास कर, कातरचित्त महेन्द्र भी कह उठे,—

"हरे ! मुरारे ! मधुकैटभारे !"

फिर तो चारों ओरसे यही ध्वनि उठने लगी-"हरे ! मुरारे ! मधुकैटभारे !" मानों पेड़ोंपर बैठे पक्षी भी कहने लगे :—

"हरे ! मुरारे ! मधुकैटभारे !"

नदीके कल कल नादसे भी मानों यही ध्वनि निकलने लगी,

"हरे ! मुरारे ! मधुकैटभारे !"

उस समय महेन्द्र अपना सारा शोक सन्ताप भूल गये। पागलोंकी तरह कल्याणीके सुरमें सुर मिलाकर कहने लगे,—

"हरे ! मुरारे ! मधुकैटभारे !"

जङ्गलके भीतरसे भी मानों उन्हींकी तानमें तान मिलाकर कोई कह रहा था :—

"हरे ! मुरारे ! मधुकैटभारे !"

क्रमशः कल्याणीका कण्ठ-स्वर धीमा पड़ने लगा। तोभी वह कह रही थी,

"हरे ! मुरारे ! मधुकैटभारे !"

धीरे धीरे कण्ठ बन्द हो गया। कल्याणीके मुंहसे आवाज नहीं निकलती। उसकी आंखें बन्द हो गयीं, देह ठंढी पड़ गयी। महेन्द्र समझ गये, कि कल्याणी "हरे ! मुरारे !" रटती

रटती बैकुण्ठ धामको चली गयी। तब पागलोंकी तरह ऊंचे स्वरसे काननको कम्पित करते और पशु पक्षियोंको डराते हुए महेन्द्र पुकारने लगे,—

"हरे! मुरारे! मधुकैटभारे!"

उसी समय न जाने किसने वहां जाकर उन्हें अपनी छातीसे लगा लिया और उनके गलेमें गला मिलाकर पुकारने लगा, :-

"हरे! मुरारे! मधुकैटभारे!"

फिर तो दोनों व्यक्ति उसी अनन्तकी महिमासे, उस अनन्त अरण्यमें, उस अनन्त पथगामिनीके शरीरके सामने बैठे हुए अनन्त भगवानका नाम ले लेकर पुकारने लगे। पशु पक्षी चुप हैं, पृथ्वी शोभामयी हो रही है। वह स्थान और समय इस परम सङ्गीत-के लिये पूर्ण रूपसे उपयुक्त था, सत्यानन्द महेन्द्रको गोदमें लेकर बैठ गये।

तेरहवां परिच्छेद।

—:o:—

इधर राजधानीके हर गलीकूचेमें हलचलसी मच गयी। खबर फैल गयी कि जो सरकारी खज़ाना कलकत्तेको चालान किया गया था, उसे संन्यासियोंने लूट लिया। संन्यासियोंको पकड़नेके लिये बहुतसे सिपाही और भाला-बरदार छोड़े गये। इन दिनों अकालके मारे उस दुर्भिक्षपीड़ित प्रदेशमें सच्चे संन्यासी बहुत ही कम रह गये थे, क्योंकि संन्यासी भीख मांग-कर खानेवाले ठहरे, पर यहां जब गृहस्थोंको ही खाना नसीब नहीं होता था, तब संन्यासियोंको भीख कौन देता? इसलिये जो लोग सच्चे संन्यासी थे, वे पेटकी मारसे काशी, प्रयाग आदि स्थानोंमें चले गये। हां, जो लोग अपनेको 'सन्तान' कहते थे, वे ही कभी तो संन्यासीका वेश धारण कर लेते थे और कभी

इच्छा होनेपर उसे उतार फेंकते थे। अब जब संन्यासियोंकी धर-पकड़ होने लगी, तब सबोंने संन्यासीका बाना उतार फेंका। लालचके पुतले सरकारी नौकर, कहीं संन्यासियोंकी सूरत न देख, केवल गृहस्थोंके ही बर्त्तन भांड़े फोड़कर सन्तोष करने लगे। केवल सत्यानन्द गेरुआ वसन किसी समय नहीं त्यागते थे।

उसी कृष्ण कल्लोलिनी क्षुद्र नदीके तीरपर रास्तेके किनारे एक पेड़के नीचे कल्याणी पड़ी है, महेन्द्र और सत्यानन्द एक दूसरेको आलिङ्गन किये, डबडबायी आंखोंसे ईश्वरकी गुहार कर रहे हैं, ऐसे समय नजीरुद्दीन जमादार सिपाहियोंके साथ वहां आ पहुंचा और सत्यानन्दका गला पकड़कर बोला, "यही साला संन्यासी है।"

दूसरे सिपाहीने इसी तरह महेन्द्रको भी पकड़ लिया। क्योंकि उसने सोचा, कि जब यह संन्यासीके साथ है, तब जरूर यह भी संन्यासी ही होगा। तीसरा घासपर पड़ी हुई कल्याणी-को भी पकड़ने चला, पर यह देखकर लौट आया कि यह तो एक औरतकी लाश है। इसी विचारसे उन्होंने लड़कीको भी छोड़ दिया। वे लोग बिना कुछ कहे सुने चुपचाप सत्यानन्द और महेन्द्रको बांधकर ले चले। कल्याणीकी लाश और नन्हींसी लड़की बिना किसी रक्षकके वहीं पेड़के तले पड़ी रह गयी।

पहले तो शोक और प्रेमसे उन्मत्त होनेके कारण महेन्द्रको कुछ सुधबुध न थी। इसीलिये कहाँ क्या हो रहा है और क्या हो गया है, यह उनकी समझमें नहीं आया। उन्होंने सिपाहियोंको बांधनेमें बाधा नहीं डाली, पर दो ही चार पग चलनेपर उनकी समझमें आ गया, कि ये तो हमें बाँधे लिये जा रहे हैं। कल्याणीकी लाश अभीतक बिना जली पड़ी थी और नन्हीं सी लड़की भी वहीं पड़ी रह गयी थी। सम्भव है कि उसे कोई खूंखार जानवर खा डाले। यह बात

मनमें आते ही उन्होंने बड़े जोरसे दोनों हाथोंका बंधन तोड़ डाला, और पलक मारते ही एक जमादारको इस जोरसे लात मारी कि, वह धड़ामसे भूमिपर गिर पड़ा। वे एक और सिपाहीपर हमला करने जा रहे थे, कि बाकी तीन सिपाहियोंने उन्हें घेरकर काबूमें कर लिया और उनके हाथ पैर बाँध दिये। दुःखसे कातर हो, महेन्द्रने ब्रह्मचारी सत्यानन्दसे कहा,—

"आप थोड़ीसी सहायता करते तो मैं इन पांचोंको यमपुरीका रास्ता दिखा देता।" इसपर सत्यानन्दने कहा,—"मेरी इन पुरानी हड्डियोंमें जोर ही कितना है? मैं जिन्हें गुहरा रहा था, उनके सिवाय मुझे और किसीका भरोसा नहीं है। जो होनहार है, उसके विरुद्ध चेष्टा न करो। हम दो आदमी इन पांचोंको परास्त नहीं कर सकते। चलो देखें ये हमें कहाँ ले जाते हैं। भगवान सब तरहसे भला ही करेंगे।"

दोनोंने फिर अपने छुटकारेकी कोई चेष्टा नहीं की और सिपाहियोंके पीछे पीछे जाने लगे। कुछ दूर चलनेपर सत्यानन्दने सिपाहियोंसे कहा,—"भाई, मैं सदा हरिनाम जपा करता हूं, क्या यह कोई जुर्म है?" जमादारको सत्यानन्द भलेमानससे मालूम पड़े। उसने कहा,—"नहीं; तुम हरि-नामका सुमिरन करो। हमलोग तुम्हें नहीं रोकते। तुम बूढ़े ब्रह्मचारी हो। तुम तो शायद रिहाई भी पा जाओगे; पर इस शैतानको तो फाँसीका हुक्म हुए बिना नहीं रहता।"

यह सुन, ब्रह्मचारी मीठे स्वरमें गाने लगे;—

"धीर समीरे तटिनी तीरे वसति वने वर नारी।
मा कुरु धनुर्द्धर गमन विलम्बन मति विधुरा सुकुमारी॥"

शहरमें आनेपर दोनों व्यक्ति कोतवालके सामने हाजिर किये गये। कोतवालने राजदरबारमें इत्तिला भेजकर महेन्द्र और ब्रह्मचारीको हवालातमें भेज दिया। वह कारागार बड़ाही भयानक

था। जो वहां जाता वह जीता लौटकर नहीं आता था, क्योंकि कोई न्याय करनेवाला नहीं था। उस समय न तो अंग्रेजोंकी जेल थी, न अंग्रेजोंका इन्साफ। आजकल तो आईन कानूनका जमाना है—उन दिनों पूरा अन्धेर था। कानूनके जमानेसे ग़ैर-कानूनी जमानेका मुकाबिला पाठक ही कर लें, हम क्या कहें!

चौदहवां परिच्छेद।

रात आ पहुंची। कारागारमें पड़े हुए सत्यानन्दने महेन्द्रको कहा,—"आज बड़े ही आनन्दका दिन है क्योंकि हम कैदमें हैं, बोलो, 'हरे मुरारे!' महेन्द्रने कातर स्वरसे कहा—'हरे मुरारे!'

सत्यानन्द,—"वत्स! तुम उदास क्यों हो रहे हो? इस महाव्रतको ग्रहण करनेपर तो तुम्हें एक न एक दिन स्त्री कन्याको अवश्य छोड़ना ही पड़ता। उनसे सम्बन्ध तोड़ना ही पड़ता।"

महेन्द्र—"त्याग कुछ और ही चीज है और यम-दण्ड कुछ और ही। जिस शक्तिके बलपर मैं यह व्रत ग्रहण करनेको था, वह तो मेरी स्त्री कन्याके ही साथ चली गयी!"

सत्या०—"शक्ति हो जायगी। मैं ही तुम्हें शक्ति दूंगा। महामन्त्रसे दीक्षित हो, महाव्रत ग्रहण कर लो!"

महेन्द्र (विरक्त होकर)—"मेरी स्त्री कन्याको स्यार कुत्ते नोचकर खाते होंगे। मुझसे किसी व्रतकी बात न कहिये।"

सत्या०—"इसके लिये निश्चिन्त रहो। सन्तानोंने तुम्हारी स्त्रीका संस्कार कर दिया है और तुम्हारी कन्याको भी अच्छे स्थानमें रख आये हैं!"

महेन्द्रको बड़ा अचम्भा हुआ। उन्हें इस बातपर विश्वास न हुआ। वे बोले—"यह बात आपको कैसे मालूम हुई? आप तो बराबर मेरे साथ ही रहे।"

सत्या०—"हमलोगोंने महामन्त्रकी दीक्षा ली है। हमपर देवताओंकी दया रहती है। आज ही रातको तुम्हें इस बातकी खबर मिलेगी और आज ही तुम इस कैदखानेसे छूट भी जाओगे।"

महेन्द्र कुछ न बोले। सत्यानन्द समझ गये कि, महेन्द्रको मेरी बातका विश्वास नहीं होता। सत्यानन्दने कहा,—"क्या तुम्हें मेरी बातका विश्वास नहीं होता? परीक्षा कर देखो।" यह कह सत्यानन्द कैदखानेके द्वारतक चले आये। उन्होंने अंधेरेमें क्या किया, सो तो महेंद्रने नहीं देखा, पर यह समझ गये कि किसीसे बातचीत की है। उनके लौट आनेपर महेन्द्रने पूछा, "क्या परीक्षा करूं?"

सत्या०—"तुम अभी इस कारागारसे छुटकारा पाओगे।"

यह बात पूरी होते न होते कैदखानेका दरवाजा खुल गया और एक आदमीने अन्दर आकर पूछा,—"महेन्द्रसिंह किसका नाम है?"

महेन्द्रने कहा,—"मेरा नाम है।"

आगन्तुकने कहा,—"तुम्हारी रिहाईका हुक्म हुआ है, तुम बाहर जा सकते हो।"

पहले महेन्द्रको बड़ा विस्मय हुआ, फिर सोचा कि झूठी बात है, पर परीक्षाके लिये बाहर चले ही आये। किसीने रोक-टोक नहीं की। वे राजपथतक चले आये।

इधर आगन्तुकने सत्यानन्दसे पूछा, "महाराज! आप भी क्यों नहीं निकल चलते? मैं तो आपके ही लिये आया हूं।"

सत्या०—"तुम कौन हो? क्या धीरानन्द गोस्वामी?"

धीरा०—"जी हां।"

सत्या०—"तुम पहरेदार कैसे बने?"

धीरा०—"मुझे भवानन्दने यहाँ भेजा है। नगरमें आकर मैंने सुना, कि आपलोग क़ैद हो गये हैं। यह सुनते ही मैं थोड़ी धतूरा

मिली हुई भाँग लिये चला आया। उसीके प्रतापसे जो खाँ साहब यहां पहरा दे रहे थे, उन्हें बेहोश किया। यह सब अंगा, पायजामा, पगड़ी और बर्छा उन्हीं हजरतका है।"

सत्या०—"अच्छा; तुम इसी वेशमें शहरसे निकल जाओ। मैं यों नहीं जानेका।"

धीरा०—"क्यों?"

सत्या०—"आज सन्तानोंकी परीक्षाका दिन है।"

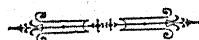
इतनेमें महेन्द्र लौट आये। सत्यानन्दने पूछा,—"लौट क्यों आये?"

महेन्द्र—"आप सचमुच बड़े ही सिद्ध महात्मा हैं। मैं आपका साथ छोड़कर नहीं जाऊँगा।"

सत्या०—"अच्छा, तो रहो। हम दोनों आज रातको दूसरी तरहसे छुटकारा पा लेंगे।"

धीरानन्द बाहर चले गये। सत्यानन्द और महेन्द्र कैदखानेमें ही पड़े रहे।

पन्द्रहवां परिच्छेद।



ब्रह्मचारीका गाना बहुतोंने सुना था। जीवानन्दके भी कानमें वह गाना पड़ा था। पाठकोंको स्मरण होगा, कि उन्हें महेन्द्रका पीछा करते रहनेका हुक्म हुआ था। उन्हें रास्तेमें एक स्त्री मिल गयी थी, जो सात दिनसे भूखी प्यासी रास्तेके किनारे पड़ी थी। उसीकी जान बचानेमें लग जानेके कारण जीवानन्दको घड़ी दो घड़ीका विलम्ब हो गया। उसके प्राणोंकी रक्षा कर वे उस स्त्री-को कुवाच्य कहते, इधर ही चले आ रहे थे (क्योंकि इस विलम्बका कारण वही थी) कि उन्होंने देखा कि प्रभुको मुसलमान-

पकड़े लिये जा रहे हैं और प्रभु गीत गाते हुए चले जा रहे हैं।

जीवानन्द महाप्रभु सत्यानन्दके सब इशारे समझते थे। इसीसे उनके मुंहसे यह गाना सुनकर कि :—

"धीर समीरे तटिनी तीरे वसति वने वर नारी।"

उन्होंने सोचा कि कहीं नदीके तीरपर कोई दूसरी औरत तो भूखी प्यासी नहीं पड़ी हुई है? यही सोचते विचारते जीवानन्द नदीके किनारे किनारे चले। जीवानन्दने यह देख लिया था, कि ब्रह्मचारीजीको मुसलमान बांधे लिये चले जा रहे हैं। उन्होंने पहले तो उन्हें छुड़ानेका विचार किया; फिर सोचा कि इस संकेतका अर्थ तो कुछ और ही है। उनकी जीवन-रक्षा करनेकी अपेक्षा उनकी आज्ञाका पालन करना ही वे सदासे सिखलाते आये हैं। यह सोच जीवानन्दने उनकी आज्ञाका पालन करना उचित समझा।

यही सोचकर जीवानन्द नदीके किनारे किनारे चलने लगे। जाते जाते उन्होंने नदीके किनारे एक वृक्षके नीचे पहुँचकर देखा, कि एक मरी हुई स्त्री और एक जीती जागती लड़की पड़ी है। जीवानन्दने महेन्द्रकी स्त्री कन्याको पहले कभी नहीं देखा था। उन्होंने सोचा, सम्भव है, यही महेन्द्रकी स्त्री कन्या हों; क्योंकि प्रभुके साथ महेन्द्र भी दिखलाई दिये थे। जो हो, माँ तो मरी हुई मालूम पड़ती है, पर लड़की जीती थी। पहले इसकी जान बचानी चाहिये, जिसमें बाघ भालू इसे न खा जाय। भवानन्दजी पास ही कहीं होंगे; इस लाशको जला देंगे। यह सोचकर जीवानन्द उस लड़कीको गोदमें लेकर चल पड़े।

लड़कीको गोदमें लिये हुए जीवानन्द उस घने जंगलके भीतर घुस गये। जंगल पारकर वे एक छोटे गाँवमें पहुँचे। गाँवका नाम भैरवीपुर था; पर लोग उसे 'भरुईपुर' कहा करते थे। उस गाँवमें थोड़ेसे मामूली हैसियतके आदमी रहते थे। उसके

आसपास और कोई गांव नहीं था। उसके बाद फिर जङ्गल ही जङ्गल था। चारों ओर जङ्गल था केवल बीचमें यही एक छोटा सा गांव बसा था, पर छोटा होनेपर भी खूबसूरत था। कोमल घास उगी गोचरभूमि; हरे हरे और कोमल पत्तेवाले आम, कटहल, जामुन और ताड़के पेड़ोंसे भरे हुए बागीचे, बीचमें नीले जलसे भरा हुआ स्वच्छ तालाब, जिसके जलमें बक, हंस और पनडुब्बी तथा किनारेपर कोयल और चकवा-चकई आदि पक्षी विहार करते हैं, कुछ दूरपर मोर ऊंचे स्वरसे बोलते दिखाई पड़ते हैं। घर घर आंगनमें गौएं बँधी हैं। अन्दर अन्न रखनेके लिये मिट्टीकी कोठियां भी हैं। इस कालमें धान पैदा नहीं हुआ, इसलिये खाली पड़ी हैं। किसीके छप्परमें मैनाका पींजरा टंगा है, किसीको दीवारोंपर रंग विरंगे चित्र लिखे हुए हैं, किसीके आंगनमें शाकभाजी उगी हुई है! अन्य स्थानोंके लोग दुर्भिक्षके मारे दुःखी, दुबले पतले हो रहे हैं, पर इस गांवके लोग कुछ सुखी दिखाई दे रहे हैं; क्योंकि जंगलोंमें मनुष्यके खाने योग्य वहुत सी चीजें पैदा होती हैं; उन्हें लाकर इस गांवके लोग अपने प्राण और स्वास्थ्यकी रक्षा कर रहे हैं।

एक बड़े भारी आमके बगीचेके बीचमें एक छोटा सा मकान था, जिसको चहारदीवारी मिट्टीकी थी और चारों ओर चार घर बने हुए थे। उस घरमें गाय बकरी हैं, एक मोर है, एक मैना है और एक तोता है। पहले एक बकरा भी था, पर उसका खाना जुटना मुश्किल हो गया इसीसे वह छोड़ दिया गया। एक ढेंकी भी रखी हुई है और बाहर खलिहान भी बना हुआ है। आंगनमें नीबूका एक पेड़ और कई एक जूही चमेलीकी बेलें भी लगी हैं। परन्तु इस साल वे फूली नहीं। घरके बाहर बरामदेमें एक चरखा रखा है, किन्तु घरमें कोई बड़ा आदमी नहीं है। जीवानन्द लड़कीको गोदमें लिये हुए उसी मकानके अन्दर घुस गये।

घरके अन्दर आते ही जीवानन्द सामने रखे हुए एक चर्खेको उठाकर चलाने लगे। उस नन्ही बालिकाने कभी चर्खेका शब्द नहीं सुना था। जबसे मांसे बिछुड़ी, वह रो रही थी, चर्खेका घर्र घर्र शब्द सुन वह डर गयी तथा और जोरसे रोने लग गयी। उसका रोना सुनकर घरके अन्दरसे एक सत्रह अठारह वर्षकी युवती बाहर निकली। उसने अपने दाहिने गालपर दाहिने हाथकी उंगली रखे, गरदन तिरछी कर कहा,—"ऐं! यह क्या! भैया! चरखा क्यों चला रहे हो? यह लड़की कहांसे ले आये हो? क्या यह तुम्हारी लड़की है? फिर ब्याह किया है क्या?"

लड़कीको उस युवतीकी गोदमें देते हुए जीवानन्दने उसे एक हलकी सी चपत मारनेके लिये हाथ उठाते हुए कहा,—"पगली कहीं की! मेरे लड़की कहांसे आयी? मुझे भी क्या तूने ऐसा वैसा समझ रखा है? घरमें दूध , कि नहीं?"

युवती—"दूध क्यों नहीं है? पीओगे क्या?"

जीवानन्द—"हां, पीऊंगा।"

यह सुन, वह युवती जल्दी जल्दी दूध गरम करने चली गयी। इधर जीवानन्द चरखा चलाते रहे। उस युवतीकी गोदमें जातेही वह लड़की न जाने क्यों चुप हो गयी। शायद उसे फूले हुए कुसुमकी तरह सुन्दरी देखकर उसने उसे अपनी मां ही समझ लिया था। अबतक तो वह चुप थी; पर चूल्हेकी आंच देहमें लगते ही रो उठी। उसका रोना सुन जीवानन्द बोले,—"अरी ओ मुंहजली निमी बंदरी! क्या तेरा दूध अबतक गरम नहीं हुआ?" निमी बोली,—"हो गया।" यह कह वह एक पत्थरके बर्त्तनमें दूध लिये हुई जीवानन्दके पास आयी। जीवानन्दने बनावटी क्रोध दिखलाते हुए कहा,—"जीमें तो आता है कि यह दूध तेरे ऊपर फेंक दूं। तू क्या समझती थी, कि दूध मैं पीऊंगा?"

निमीने पूछा,—"तब और कौन पीयेगा ?"

जीवा०—"यही लड़की पीयेगी। देखती नहीं, इसे ही पिला।"

यह सुन, निमी पलाथी मार कर बैठ गयी और लड़कीको गोदमें सुला, सितुहीसे उसे दूध पिलाने लगी। यकायक उसकी आंखोंमें कई आंसू टपक पड़े। उसको एक लड़का होकर मर गया था, उसीको दूध पिलानेकी वह सितुही थी। निमीने झट अपने आंसू पोंछ हंसकर जीवानन्दसे पूछा,—"भैया! यह लड़की है किसकी ?"

जीवानन्दने कहा,—"यह जानकर तू क्या करेगी मुंहजली ?"

निमीने कहा,—"क्या इसे मुझे दे दीजियेगा ?"

जीवानन्दने पूछा,—"इसे लेकर क्या करोगी ?"

निमीने कहा,—"इसे गोदमें लेकर खिलाऊंगी, दूध पिलाऊंगी, पाल-पोसकर बड़ी करूंगी"—कहते कहते अभागे आंसू फिर गिर पड़े। उसने फिर उन्हें पोंछ डाला और बनावटी हंसी हंसने लगी।

जीवानन्दने कहा,—"तू इसे लेकर क्या करेगी? तेरे आप ही न जाने कितने बाल बच्चे होंगे।"

निमीने कहा,—"हुआ करें, अभी तो तुम मुझे इस लड़कीको दे ही दो, इसके बाद ले जाना।"

जीवानन्दने कहा,—"अच्छा, जा, लेजा। मैं बीच बीचमें आकर इसे देख जाया करूंगा। यह एक कायस्थकी लड़की है। अच्छा, तो अब मैं जाता हूं।"

निमीने कहा,—"यह क्या भैया ? कुछ खाओगे नहीं? दिन बहुत चढ़ आया है। तुम मेरे सिरकी कसम जो बिना कुछ खाये जाओ। दो कौर खालो, फिर चले जाना।"

जीवानन्दने कहा,—"अरी पागली! मैं तेरा सिर खाऊंगा या भात? दोनों कैसे खिलायेगी? जा, सिर सलामत रहने दो थोड़ासा भात ही खिला दो।"

यह सुन, लड़कीको गोदमें लिये निमी रसोई घरमें चली गयी। पीढ़ा, पानी रख उसने जीवानन्दको खानेके लिये बैठाया और जुहीके फूलकी तरह स्वच्छ चावलोंका भात, खड़ी मसूरकी दाल, जंगली गूलरकी तरकारी, रोहू मछलीका शोरवा, और दूध परोस दिया। पीढ़ेपर बैठते ही जीवानन्दने कहा,—"बहन, कौन कहता है कि बड़ा भारी अकाल पड़ा है? तेरे गांवमें तो मालूम पड़ता है कि अकालकी दाल ही नहीं गलने पायी।"

निमीने कहा,—"अकाल तो खूब ही व्याप कर रहा है, भैया! पर हम दो ही जने खानेवाले ठहरे, इसीलिये घरमें जो कुछ है, वही आप भी खाते हैं और औरोंको भी खिलाते हैं। तुम्हें याद होगा, हमारे गांवमें वर्षा हुई थी। तुमने कहा भी था, कि जङ्गलमें वर्षा बहुत होती है। इसीसे हमारे यहां कुछ कुछ धानकी फसल हुई थी। और लोगोंने तो अपना धान बेंच दिया था, पर हमने नहीं बेंचा था।"

जीवानन्दने कहा,—"बहनोई महाशय कहां गये हैं?"

निमीने सिर नीचाकर धीरेसे कहा,—"दो तीन सेर चावल लेकर न जाने कहां गये हैं। शायद किसीको देने गये हैं।"

इधर बहुत दिनोंसे जीवानन्दको ऐसा बढ़िया भोजन नसीब नहीं हुआ था। इसलिये बकवादमें बहुत समय नष्ट करना अच्छा न समझकर वे गपागप अन्नव्यञ्जनको गलेके नीचे उतारने लगे। थोड़ी ही देरमें वे सारी थाली साफ कर गये। श्रीमती निमाई-मणिने आज केवल अपने और स्वामीके लिये ही रसोई पकायी थी और अपना हिस्सा लाकर भाईको खानेके लिये दिया था।

थाली खाली देख, वह उदास मन रसोई घरमें गयी और अपने स्वामीका हिस्सा भी लाकर जीवानन्दके आगे रख दिया। जीवानन्दने बिना किसी आपत्तिके वह सारा सामान भी पेटके अन्दर डाल दिया। तब निमाईमणिने पूछा—"क्यों भैया! और कुछ खाओगे?"

जीवानंदने कहा—"और क्या है ?"

निमाईमणिने कहा—"एक पका हुआ कटहल पड़ा है।"

यह कह वह एक पका हुआ कटहल उठा लायी। बिना कुछ कहे जीवानंद वह सारा कटहल सफाचट कर गये। तब निमाईने हंसकर कहा—"भैया! अब तो कोई चीज़ खाने लायक नहीं रही।"

भैयाने जवाब दिया,—"कोई हर्ज नहीं और किसी दिन आकर खा जाऊंगा।"

अन्तमें, निमाईने जीवानंदको हाथ मुंह धोनेके लिये जल ला दिया। जल ढालते ढालते बोली—"भैया, क्या तुम मेरी एक बात मानोगे ?"

जीवा०—"कौनसी बात, कह।"

निमाई—"पहले मेरे सिरकी कसम खाओ।"

जीवा०—"अरी मुंहजली! कहती क्यों नहीं!"

निमाई—"बात मानोगे न ?"

जीवा०—"पहले सुन तो लूं।"

निमाई—"नहीं, पहले मेरे सिरकी कसम खाओ, मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूं।"

जीवा०—"अच्छा, ले मैं तेरे सिरकी कसम खाता हूं और तू मेरे पैरों पड़ना चाहती है तो वह भी कर ले, पर बात तो सुना दे।"

निमाई पहले तो कुछ देरतक सिर नीचा किये, एक हाथसे दूसरे हाथकी अंगुलियां चटकाती रही और कभी जीवानन्दके मुंहकी ओर और कभी नीचे जमीनकी ओर देखती रही। इसके बाद बोली,—"जरा भाभीको बुला लूं।"

यह सुनते ही जीवानन्द झारी उठाकर निमीको मारनेकेलिये उठ खड़े हुए और बोले,"ला, मेरी लड़की फेर दे। मैं और किसी दिन आकर तेरे दाल चावल लौटा जाऊंगा। बंदरी कहीं

की, मुंहजली कहींकी ! तू सदा अण्डबण्ड बका करती है।"

निमाईने कहा, "अच्छा मैं बंदरी सही, मुँहजली सही। पर कहो तो ज़रा भाभीको बुला लाऊं।"

जीवानन्द—"लो, मैं चला। यह कह वे झटपट दौड़े हुए बाहरकी ओर चले, पर निमाईने आकर दरवाजा रोक लिया और किवाड़ बन्द कर द्वारकी ओर अपनी पीठ किये हुए बोली—"पहले मुझे मार डालो, तब जाना। बिना भाभीसे भेंट किये तुम कदापि न जाने पाओगे।"

जीवा०—"क्या तू नहीं जानती कि मैंने कितने आदमियोंको मार डाला है?"

यह सुनते ही निमीको क्रोध चढ़ आया। वह बोल उठी—"आह! क्या कहते हैं! बड़ी कीर्त्तिका काम कर डाला है। तुमने स्त्रीको छोड़ दिया है, बहुतसे आदमियोंको मार डाला है। इसीसे क्या मैं तुमसे डर जाऊंगी? तुम जिस बापके बेटे हो, मैं भी उसी बापकी बेटी हूं। अगर आदमियोंकी जान लेनी भी बड़ी बड़ाईकी बात हो, तो लो मेरी भी जान लेकर नाम कमा लो।"

जीवानन्द हंस पड़े और बोले—"अच्छा, जा, किस पापिनको बुलाने जाती थी बुला ला। किन्तु देख! फिर यदि ऐसी बात कहेगी, तो तुझे कुछ कहूं या नहीं, पर उसका सिर मुंड़ा, गधेपर चढ़ाकर देशसे निकाल बाहर कर दूंगा।"

निमीने मन ही मन कहा—"तब तो मेरी भी जान बच जायगी।" और हंसती हुई बाहर चली गयी और पासवाली एक फूसकी झोपड़ीके अन्दर घुस पड़ी। उस झोपड़ीके अन्दर एक स्त्री बैठी हुई चरखा चला रही थी। उसकी देहपरके कपड़ेमें सौ सौ पैवंद लगे थे। उसके सिरके बाल रूखे थे। निमाईने उसके पास आकर कहा—"भाभी बस जल्दी!"

उस युवतीने कहा—"जल्दी क्या! क्या ननदोईजीने तुम्हें मारा है? देहमें तेलकी मालिश करनी होगी?"

निमी०—"कुछ ऐसी ही बात है। घरमें तेल तो होगा ही॥

यह सुन, वह स्त्री तेलका वर्त्तन निकाल लायी। निमाईने झट उसमेंसे तेल अंजुलिमें ढाल लिया और उस स्त्रीके सिरमें तेल लगाकर मामूली तरहसे केश भी बाँध दिया। इसके बाद उसके गालमें हलकी सी चपत लगाकर बोली—"तुम्हारी वह ढाकेकी साड़ी कहां है?" यह सुन वह स्त्री कुछ विस्मित होकर बोली,—"तुम पागल तो नहीं हो गयी हो?"

निमीने उसकी पीठपर एक चपत जमाकर कहा—"पहले साड़ी निकाल लाओ।"

तमाशा देखनेके लिये वह स्त्री साड़ी ले आयी। हमने तमाशा देखनेकी बात इसलिये कही कि इतने दुःखमें पड़कर भी उसकी तमाशा देखनेकी प्रवृत्ति नष्ट नहीं हुई थी। एक तो नयी जवानी, दूसरे नयी उमरका वह फूले हुए कमलका-सा सौन्दर्य! इतनेपर भी उस बिचारीको तेल-फुलेल, साज-सिङ्गार और आहार-विहारसे कोई सरोकार नहीं, उसका वह जगमगाता हुआ सौन्दर्य उसी सौ-सौ पैबंद लगे हुए कपड़ेके अन्दर ढका रहता था। उसके शरीरमें बिजलीकीसी चञ्चलता, आंखोंमें कटाक्ष, मुंहपर हंसी और हृदयमें धैर्य भरा हुआ था, ठीक समय खाना-पीना नहीं, तो भी शरीरमें लुनाई भरी हुई थी। सिंगार पटार नहीं तोभी अंग-अंगसे सुन्दरता चू पड़ती थी। जैसे मेघमें बिजली, मनमें प्रतिभा, जगत्‌के समस्त प्रकारके शब्दोंमें संगीत और मृत्युके भीतर सुख छिपा रहता है, वैसे ही उसकी रूप-राशिके भीतर न जाने क्या छिपा हुआ था। उसमें अनिर्वचनीय माधुर्य, अनिर्वचनीय प्रेम और अनिर्वचनीय भक्ति भरी हुई थी। उसने हंसते हंसते (वह हंसी किसीने देखी नहीं) ढाकेकी साड़ी बाहर निकाली—बोली—"लो साड़ी। इसे क्या करूं?"

निमीने कहा—"इसे पहन लो।"

उसने कहा—"मैं पहनकर क्या करूंगी?"

इसपर उसके कमनीय गलेमें बाहुलता डालकर निमाईने कहा—"भैया आये हैं। तुम्हें बुला रहे हैं।"

युवतीने कहा—"हमें बुलाया है तो ढाकेकी साड़ीकी क्या जरूरत है? चल, इसी तरह चलूं।"

निमाईने उसके गालमें एक चपत जमा दी। उसने निमाईके गलेमें हाथ डाल उसे झोंपड़ीके बाहर कर कहा—"चलो उन्हें यही फटी साड़ी पहने अपनी सूरत दिखा आऊं।"

लाख कहनेपर भी उस युवतीने साड़ी नहीं पहनी। लाचार निमाई राजी हो गयी और अपनी भाभीको साथ लिये अपने घरके दरवाजेतक आयी, और उसे भीतर भेज बाहरसे किवाड़ बन्द कर आप दरवाजेपर खड़ी हो रही।

सोलहवां परिच्छेद

उस स्त्रीकी अवस्था पचीस वर्षके लगभग थी; पर देखनेमें वह निमीसे अधिक वयसवाली नहीं मालूम पड़ती थी। जिस समय वह मैले कुचैले वस्त्र पहने, उस घरके अन्दर आयी, उस समय ऐसा मालूम पड़ा, मानों उजाला हो गया। ऐसा मालूम पड़ा मानों किसी वृक्षके पत्तोंसे ढकी हुई सभी कलियां एक साथ खिल गयीं। मानों बन्द गुलाबजलके करावेका मुंह किसीने खोल दिया। मानों किसीने बुझती हुई आगमें धूप और गुग्गुल डाल दिया! वह रमणी घरमें प्रवेश कर चारों ओर अपने स्वामी-को ढूंढने लगी। पहले तो उसने उन्हें नहीं देखा, पर थोड़ी देर बाद देखा कि आंगनमें आमके छोटे पेड़के सोरपर सिर रखे जीवानन्द रो रहे हैं। सुन्दरीने उनके पास पहुंचकर धीरे-धीरे उनका

हाथ अपने हाथमें ले लिया। यह तो नहीं कहा जा सकता कि उसकी आंखोंमें जल आया ही नहीं; पर उसने उसे बाहर नहीं होने दिया, क्योंकि परमात्मा जानता है, कि जो सोता उसकी आंखोंसे जारी हुआ चाहता था, वह यदि निकल पड़ता, तो जीवानन्द उसमें डूब जाते। लेकिन उसने उसे बहने न दिया। जीवानन्दका हाथ अपने हाथमें लेकर उसने कहा—"हैं! रोते क्यों हो? मैं जानती हूं कि तुम मेरे ही लिये रो रहे हो; पर मेरे लिये रोनेका कोई काम नहीं है। तुमने मुझे जिस अवस्थामें रख छोड़ा है, मैं उसीमें सुखी हूं।"

जीवानन्दने सिर ऊपर उठाया, आंखें पोंछकर पूछा—"शान्ति! तुम्हारे बदनपर यह जीर्ण शीर्ण फटा कपड़ा क्यों? तुम्हें तो खाने पहननेका कोई दुःख नहीं है?"

शांतिने कहा—"तुम्हारा ऐश्वर्य तुम्हारे लिये है। मैं क्या जानूं कि रुपया पैसा किस काम आता है। जब तुम घर फिर आओगे, मुझे ग्रहण करोगे।"

जीवा०—"ग्रहण करना, क्या मैंने तुम्हें त्याग दिया है?"

शांति—"त्याग नहीं दिया है—तो भी जब तुम्हारा व्रत पूरा होगा और तुम फिर मुझे स्नेह करने लगोगे"—बात पूरी भी न होने पायी थी कि जीवानन्दने शांतिको गलेसे लगा लिया और उसके कन्धेपर सिर रख बड़ी देरतक चुप रहे। फिर लम्बी सांस लेकर बोले—"हाय, मैंने क्यों मुलाकात की।"

शांति—"क्यों की। इससे तुम्हारा व्रत भङ्ग हो गया।"

जीवा०—"हुआ करे। इसका प्रायश्चित्त भी तो है? इसकी चिन्ता मुझे नहीं है; पर तुम्हें देखकर तो अब मुझसे जाया नहीं जाता। मैं इसीसे निमाईसे कह रहा था, कि मिलने मिलाने-का काम नहीं है; क्योंकि तुम्हें देखनेके बाद मुझसे घर नहीं छोड़ा जायगा। एक ओर धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, जगत, संसार, व्रत, होम, याग, यज्ञ सब कुछ और दूसरी तरफ तुम अकेली

तो भी मैं निश्चय नहीं कर सकता कि कौन पलड़ा भारी है। देश तो शांत है, देशको लेकर मुझे क्या करना है? देशकी एक कट्ठा भूमि पा जाऊं तो तुम्हें लेकर मैं वहीं स्वर्गकी रचना कर सकता हूं। फिर मुझे देशसे क्या काम है? देशके लोग दुःखी हैं—रहें। पर जिसने तुम-सी सती पाकर भी त्याग कर दी है, उससे बढ़कर दुखिया देशमें और कौन होगा? जो तुम्हारे इस कोमल शरीरपर सौ सौ पेवंद लगे हुए कपड़े देखता है, उससे बढ़कर दरिद्र इस देशमें दूसरा कौन होगा? तुम मेरी सहधर्मिणी हो। जब मैंने तुम-सी सहायकको छोड़ दिया, तो फिर मेरे लिये सनातन धर्म क्या चीज है? मैं किस धर्मके लिये बंदूक कंधेपर लिये देश विदेश, जङ्गल-जङ्गल भटकता जीव हत्या कर अपने ऊपर पापका बोझ लाद रहा हूं? पृथ्वीपर संतानोंका राज्य होगा या नहीं, नहीं, कहा जा सकता; पर तुम तो मेरे हाथमें ही हो। तुम पृथ्वीकी अपेक्षा कहीं बड़ी हो—तुम मेरे लिये साक्षात् स्वर्ग हो। चलो घर चलें। अब मैं लौटकर वहां न जाऊंगा।"

शान्तिके मुँहसे कुछ देरतक बात न निकली। फिर बोली,—"छिः! तुम वीर पुरुष होकर ऐसी बातें करते हो? मुझे तो इस संसारमें यही सबसे बढ़कर सुखकी बात मालूम होती है कि मैं वीर-पत्नी हूं! तुम एक अधम नारीके लिये अपना वीर-धर्म त्याग करते हो? तुम मुझे प्यार करो—मुझे वह सुख नहीं चाहिये; पर तुम अपना वीर-धर्म कदापि न छोड़ो। हां, एक बात और है, इस व्रतभङ्गका प्रायश्चित्त क्या है?"

जीवानन्दने कहा,—"प्रायश्चित्त है दान, उपवास और १२ काहन* कौड़ी।"

यह सुन, शान्ति मुस्कुराते हुए बोली,—"प्रायश्चित्त क्या है, सो मैं जानती हूं; पर एक अपराध करनेपर जो प्रायश्चित्त

---

*१ काहनमें १ रुपयेकी कौड़ियाँ होती हैं।

करना होता है, वही क्या सौ अपराधोंके लिये भी करना होता है ?"

जीवानन्दने आश्चर्य और उदासीके साथ कहा,—"यह सब बातें किस लिये पूछ रही हो ?"

शान्ति—"मैं एक भिक्षा मांगती हूं। मुझसे मिले विना प्रायश्चित्त न करना।"

यह सुन, जीवानन्दने हँसकर कहा,—"इस बारेमें तुम निश्चिन्त रहो। मैं तुमसे मिले बिना नहीं मरूंगा। मरनेकी वैसी कुछ जल्दी भी नहीं पड़ी है। अब मैं यहां न ठहरूंगा। इस बार तुम्हें जीभर देखने नहीं पाया; पर किसी दिन यह साध अवश्य पूरी करूंगा। एक दिन हमारी मनोकामना अवश्य ही पूरी होगी। अब मैं चला, पर मेरा एक अनुरोध है उसे मान लेना। यह फटे पुराने वस्त्र छोड़ दो और मेरे पैतृक घरमें ही जाकर रहो।"

शान्तिने पूछा,—"इस समय तुम यहांसे कहां जाओगे ?"

जीवानन्द—"अभी तो मठमें जाकर ब्रह्मचारीजीका पता लगाना है। उन्हें जिस हालतमें शहरकी ओर जाते देखा है, उससे मुझे बड़ी चिन्ता हो गयी है। अगर वे मन्दिरमें न मिले तो उन्हें ढूंढ़नेके लिये शहर जाऊंगा।"

सत्रहवां परिच्छेद



भवानन्द, मठके भीतर बैठे हरि-गुण-गान कर रहे थे। इसी समय ज्ञानानन्द नामक एक तेजस्वी सन्तान उदास मुंह, उनके पास आ खड़े हुए। भवानन्दने कहा,—"गुसाईंजी! ऐसा उदास चेहरा क्यों बनाये हुए हो ?"

ज्ञानानन्द—"कुछ गोलमाल हुआ-सा मालूम पड़ता है। कलकी घटनाके कारण मुसलमान जहां कहीं गेरुआ कपड़ा देखते हैं, वहीं धरपकड़ करने लगते हैं। अन्य सन्तानोंने तो गेरुआ वस्त्र उतार फेंके। केवल सत्यानन्द प्रभु गेरुआ पहने हुए शहरकी ओर गये हैं। कहीं वे मुसलमानोंके फन्देमें न पड़ जायँ।"

भवानन्द—"उन्हें पकड़ रखे, ऐसा कोई मुसलमान इस बङ्गाल प्रान्तमें नहीं पैदा हुआ। मैंने सुना है, कि धीरानन्द उनके पीछे पीछे गये हैं। तोभी मैं जरा शहरतक घूम आना चाहता हूं, तुम मठकी रखवाली करो।"

यह कह, भवानन्दने एक सूनसान कमरेमें जा, एक बड़े भारी सन्दूकमेंसे कई तरहके कपड़े बाहर निकाले। सहसा भवानन्दका रूप ही औरका और हो गया। गेरुआ कपड़ोंके स्थानमें चूड़ीदार पायजामा, अचकन, चोगा, सिरपर अम्मामा और पैरोंमें नागौरी जूते शोभा देने लगे। ललाटसे त्रिपुण्ड्रके चिह्न दूर हो गये। भौंरेकी तरह काली काली दाढ़ी मूँछोंसे घिरा हुआ सुन्दर मुखमण्डल अपूर्व शोभा दिखाने लगा। उस समय वे मुगल नवजवान मालूम पड़ने लगे। इस तरह मुगलका वेश बना, हथियारसे लैस होकर वे मठसे बाहर निकले। वहाँसे कोस डेढ़ कोसकी दूरीपर दो नीची पहाड़ियाँ थीं। उन पहाड़ोंपर खूब घने जङ्गल थे। उन दोनों पहाड़ियोंके बीचमें एक सूनसान स्थान था। वहां बहुतसे घोड़े बँधे थे। वही मठवासियोंकी अश्वशाला थी। उन्हीं घोड़ोंमेंसे एकपर सवार हो भवानन्द नगरकी ओर चल पड़े।

जाते जाते वे सहसा एक जगह ठिठक गये। उन्होंने देखा, कि कलनादिनी तरङ्गिणीके तीरपर आसमानसे गिरे हुए नक्षत्र-की भांति, मेघसे बिछुड़ी हुई बिजलीकी नाईं दमकती कान्ति-वाली एक स्त्री पड़ी है। उन्होंने यह भी देखा, कि उसके शरीरमें जीवनका कोई चिह्न नहीं है और पास ही जहरकी डिबिया

पड़ी है। भवानन्द विस्मित, क्षुब्ध और भीत हुए। जीवानन्दकी ही तरह भवानन्दने भी महेन्द्रकी स्त्री और कन्याको कभी नहीं देखा था। जीवानन्दने जिन कारणोंसे उनपर महेन्द्रकी स्त्री कन्या होनेका सन्देह किया था, वे कारण भवानन्दके सामने उपस्थित नहीं थे। एक तो उन्होंने ब्रह्मचारी और महेन्द्रको कैद होकर आते नहीं देखा था; दूसरे, लड़की भी वहां नहीं थी। डिबिया देखकर उन्होंने अनुमान किया, कि कोई स्त्री विष खाकर मर गयी है। यही सोचकर वे उस शवके पास चले आये और उसके सिरपर हाथ रखकर देरतक कुछ सोचते रहे। इसके बाद उन्होंने उसके सिर, बगल, पांजर, हाथ आदिपर हाथ रखकर देखा और अनेक प्रकारसे परीक्षा की, जो साधारणतः लोग नहीं जानते। तब उन्होंने मन-ही-मन कहा—"अब भी समय है, पर इसे बचाकर ही क्या करूंगा?"

इसी प्रकार भवानन्दने बड़ी देरतक सोच-विचार किया। इसके बाद जङ्गलमें जाकर वे एक वृक्षके बहुतसे पत्ते तोड़ लाये। उन्हें हाथसे ही मलकर उन्होंने उनका रस निचोड़ा और उस मुर्देके ओठमें अंगुली डाल, उसीके सहारे वह रस उसके गलेके नीचे उतारने लगे। इसके बाद उन्होंने थोड़ासा रस उसकी नाकमें भी टपकाया और कुछ हाथ पैरोंमें भी मल दिया। वे बार बार ऐसा ही करने और रह रहकर उसकी नाकके पास हाथ ले जाकर देखने लगे कि सांस चलती है या नहीं। उन्हें मालूम पड़ा, मानो उनका यत्न विफल हुआ चाहता है। इस प्रकार बहुत देरतक परीक्षा करते रहनेके बाद भवानन्दका चेहरा खिल उठा, क्योंकि उनकी अंगुलीमें धीरेसे सांस चलनेकी हवा लगी। अब तो वे और भी रस निचोड़ निचोड़कर उसे पिलाने लगे। क्रमसे जोर जोरसे सांस चलने लगी। अब नाड़ीपर हाथ रखकर भवानन्दने देखा कि नाड़ी चल रही है। अन्तमें पूर्व दिशाके प्रथम अरुणोदयकी नाईं प्रभातके खिलते हुए कमल

की तरह तथा अनुरागके प्रथम अनुभवकी भांति कल्याणीने धीरे धीरे आंखें खोल दीं। यह देख भवानन्द उस अधमरी देहको घोड़ेपर चढ़ा जल्दी नगरकी ओर चले।

अठारहवां परिच्छेद

सांझ होते होते समस्त सन्तान सम्प्रदायमें यह बात फैल गयी कि, सत्यानन्द ब्रह्मचारी और महेन्द्रसिंह बन्दी होकर नगरके कैदखानेमें बन्द हैं। यह सुनते ही एक एक, दो दो, दस दस, सौ सौ करके सन्तान-सम्प्रदायके लोग, उस मन्दिरके चारों तरफवाले जङ्गलमें आकर इकट्ठे होने लगे। सभी हथियारबन्द थे। सबकी आंखोंमें क्रोधकी आग जल रही थी, मुखसे दम्भ प्रगट हो रहा था और होठोंपर दृढ़ प्रतिज्ञाकी छाया थी। पहले सौ आये, पीछे हजार, फिर दो हजार हो गये। इसी तरह उनकी संख्या बढ़ती गयी। यह देख, मठके द्वारपर खड़े होकर ज्ञानानन्द तलवार हाथमें लिये ऊंचे स्वरसे कहने लगे,—"हमलोगोंने बहुत दिनोंसे यह इरादा कर रखा है, कि यह नवाबी इमारत, यह यवनपुरी ढाहकर नदीमें फेंक देंगे। इन शूकरोंके खोंभारमें आग लगाकर माता वसुमतीको फिर पवित्र करेंगे। भाई! आज वही दिन आ पहुंचा है। हमारे गुरुके गुरु, परम गुरु, अनन्त, ज्ञानमय, सदा शुद्धाचारी, लोकहितैषी देशहितैषी पुरुष जिन्होंने सनातनधर्मके पुनः प्रचारके लिये अपना जीवन ही दे रखा है, जिन्हें हमलोग विष्णुका अवतार मानते हैं, जो हमारी मुक्तिके द्वार हैं, वेही आज मुसलमानोंके कैदखानेमें पड़े हैं। क्या हमारी तलवारमें धार नहीं रह गयी है? (हाथ उठाकर)—क्या हमारी इन भुजाओंमें बल नहीं रहा? (फिर छाती ठोंककर)

—क्या इस हृदयमें साहस नहीं रह गया? भाइयो! बोलो—हरे मुरारे मधुकैटभारे!—जिन्होंने मधुकैटभका नाश किया है; जिन्होंने हिरण्यकशिपु, कंस, दन्तवक्र, शिशुपाल आदि दुर्जय असुरोंको मार गिराया है, जिनके चक्रके घर्घर निर्घोषको सुनकर मृत्युको जीतनेवाले शम्भु भी डर जाते हैं, जो अजेय हैं, रणमें जय देनेवाले हैं, हमलोग उन्हींके उपासक हैं; उन्हींके बलसे हमारी भुजाओंमें अनन्त बल वर्त्तमान है। वे इच्छामय हैं, उनके इच्छा करते ही हमलोग लड़ाई जीत लेंगे। चलो, हमलोग अभी उस यवनपुरीको तहस नहस कर डालें और धूलमें मिला दें। उस शूकरनिवासको आगसे जलाकर पानीमें बहा दें। वह पंछीका घोंसला उजाड़कर उसके सब खर-पात हवामें उड़ा दें। बोलो, हरे मुरारे मधुकैटभारे!"

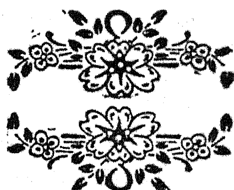
उस समय उस जंगलमें अति भीषण नादसे सहस्रों कण्ठ एक साथ ही कह उठे,—"हरे मुरारे मधुकैटभारे!" साथ ही हजारों तलवारें एक ही साथ झनझना उठीं। सहस्रों भालोंकी नोंकें एक ही साथ चमचमा उठीं। सहस्रों भुजाओंके परिचालनसे वज्रका सा शब्द होने लगा। हजारों युद्धके नगाड़े बज उठे। जंगलके पशु डरके मारे महा कोलाहल करते हुए भाग चले। पक्षी जोर जोरसे चीत्कार करते हुए आसमानमें उड़ गये। उसी समय सैकड़ों मारू बाजे बजाते और "हरे मुरारे मधुकैटभारे" की आवाज लगाते हुए सन्तानगण कतार बाँधकर जंगलसे बाहर होने लगे। धीर गम्भीर पदविक्षेप करते और ऊंचे स्वरसे हरिनामका उच्चारण लेते हुए वे लोग उसी अँधेरी रातमें नगरकी ओर बढ़े। वस्त्रोंका मर्मर शब्द, अस्त्रोंकी झनकार, सहस्रों कण्ठोंका अस्फुट निनाद और बीच-बीचमें "हरे मुरारे" का तुमुल रव होता रहा। धीर, गम्भीर, सरोष और सतेज भावसे चलती हुई वह सन्तानसेना क्रमसे नगरमें आ पहुंची और नगरवासियोंके मनमें त्रास उत्पन्न करने लगी।

इस आकस्मिक विपत्तिसे भयभीत हो लोग इधर-उधर भाग चले। नगर-रक्षक तो अवाक् रह गये।

सन्तानोंने सबसे पहले सरकारी जेलखानेमें जाकर उसे तोड़ डाला। वहांके पहरेदारोंको मार, सत्यानन्द और महेन्द्रको छुड़ा उन्हें कन्धेपर बैठाकर नाचने-कूदने लगे। उस समय हरि-नामका भजन और भी जोर जोरसे होने लगा। सत्यानन्द और महेन्द्रको छुड़ानेके बाद वे जहां कहीं मुसलमानोंका घर देख पाते, उसमें आग लगा देते थे। यह देख सत्यानन्दने कहा,—"चलो, लौट चलो। व्यर्थ उपद्रव करनेसे कोई काम नहीं है।"

सन्तानोंके इस उपद्रवका संवाद पाकर देशके शासकने उनके दमनके लिये सैनिकोंका एक दल भेजा, जिनके पास केवल बन्दूकें ही नहीं एक तोप भी थी। इनके आनेकी ख़बर पाते ही सन्तानगण उस जंगलसे निकलकर युद्ध करनेके लिये आगे बढ़े। लेकिन तोपके आगे लाठी, बर्छी या बीस-पचीस बन्दूकोंकी क्या बिसात थी?

सन्तानगण, पराजित हो, भागने लगे।





आनन्दमठ



दूसरा खण्ड



पहला परिच्छेद

बड़ी ही छोटी उमरमें शान्तिकी मां मर गयी थी। जिन अवस्थाओंमें शान्तिका चरित्र-गठन हुआ था, उनमें एक प्रधान है। उसके पिता पण्डित और अध्यापक थे। उनके घरमें और कोई स्त्री नहीं थी।

शान्तिके पिता जब पाठशालामें पढ़ाने जाते, तो शान्ति भी उन्हींके पास बैठी रहती थी। पाठशालामें बहुतसे लड़के रहते थे। जब पाठका समय न रहता, शान्ति उन लोगोंके साथ खेलती कूदती थी, किसीके कन्धेपर चढ़ती तो किसीकी गोदमें बैठ जाती। वे लोग भी शान्तिको बहुत प्यार करते थे।

इस प्रकार लड़कपनसे ही पुरुषोंके संसर्गमें रहनेका पहला फल तो यह हुआ, कि शान्तिने स्त्रियोंकी तरह कपड़ा पहनना नहीं सीखा अथवा यों कहिये, कि सीखकर भी भूल गयी। वह ठीक पुरुषोंकी तरह लांग कसने लगी। यदि कभी कोई उसे लड़कियोंकी तरह कपड़ा पहना देता, तो वह उसे झट खोल देती और फिर मर्दानी धोती पहन लेती थी। पाठशालाके विद्यार्थी सिरके बाल नहीं बाँधते, इसीलिये वह भी बालोंक खोले रहती थी। विद्यार्थी लोग उसके बालोंको लकड़ीकी कंघीसे संवार देते थे। उसके वे घूँघरवाले बाल उसकी पीठ, कन्धों, भुजाओं और गालोंपर लहराते रहते थे। छात्रगण ललाटमें चन्दन लगाकर बीचमें लाल बिन्दी लगाते थे। इसलिये शान्ति भी वैसा ही करती थी। उसे कोई यज्ञोपवीत पहननेको नहीं देता था, इसलिये वह बहुत रोया करती थी। परन्तु संध्यापूजनके समय छात्रोंके पास बैठकर वह उनका अनुकरण जरूर करती थी। छात्रगण अध्यापकजीके न रहनेपर अश्लील संस्कृतकी

थोड़ीसी बघार देकर कुछ शृङ्गाररसकी बातें छेड़ दिया करते थे। शान्ति भी तोतेकी तरह इन्हीं बातोंको कहने लगती थी; पर तोतेहीकी तरह वह भी उन बातोंका अर्थ नहीं समझती थी।

दूसरा फल यह हुआ, कि शान्ति जब कुछ बड़ी हुई, तब विद्यार्थीलोग जो कुछ पढ़ते थे, उसे पढ़ने लगती थी। व्याकरणका वह भले ही एक अक्षर न जानती हो, तोभी भट्टि, रघुवंश, कुमार, नैषध आदिके श्लोकोंको व्याख्या सहित याद करने लगी यह सब देख सुनकर, शान्तिके पिता भाग्यपर विश्वास कर उसे मुग्धबोध पढ़ाने लगे; शान्ति बहुत जल्दी जल्दी पढ़ने लगी। यह देख अध्यापकजीको बड़ा विस्मय हुआ। उन्होंने व्याकरणके साथ साथ साहित्यके भी दो-एक ग्रन्थ पढ़ाये। इसके बाद ही सारा मामला उलट-पुलट गया। उसके पिताका परलोकवास हो गया।

शान्ति निराश्रय हो गयी, पाठशाला टूट गयी। छात्र अपने अपने घर चले गये। पर उनमेंसे कुछ उसे बहुत प्यार करते थे, इसलिये उनमें शान्तिको छोड़कर जाते नहीं बना। उनमेंसे एक दया करके उसे अपने घर ले गये। यही आगे चलकर सन्तान-सम्प्रदायमें जा मिले और जीवानन्द कहलाने लगे। हम भी सदा जीवानन्द ही कहा करेंगे।

उस समय जीवानन्दके माता-पिता जीवित थे।

जीवानन्दने उनसे उस कन्याका सारा हाल कह सुनाया। मातापिताने पूछा "इस समय इस परायी लड़कीका बोझा कौन अपने सिरपर लेगा ?"

जीवानन्दने कहा,—"मैं इसे ले आया हूं, मैं ही इसका भार उठाऊंगा।

मां-बापने कहा,—"अच्छा, यही सही।"

जीवानन्द उस समयतक क्वांरे थे। शान्ति भी व्याह करने

योग्य हो गयी थी अतएव जीवानन्दने उसके साथ अपना विवाह कर लिया।

विवाहके बाद सब लोग हाथ मल मलकर पछताने लगे। सभी समझ गये कि यह काम अच्छा नहीं हुआ। शान्तिने किसी भी तरह स्त्रियोंकेसे कपड़े नहीं पहने, सिरके बाल नहीं बाँधे। वह घरमें रहकर पड़ोसके बालकोंके साथ खेला करती थी। जीवानन्दके घरके पास ही जंगल था। शान्ति जंगलमें जा मोर, हरिण और दुर्लभ फल और फूलोंको खोजा करती। सास ससुरने पहले तो मना किया पीछे डाँट-डपट की, इसके बाद मारा पीटा और अन्तमें उसे घरमें बन्द करके सांकल चढ़ा दी। इस प्रकारके अत्याचारसे शान्ति ऊब उठी। एक दिन दरवाज़ा खुला था। वह बिना किसीसे कुछ कहे-सुने चुपचाप घरसे बाहर हो गयी।

जंगलके भीतर जा उसने चुन-चुनकर फूल तोड़े और उन्हींके रसमें कपड़े रंगकर उसने नवजवान संन्यासीका रूप बनाया। उन दिनों सारे बंगालमें दलके दल संन्यासी फिरा करते थे। शान्ति भीख माँगती खाती हुई जगन्नाथजीके रास्तेमें जा पहुँची। थोड़े ही दिन बाद वहां संन्यासियोंका एक दल आ पहुंचा। शान्ति भी उसी दलमें मिल गयी।

उस समयके संन्यासी आजकलके संन्यासियोंकी तरह नहीं थे। वे सुशिक्षित, बलवान और अनेक गुणोंसे युक्त होते थे और दल बाँधकर चलते थे। वे एक प्रकारसे पक्के राजविद्रोही थे। सरकारी खजाना लूट खाना उनका काम था। वे हृष्टपुष्ट बालकोंको चुरा ले जाते थे और उन्हें खूब पढ़ा लिखाकर अपने दलमें मिला लेते थे। इससे लोग उन्हें “लड़िक धरवा” कहा करते थे।

शान्ति बालक संन्यासीके रूपमें ऐसेही एक दलमें जा मिली। पहले तो वे लोग उसके कोमल शरीरको देखकर उसे अपने दलमें

मिलाना नहीं चाहते थे, पर पीछे उसकी बुद्धि की प्रखरता, चतुरता और कार्यदक्षता देख, उन्होंने उसे बड़े आदरसे दलमें मिला लिया। शान्ति उनके साथ रहकर कसरत करती और हथियार चलाना सीखती थी, इसीसे वह धीरे धीरे बड़ी मिहनती हो गयी। उनके साथ रहकर उसने बहुतसे देश देखे, बहुतसी लड़ाइयां देखीं। वह हथियार चलानेमें भी निपुण हो गयी।

क्रमशः उसमें जवानीके चिह्न दिखायी देने लगे। बहुतसे संन्यासियोंको यह मालूम हो गया, कि यह तो वेश बदले कोई स्त्री है; पर संन्यासी लोग आमतौरसे जितेन्द्रिय हुआ करते हैं। इसीसे किसीने उससे कुछ नहीं कहा।

संन्यासियोंमें बहुतसे पण्डित भी थे। शांतिको संस्कृतमें व्युत्पन्न देखकर एक पण्डित संन्यासी उसे पढ़ाने लगे।

हम पहले लिख आये हैं कि आमतौरसे संन्यासी लोग जितेन्द्रिय हुआ करते हैं; पर सभी ऐसे नहीं होते। ये पण्डितजी भी वैसे नहीं थे अथवा हो सकता है, कि वे शान्तिकी नयी जवानीके उमंगसे खिले लावण्यको देखकर मुग्ध हो गये हों और इन्द्रियां उन्हें सताने लगी हों। उन्होंने अपनी शिष्याको शृंगाररसके काव्य पढ़ाने आरम्भ किये और जो व्याख्या सुनाने योग्य न भी होती, उसे भी सुनाने लगे। इससे शान्तिकी कुछ हानि तो नहीं हुई भलाई हुई। अबतक शान्ति यह नहीं जानती थी, कि लज्जा किसे कहते हैं? अब स्त्री-स्वभाव-सुलभ लज्जा आपही आ उपस्थित हुई। पुरुषचरित्रके ऊपर निर्मल स्त्रीचरित्रकी अपूर्व आभा शान्तिके गुणोंको और भी चमकाने लगी। शान्तिने पढ़ना छोड़ दिया।

व्याध जिस प्रकार हरिणीके पीछे दौड़ पड़ता है, उसी प्रकार शान्तिके अध्यापक भी उसके पीछे दौड़ने लगे। शान्तिने व्यायाम आदिके द्वारा पुरुषोंसे भी अधिक बल संचय कर लिया था, इसलिये वह अध्यापकजीके पास आते ही थप्पड़ों और

घूँसोंसे उनकी पूजा करने लगती थी, वे थप्पड़ और घूंसे भी हलके नहीं होते थे खूब तौल तौलकर लगाये जाते थे। एक दिन संन्यासीजीने शान्तिको अकेलेमें पाकर जबरदस्ती उसका हाथ पकड़ लिया। शान्ति किसी तरह अपना हाथ न छुड़ा सकी, किन्तु संन्यासीके दुर्भाग्यसे वह हाथ शान्तिका बायाँ हाथ था, इसलिये उसने दाहिने हाथसे संन्यासीके सिरमें इस जोरका घूंसा मारा कि वे मूर्च्छित हो गिर पड़े। उसी दिन शान्ति संन्यासी दल छोड़कर भाग गयी।

शान्ति बड़ी निडर थी। वह अकेली ही अपने देशकी ओर भाग चली। साहस और बाहुबलके प्रभावसे वह निर्विघ्न रही। भीख माँगती और जंगली फलोंसे उदर-पोषण करती; मारपीट कर लोगोंको परास्त करती, वह ससुरालमें आ पहुंची। यहां आकर उसने देखा, कि ससुर स्वर्गवासी हो गये हैं। उसकी सासने जातिच्युत होनेके डरसे उसे अपने घरमें न रखा। शान्ति घरसे बाहर चली गयी।

जीवानन्द घरपर ही थे। वे भी शान्तिके पीछे लगे। उन्होंने बीच रास्तेमें उसे जा पकड़ा और उससे पूछा,—"तुम क्यों घरसे भाग गयी थी? इतने दिन कहां थी?"

इसके उत्तरमें शान्तिने सब कुछ सचसच सुना दिया। जीवानन्दको सच झूठकी अच्छी पहचान थी। उन्होंने शान्तिकी बातोंका विश्वास कर लिया।

✓अप्सराओंकी-सी बांकी भौंहोंवाली तिरछी चितवनकी ज्योति लेकर जो 'सम्मोहन' नामका तीर बड़े यत्नसे बनाया गया है, उसे कामदेव विवाहित दम्पतिके लिये व्यर्थ ही खर्च करना नहीं चाहते। अँगरेज़ पूनोंकी रातमें भी सड़कोंपर गैस बत्ती जलाते हैं, बंगाली जिसके सिरमें तेल लगा होता है, उसीके सिरमें और तेल लगाते हैं—मनुष्योंकी बात तो दूर किनार, चन्द्रदेव सूर्यदेवके बाद ही आकाशमें उदित हुआ करते

हैं, इन्द्र समुद्रमें ही वृष्टि करता है, जिस सन्दूकमें रुपये भरे होते हैं, कुबेर उसीमें और रुपये डाल देते हैं। यमराज जिसके सब किसीको चौपट कर चुके होते हैं, उसीके बाकी बचे हुए लोगोंको भी उठा ले जाते हैं। केवल कामदेव ही ऐसी निर्बुद्धिताका काम करते हुए नहीं दिखाई पड़ते। जहाँ गँठजोड़ा बँधा कि उन्होंने वहां परिश्रम करना छोड़ दिया। वहांका भार प्रजापतिको देकर वे ऐसी जगह चले जाते हैं; जहां वे किसीके हृदयका रक्त पान कर सकें। परन्तु आज शायद पुष्पधन्वाको और कोई काम नहीं था, इसीसे उन्होंने दो पुष्प-बाणोंका अपव्यय कर डाला। एक तो आकर जीवानन्दके कलेजेमें चुभ गया और दूसरा शान्तिके हृदयमें। उसीने शान्तिको आज पहले पहल इस बातका बोध कराया; कि उसका हृदय स्त्रीका ही हृदय है—बड़ी ही कोमल वस्तु है। नवमेघके प्रथम जल-कणोंसे सींची हुई फूलकी कलीकी तरह शान्ति एकाएक खिल गयी और आनन्दभरी आंखोंसे जीवानन्दके मुखकी ओर देखने लगी।

जीवानन्दने कहा,—"मैं तुम्हें नहीं छोड़ सकता। देखो, जबतक मैं लौटकर नहीं आता। तबतक तुम यहीं खड़ी रहना।"

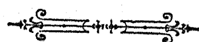
शान्तिने कहा,—"तुम लौटकर आओगे तो?"

जीवानन्दने कुछ उत्तर न दे, बिना किसी ओर देखे, उसी राहकी एक तरफवाली नारियलकी कुञ्जमें चुपकेसे शान्तिके होंठ चूम लिये। आज मानों अमृत ही पीनेको मिल गया; यही सोचते हुए वे घर चले आये।

जीवानन्द मांको समझा-बुझाकर उनसे बिदा मांग चले आये। भैरवीपुरमें उनकी बहन निमाईका ब्याह हुआ था। बहनोईके साथ उनकी बड़ी गहरी दोस्ती थी। इसलिये वे शान्तिको लिए हुए वहीं आ धमके। उनके बहनोईने उन्हें थोड़ी सी जमीन दी जिसमें एक झोपड़ी बनाकर वे शान्तिके साथ सुखसे रहने लगे। स्वामीके साथ रहते रहते शान्तिके चरित्रमें

जो मर्दानगी थी; वह धीरे धीरे लुप्त हो गयी। रमणीके रमणीय चरित्रका नित्य नया विकास होने लगा। पहले कुछ दिनों तक तो उसका जीवन एक सुख-स्वप्नकी तरह बीता, पर यकायक सुख-स्वप्न टूट गया। जीवानन्द सत्यानन्दके हाथमें पड़ गये और सन्तान-धर्म ग्रहण कर शान्तिको छोड़कर चल दिये। इस परित्यागके बाद निमाईकी बदौलत जो प्रथम साक्षात् इन दोनों स्त्री-पुरुषका हुआ था, उसका हाल पिछले परिच्छेदमें वर्णन किया गया है।

दूसरा परिच्छेद।



जीवानन्दके चले जानेपर शान्ति निमाईके घरके बरामदेमें जा बैठी। निमाई भी गोदमें उस लड़कीको लिये हुये वहीं आ बैठी। इस समय शान्तिकी आंखोंमें आँसू नहीं थे। वह आंखें पोंछ, बनावटी हंसीसे मुस्कुरा रही थी। हाँ, कुछ कुछ गम्भीर चिन्तायुक्त और अनमनी अवश्य हो रही थी। निमाई समझ गयी, बोली,—"खैर, किसी तरह मिलना तो हुआ।"

शान्ति कुछ न बोली, चुपचाप रही। निमाईने देखा कि शांति अपने दिलकी बात न कहेगी। उसे यह भी मालूम था, कि शांतिको मनकी बात कहना पसन्द नहीं, इसलिये उसने जान-बूझकर दूसरी चर्चा छेड़ दी, बोली,—"बहू! यह लड़की कैसी है?"

शान्तिने कहा,—"यह छोकरी तुम्हें कहांसे मिली? तुम्हें लड़की कब हुई?"

निमाई—"क्या मुसीबत है! तुमको यमराज उठा क्यों नहीं ले जाते! भाभी! यह लड़की तो भैयाकी है।"

निमाईने शांतिका जी दुखानेके लिये यह बात नहीं कही

थी। उसका मतलब यही था कि इस लड़कीको भैया ले आये हैं। शांति यह न समझी—उसने सोचा, कि निमाईने मेरे कलेजेमें नस्तर चुभानेके लिये यह बात कही है, इसीसे बोल उठी,—"मैंने लड़कीके बापके बारेमें नहीं पूछा था,—मांको बात पूछी थी।"

उचित दण्ड पाकर निमाई झुंझला उठी। बोली,—"भाई! मैं क्या जानूँ कि यह लड़की किसकी है। भैया इसे न जाने कहांसे उठा लाये हैं —मुझे सब हाल पूछनेका अवसर भी न मिला। आजकल देख रही हो कि घोर अकाल पड़ा हुआ है—कितने लोग अपने बाल बच्चोंको रास्तेपर फेंककर भागे जा रहे हैं। कितने ही आदमी तो हमारे ही घर अपने बच्चोंको बेचनेके लिये आये, पर हमने यही सोचकर किसीको नहीं खरीदा कि पराये बेटी-बेटेका बोझा कौन अपने सिर लेने जाय?" यह कहते कहते निमीकी आँखोंमें फिर आंसू भर आये। उन्हें पोंछकर वह फिर कहने लगी,—"लड़की बड़ी सुन्दर है, बड़ा बढ़िया चांदसा मुखड़ा है; इसीसे मैंने इसे भैयासे मांग लिया।"

इसके बाद शांतिने बड़ी देरतक निमाईके साथ बातें कीं और निमाईके स्वामी जब घर आये तब वहांसे उठकर अपनी कुटियामें चली गयी। वहां पहुंच दरवाजा बन्द कर उसने चूल्हेके भीतरसे थोड़ीसी राख निकाली और बाकी राखपर अपने लिये पकाया हुआ भात फेंक दिया। इसके बाद वह बड़ी देरतक खड़ी खड़ी कुछ सोचती रही। फिर आप ही आप बोल उठी,—"इतने दिनसे जो सोच रखा था, उसे आज पूरा करूंगी। जिस आशापर मैंने आजतक वह काम नहीं किया था वह पूरी हो गयी, पर उसे पूरा हुई कहना चाहिये या नष्ट हुई? नष्ट। यह जीवन ही सारा व्यर्थ हुआ। जिस बातका मैं सङ्कल्प कर चुकी हूं, उसे तो पूरा करूंगी ही, जो प्रायश्चित्त एक बार किया वही सौ बार भी सही।"

यही सब सोच-विचारकर उसने चूल्हेमें भात फेंक दिया और जंगलसे फल तोड़ लायी। अन्नके बदले उसने वही फल खाये। इसके बाद जिस ढाकेकी साड़ीपर निमाई इतनी लट्टू थी, उसे बाहर निकालकर उसने उसकी किनारी फ़ाड़ डाली और उसे पक्के गेरुए रंगमें रंग डाला। यह सब करते करते संध्या हो गयी। संध्या हो जानेपर घरके किवाड़ बन्द कर शांति एक अद्भुत व्यापारमें प्रवृत्त हुई। उसने कैंची लेकर अपने घुटनेतक लटकनेवाले रूखे बाल काट डाले। जो कुछ बचे, उन्हें लपेटकर उसने जटा बना ली। रूखे बाल अजीब तरहसे जटासे बना लिये गये। इसके बाद उस गेरुए वस्त्रके दो टुकड़े कर उसने एक टुकड़ेका लंगोटा बनाकर पहना और दूसरेकी गांती बनाकर ओढ़ ली जिससे उसका शरीर ढक गया। घरमें एक छोटासा आईना रखा था। उसे आज बहुत दिनों बाद उसने बाहर निकाला और उसमें अपना रूप देखने लगी। देखते देखते बोली—"हाय! क्या करनेको थी और मैंने क्या कर डाला?" तब आईनेको अलग फेंककर उसने कटे हुए बालोंकी दाढ़ी-मूंछें बनायीं; पर उन्हें लगा न सकी। उसने कहा—"छिः! छिः! क्या कहीं ऐसा भी होता है? अब वह समय कहां? पर हां, उस बूढेको छकानेके लिये इन्हें रख छोड़ना ठीक है।" यही सोचकर उसने उन नकली दाढ़ी मूँछोंको कपड़ेमें छिपाकर रख लिया। इसके बाद उसने घरके अन्दरसे एक बड़ीसी मृगछाला निकाल, कण्ठमें बांध, कण्ठसे जानु पर्यन्त शरीर ढक लिया। इस प्रकार नूतन संन्यासीका रूप बना लेनेपर उसने एक बार घरके चारों तरफ स्थिर भावसे देखा। दोपहर रात बीतनेपर उसने उसी संन्यासी वेशमें किवाड़ खोल घरसे बाहर निकल उसी जङ्गलमें प्रवेश किया। वनकी देवियोंने उस आधी रातके समय जङ्गलमें एक अपूर्व संगीत होता हुआ सुना।

गीत

नहीं मनोरथ घर रहनेका,
कहलाके अबला नारी।
रण जय गावो सब जुड़ि आओ,
करो युद्धकी तैयारी
कौन तुम्हारा? कहांसे आये?
किसके हो? क्या कहलाओ?।
चढ़ घोड़ेपर बांध अस्त्र मैं,
लड़न चली मत लौटाओ॥
हरि हरि कह तज मोह प्राणका,
समर करूंगी अति भारी।
नहीं मनोरथ घर रहनेका० ॥
कहां चला प्रिय प्राण हमारा,
मुझे छोड़के मत जाना।
महानादसे विजय दुंदुभी,
बजता है यह मनमाना॥
घोड़े उड़ें देख जी उमड़ा,
युद्ध कामना है भारी।
नहीं मनोरथ घर रहनेका,
कहलाके अबला नारी॥

तीसरा परिच्छेद

दूसरे दिन आनन्दमठके भीतरवाले एक सुनसान मकानमें सन्तानोंके तीनों नायक भग्नोत्साह हो, बैठे बातें कर रहे थे। जीवानन्दने सत्यानन्दसे पूछा—"महाराज! देवता हम

लोगोंपर ऐसे अप्रसन्न क्यों हैं ? किस अपराधसे हम लोग मुसलमानोंद्वारा हराये गये ?"

सत्यानन्दने कहा—"देवता अप्रसन्न नहीं हैं, लड़ाईमें तो हार जीत हुआ ही करती है। उस दिन हम जीते थे। आज हार गये हैं, अन्तमें फिर जीत सकते हैं। मुझे पूरा भरोसा है कि जो इतने दिनोंसे हमारी रक्षा करते आये हैं, वे ही शङ्ख-चक्र-गदा-पद्मधारी बनवारी फिर हमपर दया दिखलायेंगे। उनके चरण छूकर हमलोगोंने जिस व्रतको ग्रहण किया हैं, उसका पालन तो हमें करना ही होगा। विमुख होनेसे हमें अनन्त नरक भोगना होगा। मुझे तो आगे मङ्गल ही मङ्गल दिखाई देता है। परन्तु जैसे दैवानुग्रह हुए बिना कोई कार्य नहीं सिद्ध होता वैसे हीं पुरुषार्थ विना भी कोई काम नहीं सरता। हमारे हारनेका कारण यही हुआ कि हम निहत्थे थे। गोले-गोलियोंके सामने लाठी, बर्छे और भालेकी क्या हकीकत है! इसलिये यह कहना ही पड़ता है कि हममें पुरुषार्थ नहीं था, इसीसे हम हार गये। अब हमारा कर्त्तव्य है कि हम अपने यहाँ भी हथियारों और बन्दूकोंका ढेर लगा दें।"

जीवा०—"यह काम तो बड़ा ही कठिन है।"

सत्या०—"जीवानन्द! क्या सचमुच बड़ा ही कठिन है? सन्तान होनेपर भी तुम्हारे मुंहसे ऐसी बात क्योंकर निकली? क्या सन्तानोंके लिये भी इस दुनियांमें कोई काम बड़ा ही कठिन है?"

जीवा०—"आज्ञा दीजिये, कहांसे अस्त्र संग्रह कर लाऊं?"

सत्या०—"इसके लिये मैं आज ही रातको तीर्थयात्रा करने निकलूंगा। जबतक मैं न लौटूं, तबतक तुम लोग किसी बड़े भारी काममें हाथ न डालना। हां, आपसमें एकता बनाये रखना, सन्तानोंकी प्राण-रक्षाके लिये खाने-पहननेकी चीजें संग्रह करते रहना और माताको युद्ध-जयके लिये अर्थसंग्रह करते जाना। यह भार तुम दो जनोंपर रहेगा।"

भवानन्दने कहा,—"आप तीर्थयात्राके समय यह सब सामान क्योंकर इकट्ठा कर सकेंगे? गोली गोले और तोप बन्दूकें खरीदकर भेजनेसे तो बड़ी गड़बड़ मच जायगी। और इतना सामान मिलेगा कहाँ? कौन इतना सब बेचनेको तैयार होगा, और कौन ला सकेगा?"

सत्या०—खरीदकर लानेसे हमारा काम नहीं चलेगा। मैं कारीगर भेज दूंगा; उनसे यहीं बनवा लेना होगा।"

जीवा०—"यह क्या? इसी आनन्दमठमें?"

सत्या०—कहीं ऐसा भी हो सकता है? मैं बहुत दिनोंसे इसकी फिक्रमें था, आज भवानन्दकी दयासे मौका हाथ लग गया है। तुम लोग कह रहे थे कि विधाता हमारे प्रतिकूल है, पर मैं तो देख रहा हूं कि वह एकदम अनुकूल है।"

भवा०—"कारखाना कहां खुलेगा?"

सत्या०—"पदचिह्न-ग्राममें।"

भवा०—"वहां क्यों खुलेगा?"

सत्या०—"इसीलिये तो मैंने महेन्द्रसे यह व्रत ग्रहण करवाना चाहा था और उसके लिये इतना तरद्दुद उठाया है।"

जीवा०—"क्या महेन्द्रने व्रत ले लिया?"

सत्या०—"लिया नहीं है, लेगा। आज ही रातको उसकी दीक्षा होगी।"

जीवा०—"महेन्द्रके लिये क्या क्या तरद्दुद उठाने पड़े, वह तो हमको मालूम ही नहीं। उसकी स्त्री-कन्या क्या हुईं? वे कहां रखी गयी हैं? मैंने आज नदीके तीरपर एक कन्या पड़ी पायी थी। उसे मैं अपनी बहनको दे आया हूं। उसीके पास एक सुन्दरी स्त्री भी मरी पड़ी थी। कहीं वही महेन्द्रकी स्त्री तो नहीं थी? मुझे तो ऐसा ही शक हो रहा था।"

सत्या०—"हां, वे ही महेन्द्रकी स्त्री-कन्या थीं।"

भवानन्द चौंक उठे। अब वे समझ गये, कि मैंने जिस

स्त्रीको औषधके बलसे पुनर्जीवित किया ह, वह महेन्द्रकी ही स्त्री कल्याणी है; किन्तु इस समय उन्होंने कोई बात कहनी आवश्यक नहीं समझी।

जीवानन्दने कहा—"महेन्द्रकी स्त्री कैसे मरी?"

सत्या०—"जहर खाकर।"

जीवा०—"उसने जहर क्यों खाया?"

सत्या०—"भगवानने उसे प्राण-त्याग करनेके लिये सपनेमें आज्ञा दी थी।"

जीवा०—"वह स्वप्नादेश क्या सन्तानोंके कार्योद्धारके ही निमित्त हुआ था?"

सत्या०—"महेन्द्रसे तो मैंने ऐसा ही कुछ सुना था। अच्छा, अब सायङ्काल हो चला है। मैं सन्ध्या-पूजा करने जाता हूं। उसके बाद नूतन सन्तानोंको दीक्षित किया जायगा।"

भवा०—"क्या बहुतसे नये सन्तान दीक्षा लेनेवाले हैं? क्या महेन्द्रके सिवा और कोई आदमी शिष्य होना चाहता है?"

सत्या०—"हाँ, एक और नया आदमी है। पहले तो मैंने उसे कभी नहीं देखा था। आज ही वह मेरे पास आया है। वह बड़ा ही नवजवान और सुन्दर पुरुष है। मैं उसकी चालढाल और बात-चीतसे बड़ाही प्रसन्न हुआ। वह एकदम खरा सोना मालूम पड़ता है। उसे संतानोंका कर्त्तव्य सिखलानेका भार जीवानन्दको दिया जाता है। इसका कारण यह है कि जीवानंद लोगोंका मन मोह लेनेमें बड़ा चतुर है। मैं चलता हूं, तुम लोगोंसे सिर्फ एक बात और कहनेको रह गयी है। दत्तचित्त होकर उसेभी सुन लो।"

दोनोंने हाथ जोड़े हुए कहा—"जो आज्ञा।"

सत्यानन्दने कहा—"यदि तुम दोनोंमेंसे कोई अपराध बन आया हो अथवा मेरे लौट आनेके पहले कोई नया अपराध बन पड़े, तो उसके लिये मेरे आये बिना प्रायश्चित्त न करना। मेरे आनेपर प्रायश्चित्त करना ही पड़ेगा।"

यह कह, सत्यानन्द अपने स्थानको चले गये। भवानन्द और जीवानन्द परस्पर एक दूसरेका मुंह देखने लगे।

भवानन्दने कहा—"यह बात कहीं तुम्हारे ही ऊपर डालकर तो नहीं कही गयी है?"

जीवा०—"हो सकता है, क्योंकि मैं महेंद्रकी कन्याको रख आनेके लिये बहनके घर चला गया था।"

भवा०—"इसमें भला कौनसा अपराध हुआ? वह तो कोई निषिद्ध कार्य नहीं है। कहीं अपनी स्त्रीसे भी तो नहीं मिल आये हो?"

जीवा०—"शायद गुरुजीको यही संदेह हुआ है।"



चौथा परिच्छेद

संध्या पूजा समाप्त कर सत्यानंदने महेंद्रको बुलाकर कहा—"तुम्हारी स्त्री और कन्या जीवित हैं।"

महेंद्र—"कहां हैं, महाराज?"

सत्या०—"तुम मुझे महाराज क्यों कहते हो?"

महेंद्र—"सभी कहते हैं, इसीलिये मैं भी कहता हूं। मठके अधिकारी राजा कहलाते ही हैं। महाराज, मेरी कन्या कहां है?"

सत्या०—"इसका जवाब पानेके पहिले एक बातका ठीक-ठीक जवाब दो। क्या तुम संतानधर्म्म ग्रहण करना चाहते हो?

महेंद्र—"हाँ, पक्का इरादा कर चुका हूं।"

सत्या०—"तब यह न पूछो कि तुम्हारी स्त्री कन्या कहाँ हैं।

महेंद्र—"क्यों महाराज?"

सत्या०—"जो मनुष्य यह व्रत ग्रहण करता है, उसे स्त्री,

पुत्र, कन्या और सगे-सम्बन्धियोंसे नाता तोड़ देना पड़ता है। स्त्री, पुत्र, कन्या आदिका मुंह देखना भी पाप है। उसके लिये प्रायश्चित्त करना पड़ता है। जबतक संतानोंका मनोरथ सिद्ध नहीं होता, तबतक तुम अपनी कन्याका मुंह न देखने पाओगे। इसलिये यदि तुमने संतानधर्म्म ग्रहण करनेका पक्का इरादा कर लिया हो, तो फिर कन्याका हाल न पूछो—पूछकर ही क्या करोगे? क्योंकि तुम उसे देखने तो पाओगे ही नहीं।"

महेंद्र—"ऐसा कठिन नियम क्यों प्रभो?"

सत्या०—"संतानोंका काम बड़ा ही कठिन है। जो सर्व-त्यागी हैं, उसके सिवा दूसरेसे यह काम नहीं हो सकता। जिसका चित्त मायाके जालमें फंसा है, वह डोरीमें बंधे हुए पतङ्गकी तरह पृथ्वी छोड़कर स्वर्ग नहीं जा सकता।"

महेंद्र—महाराज! आपकी बात अच्छी तरह मेरी समझमें नहीं आती। जो स्त्री-पुत्रका मुख देखता है, वह क्या किसी गुरुतर कार्यका अधिकारी नहीं हो सकता?"

सत्या०—"पुत्र-कलत्रको देखते ही हमलोग देवताकी बात भूल जाते हैं। संतानधर्मका यह नियम है कि जभी प्रयोजन हो, तभी संतानगण प्राण त्याग दें। तुम यदि अपनी कन्याका मुंह देख लोगे, तो क्या उसे छोड़कर तुमसे प्राण दिये जायंगे?"

महेंद्र—"न देखनेपर ही क्या उसे भूल जाऊंगा?"

सत्यानंद—"अगर न भूल सकोगे तो यह व्रत मत ग्रहण करो।"

महेंद्र—"क्या सभी संतानोंने इसी तरह स्त्री-पुत्रकी मोह-माया त्यागकर यह व्रत ग्रहण किया है? तब तो संतानोंकी संख्या बहुत ही कम होगी?"

सत्या०—"संतान दो तरहके हैं-एक दीक्षित दूसरे अदीक्षित। जो दीक्षित नहीं हैं, वे संन्यासी या भिखारी हैं। वे केवल युद्धके

समय चले आते हैं और लूटके मालमें हिस्सा इनाम पाकर चले जाते हैं। जो दीक्षित हैं, वे सब कुछ छोड़े बैठे हैं। वे ही इस संप्रदायके कर्त्ता-धर्त्ता हैं। मैं तुम्हें अदीक्षित संतान नहीं बनाना चाहता; क्योंकि लड़ने-भिड़नेके लिये भाले-बर्छो और लाठी सोटेवाले तो बहुतसे हैं। दीक्षित हुए बिना तुम सम्प्रदायका कोई गुरुतर कार्य न कर सकोगे।"

महेंद्र—"दीक्षा कैसी ? मैं दीक्षा क्यों लूं ? मैं तो पहले ही मंत्र ले चुका हूं।"

सत्या०—"वह मंत्र छोड़कर मुझसे फिर दूसरा मंत्र लेना होगा।"

महेंद्र—"वह मंत्र कैसे त्याग कर सकता हूं ?"

सत्या०—"उसकी विधि मैं तुम्हें बतला दूंगा।"

महेन्द्र—नया मन्त्र क्यों लेना पड़ेगा ?"

सत्या०—"संतान लोग वैष्णव हैं।"

महेंद्र—"यह तो मेरी समझमें नहीं आता। ये संतान लोग कैसे वैष्णव हैं? वैष्णवोंके लिये तो अहिंसा ही बड़ा भारी धर्म है।"

सत्या०—"अहिंसावाले चैतन्यदेवके अनुयायी वैष्णव हैं। नास्तिक बौद्धधर्मके अनुकरणपर जो अप्राकृतिक वैष्णवधर्म उत्पन्न हुआ था, यह उसीका लक्षण है; परन्तु सच्चे वैष्णवधर्मका लक्षण दुष्टोंका दमन और धरित्रीका उद्धार है, क्योंकि विष्णु ही संसारके पालनकर्त्ता हैं। उन्होंने दस बार शरीर धारणकर पृथ्वीका उद्धार किया है। केशी, हिरण्यकशिपु, मधुकैटभ, मुर, नरक आदि दैत्यों, रावणादि राक्षसों और कंस तथा शिशुपाल आदि राजाओंको उन्होंने ही युद्धमें मार गिराया था। वे ही जेता, जयदाता, पृथ्वीके उद्धारकर्त्ता और सन्तानोंके इष्ट देवता हैं। चैतन्यदेवका वैष्णवधर्म तो अधूरा है। वह सच्चा वैष्णवधर्म नहीं है। चैतन्यदेवके विष्णु प्रेममय हैं, किन्तु भगवान केवल प्रेममय ही नहीं अनन्त शक्तिमय भी हैं।

चैतन्यके विष्णु केवल प्रेममय हैं सन्तानोंके विष्णु केवल शक्ति-मय हैं। हम दोनों ही वैष्णव हैं, पर आधे ही वैष्णव हैं। अब बात समझमें आयी कि नहीं?''

महेन्द्र—"नहीं, यह तो बिलकुल नयी बातें मालूम पड़ती हैं। कासिमबाजारमें एक बार एक पादरी मिला था। वह भी कुछ ऐसी ही बातें कहता था; कहता था कि ईश्वर प्रेममय हैं, तुम लोग ईसामसीहको प्यार करो। आपकी बातें भी उसी-कीसी मालूम पड़ती हैं।"

सत्या—"जैसी बातें हमारे बाप-दादे कहते चले आये हैं, वैसी ही बातें तो मैं कह रहा हूं। तुमने यह सुना है या नहीं कि ईश्वर त्रिगुणात्मक हैं?"

महेन्द्र—"हां, सुना है। सत्त्व, रज और तम—ये तीन गुण हैं।"

सत्या०—"बहुत ठीक। इन तीनों गुणोंकी अलग-अलग उपासना होती है। सत्त्वगुणसे उनकी दया, दाक्षिण्य आदिकी उत्पत्ति होती है। उसकी उपासना भक्तिद्वारा करनी चाहिये। चैतन्यका सम्प्रदाय यही करता है। रजोगुणसे उनकी शक्ति उत्पन्न होती है। इसकी उपासना युद्धद्वारा की जाती है, देवताके शत्रुओंको मारकर की जाती है। हम लोग ऐसा ही करते हैं। और तमोगुणसे भगवान्ने शरीर धारण कर, चतुर्भुज आदि रूप इच्छानुसार धारण किये हैं। माला, चन्दन आदि उपहारोंके द्वारा इस गुणकी पूजा की जाती है। सर्वसाधा-रण ऐसा ही करते हैं। अब समझे या नहीं?"

महेंद्र—"समझा। तब तो सन्तानगण भी एक प्रकारके उपासक ही हैं।"

सत्या०—"अवश्य। हम लोग राज्य नहीं चाहते, पर चूंकि ये मुसलमान भगवान्से द्वेष करते हैं, इसोलिये हम उनको निर्मूल कर डालना चाहते हैं।"

पांचवां परिच्छेद



बातचीत समाप्त कर, सत्यानन्दने महेन्द्रको लेकर मठके भीतरवाले मंदिरमें, जहां वह शोभामयी प्रकाण्ड चतुर्भुज मूर्त्ति विराजती थी, प्रवेश किया। उस समय वहांकी शोभा बड़ी ही विचित्र थी। सोने, चांदी और रत्नोंसे जगमगाते हुए प्रदीप मन्दिरको आलोकित कर रहे थे। ढेरके ढेर फूल शोभायमान होते हुए मन्दिरमें सुगन्ध फैला रहे थे। एक आदमी वहां बैठा हुआ धीरे धीरे "हरे मुरारे" कह रहा था। सत्यानन्दके भीतर घुसते ही उसने उठकर उन्हें प्रणाम किया। ब्रह्मचारीने पूछा— "तुम दीक्षित होना चाहते हो ?"

उसने कहा,—"मेरे ऊपर दया कीजिये।"

यह सुन, उसे और महेन्द्रको सम्बोधन कर सत्यानन्दने कहा—"तुम लोगोंने यथाविधि स्नान कर लिया है न ? अच्छी तरहसे संयम और उपवास किये हुए हो न ?"

उत्तर—"हां।"

सत्या०—"अच्छा, तुम लोग यहीं भगवान्‌के सामने प्रतिज्ञा करो कि हम सन्तानधर्मके सब नियमोंका पालन करेंगे।"

दोनों—"करेंगे।"

सत्या०—"जबतक माताका उद्धार नहीं हो जाता, तबतक गृहस्थधर्मका परित्याग करोगे न ?"

दोनों—"हां, करेंगे।"

सत्या०—"मां-बापको त्याग दोगे ?"

दोनों—"हां।"

सत्या०—"भाई-बहनको ?"

दोनों०—"हां, उन्हें भी छोड़ देंगे।"

सत्या०—"स्त्री-पुत्रको ?"

दोनों—"उन्हें भी त्याग देंगे।"

सत्या०—"सगे-सम्बन्धियों और दास-दासियोंको ?"

दोनों—"उन्हें भी छोड़ देंगे।"

सत्या०—"धन, सम्पद्, भोग विलास ?"

दोनों—"आजहीसे इन सबको छोड़ देंगे।"

सत्या०—"इन्द्रियोंको वशमें रखोगे न ? कभी किसी स्त्रीके साथ एक आसनपर न बैठोगे ?"

दोनों,—"नहीं बैठेंगे। इन्द्रियोंको वशमें रखेंगे।"

सत्या०—"भगवान्‌के सामने प्रतिज्ञा करो, कि अपने लिये या अपने सगे-सम्बन्धियोंके लिये अर्थोपार्जन न करोगे।। जो कुछ पैदा करोगे, उसे वैष्णवोंके धनागारमें दोगे।"

दोनों—"हाँ, ऐसा ही करेंगे।"

सत्या०—"सन्तानधर्मके लिये स्वयं अस्त्र हाथमें लेकर युद्ध करोगे न ?"

दोनों,—"हाँ।"

सत्या०—"रणसे कभी पीछे तो न हटोगे ?"

दोनों—"कभी नहीं।"

सत्या०—"यदि तुम्हारी यह प्रतिज्ञा भङ्ग हो जाय ?"

दोनों—"तो जलती चितामें प्रवेश कर या विष खाकर प्राण त्याग कर देंगे।"

सत्या०—"एक बात और है। तुम किस जातिके हो, महेन्द्र तो कायस्थ है।"

दूसरेने कहा—"मैं तो ब्राह्मणका बालक हूं।"

सत्या०—"अच्छी बात है। क्या तुम अपनी जाति त्याग कर सकोगे ? सब सन्तानोंकी जाति एक है। इस सदाव्रतमें ब्राह्मण शूद्रका कोई विचार नहीं है। बोलो, क्या कहते हो ?"

दोनों—"हम सब एकही माँकी सन्तान हैं। अतएव हम-लोग जाति-पाँतिका विचार न करेंगे।"

सत्या०—"तब आओ, मैं तुम लोगोंको दीक्षा दूं। देखना, तुम लोगोंने जो प्रतिज्ञाएं अभी की हैं, उन्हें कभी न तोड़ना। स्वयं मुरारी इसके साक्षी रहेंगे जिन्होंने रावण, कंस, हिरण्य-कशिपु, जरासन्ध, शिशुपाल आदिको मार डाला था; जो सर्वान्त-र्यामी, सर्वमय, सर्वशक्तिमान् और सर्व नियन्ता हैं; जो इन्द्रके वज्र और बिल्लीके नखोंमें तुल्यरूपसे वास करते हैं, वे ही प्रतिज्ञा भंग करनेवालेको मारकर घोर नरकमें डाल देंगे।"

दोनों—"बहुत अच्छा।"

सत्या०—"अच्छा, तो अब गाओ—वन्देमातरम्।"

दोनों ही उस अकेले मातृमन्दिरमें मातृ-स्तुतिका गान करने लगे। इसके बाद ब्रह्मचारीने उन लोगोंको यथाविधि दीक्षा दी।

छठा परिच्छेद



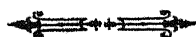
दीक्षा समाप्त कर सत्यानन्द महेन्द्रको एकान्त स्थानमें ले गये। दोनोंके बैठ जानेपर सत्यानन्दने कहा,—"देखो, बेटा! तुमने जो यह महाव्रत ग्रहण किया है, उससे मैं समझता हूं कि भगवान् हम लोगोंके प्रति अनुकूल हो रहे हैं। तुम्हारे हाथों माँका बहुत काम निकलेगा। तुम खूब मन लगाकर मेरी बातें सुनो। मैं तुमको जीवानन्द और भवानन्दके साथ-साथ वन-वन भटकते हुए युद्ध करनेको नहीं कहता। तुम पदचिह्न ग्राममें लौट जाओ। तुम्हें घरपर रहकर ही सन्तानधर्मका पालन करना होगा।"

यह सुन, महेन्द्र बड़े ही विस्मित और दुःखित हुए, पर कुछ

बोले नहीं। ब्रह्मचारी कहने लगे,—"यहां हमारा कोई आश्रय नहीं है—ऐसा कोई स्थान नहीं है, जहाँ यदि कोई प्रबल सेना आकर हमें घेर ले, तो हम रसद पानी ले, दरवाजा बन्द कर, दस दिन निर्विघ्न रह सकें। हमारे पास कोई किला तो है नहीं—तुम्हारे महल अटारी है, गांवपर तुम्हारा रोबदाब है। मेरी इच्छा है कि वहां एक गढ़ बनाऊँ। खाई और शहरपनाहोंके द्वारा पदचिह्न ग्रामको अच्छी तरह घेरकर, बीच बीचमें पहरेका इन्तजाम कर देने और बांधके ऊपर तोपें बैठा देनेसे बड़ा बढ़िया किला तैयार हो जायगा। तुम अपने घर चले जाओ, धीरे-धीरे सन्तान-सम्प्रदायके दो हजार आदमी भी वहां पहुंच जायँगे। वे ही लोग यह खाई और बांध वगैरह तैयार कर देंगे। तुम वहां एक बड़ासा लोहेका मकान बनवा लेना, जिसमें सन्तानोंका खजाना रहेगा। मैं अशर्फियोंसे भरे हुए सन्दूक एक एक कर तुम्हारे पास भेजता रहूंगा। तुम उसी धनसे धीरे-धीरे यह सब काम पूरा करा लेना। मैं जगह जगहसे होशियार कारीगर ढूंढ़ कर वहां भेजूंगा। उनके पहुंच जानेपर तुम वहां कारखाना खोल देना, जिसमें तोप, गोला, गोली, बारूद, और बन्दूकें तैयार हुआ करेंगी। मैं इसीलिये तुम्हें घर जानेको कह रहा हूं।"

महेन्द्रने सब स्वीकार कर लिया।

सातवां परिच्छेद



सत्यानन्दके चरणोंमें प्रणाम कर महेन्द्र जब चले गये, तब वह दूसरा शिष्य जो उसी दिन दीक्षित हुआ था, वहां आ पहुंचा। उसके प्रणाम करनेपर सत्यानन्दने उसे आशीर्वाद देकर मृगचर्मपर बैठनेके लिये कहा। इधर-उधरकी कुछ बातें करनेके

अनन्तर उन्होंने कहा—"कृष्णमें तुम्हारी गहरी भक्ति है या नहीं?"

शिष्यने कहा—"सो कैसे कहूं? मैं जिसे भक्ति समझता हूं, वह या तो दुनियांकी आंखोंमें धूल झोंकना है या अपनी आत्माके साथ धोखा करना है।"

सत्यानन्दने सन्तुष्ट होकर कहा—"ठीक कहते हो, जिससे भक्ति दिन दिन गहरी हो; वही काम करना। मैं आशीर्वाद करता हूं कि तुम्हारा प्रयास सफल होगा, क्योंकि तुम्हारी उमर अभी बहुत थोड़ी है। अच्छा, बेटा! मैं तुम्हें क्या कहकर पुकारा करूं? मैं तो यह बात पूछना ही भूल गया था।"

नूतन सन्तानने कहा,—"आपकी जो इच्छा हो वही कहकर पुकारें। मैं तो वैष्णवोंका दासानुदास हूं।"

सत्या०—"तुम्हारी यह नवीन अवस्था देखकर तो तुम्हें नवीनानन्द ही कहकर पुकारनेकी इच्छा होती है। बस आजसे तुम्हारा यही नाम हुआ। पर एक बात तो बतलाओ—तुम्हारा पहला नाम क्या था? यदि कहनेमें कोई बाधा हो, तोभी कह देना। मुझसे कह दोगे, तो निश्चय जान रखो, कि कोई तीसरा यह न जानने पायेगा। सन्तानधर्मका मर्म यही है कि जो न कहने योग्य हो, वह बात भी गुरुसे कह देनी चाहिये। कह देनेसे कोई क्षति नहीं होती।"

शिष्य—"मेरा नाम शान्तिराम देव शर्मा है।"

"नहीं, तेरा नाम शान्तिमणि पापिष्ठा है।" यह कहकर सत्यानन्दने अपने शिष्यकी काली और डेढ़ हाथ लम्बी दाढ़ी बायें हाथसे पकड़कर खींची। बस, नकली दाढ़ी झटसे अलग हो गयी। सत्यानन्दने कहा—"जा, बेटी! तू मेरे ही साथ धोखाधड़ी करने आयी थी? यदि छकाने ही चली थी, तो फिर तूने यह डेढ़ हाथ लम्बी दाढ़ी क्यों लगायी। दाढ़ी अगर ठीक बैठ भी जाती, तो यह कोमल कण्ठस्वर और यह चितवन कैसे छिपा

लेती ? यदि मैं ऐसा बोदा होता, तो फिर इतने बड़े काममें हाथ क्योंकर लगाता ?"

लजायी हुई शान्ति दोनों हाथोंसे आंखें छिपाये और सिर झुकाये हुई कुछ देरतक बैठी रही। इसके बाद हाथ हटाकर उसने बूढ़े बाबापर एक तिरछी चितवनका वार कर कहा—"प्रभो! मैंने कुछ अपराध तो नहीं किया। क्या स्त्रियोंके हाथमें बल नहीं होता ?"

सत्या०—"उतना ही, जितना गायके खुरमें जल समा सकता है।"

शान्ति—"आप क्या कभी सन्तानोंके बाहुबलकी परीक्षा भी लेते हैं ?"

सत्या०—"हाँ, लेता हूं।" यह कहकर सत्यानन्दने एक फौलादका धनुष और कुछ थोड़ेसे लोहेके तार लाकर शान्तिके हाथमें देते हुए कहा—"इस फौलादके धनुषपर इस तारकी प्रत्यञ्चा चढ़ानी होती है। प्रत्यञ्चा दो हाथकी होती है। प्रत्यञ्चा चढ़ाते चढ़ाते धनुष उछल पड़ता है, जिससे प्रत्यञ्चा चढ़ानेवाला ही दूर जा गिरता है। इसपर जो सही सलामत प्रत्यञ्चा चढ़ा दें, उसे ही मैं बलवान् समझता हूं।"

शान्तिने उस धनुष और तीरकी भलीभांति परीक्षा कर कहा—"क्या सभी सन्तान इस परीक्षामें उत्तीर्ण हो चुके हैं ?"

सत्या०—"नहीं, मैंने इसके द्वारा उनके बलका अनुमानमात्र कर लिया है।"

शान्ति—"कौन-कौन इस परीक्षामें उत्तीर्ण हुए हैं ?"

सत्या०—"सिर्फ चार आदमी।"

शान्ति—"कौन-कौन? क्या मैं यह पूछ सकती हूं ?"

सत्या०—"हाँ, कोई आपत्ति नहीं है? एक तो मैं ही इस परीक्षामें उत्तीर्ण हो चुका हूं।"

शान्ति—"और कौन कौन उत्तीर्ण हुए हैं ?"

सत्या०—"जीवानन्द, भवानन्द और ज्ञानानन्द।"

यह सुन, शान्तिने धनुष और तार लेकर झटपट धनुषका रौंदा कस दिया और ब्रह्मचारीके चरणोंके पास रख दिया।

सत्यानन्द विस्मित, भीत और स्तम्भित हो गये। थोड़ी देर बाद बोले—"यह क्या? तुम देवी हो या मानवी?"

शान्तिने हाथ जोड़कर कहा,—"मैं सामान्य मानवी हूं; पर हाँ, ब्रह्मचारिणी हूं।"

सत्या०—"सो कैसे? क्या तुम बालविधवा हो? नहीं बाल-विधवाओंमें भी इतना बल नहीं होता; क्योंकि वे एक ही समय भोजन करती हैं।"

शान्ति—"मैं सधवा हूं।"

सत्या०—"तो क्या तुम्हारा स्वामी लापता है?"

शान्ति—"नहीं, उनका पता ठिकाना है और मैं उन्हींका पता पाकर यहां आयी भी हूं।"

सहसा सत्यानन्दके चित्तमें एक बात वैसे ही झलक आयी, जैसे मेघमालाको हटाकर एकाएक धूप निकल आये। उन्होंने कहा,—"अच्छा मुझे याद आ गया। जीवानन्दकी स्त्रीका नाम शान्ति था। कहीं तुम जीवानन्दकी ही स्त्री तो नहीं हो?"

नवीनानन्दने अपने मुंहको जटासे ढक लिया, मानो कमलके फूलोंपर हाथीकी सूँड़ फैल गयी। सत्यानन्द बोले—"तू यह पाप करने क्यों आयी?"

एकाएक अपनी जटाको पीठपर फेंक, शान्तिने मुंह उठाकर कहा—"प्रभो! पाप कैसा? पत्नीका स्वामीका अनुसरण करना क्या पाप कहलाता है? यदि सन्तानोंका धर्मशास्त्र इसे पाप बतलाता हो, तो यह सन्तानधर्म अधर्म है। मैं उनकी सहधर्मिणी हूं। वे धर्माचरणमें लगे हैं, इसलिये मैं उनके धर्ममें सहायता करने आयी हूं।"

शांतिकी तेजभरी वाणी सुन, और उसकी बांकी गरदन,

उठी हुई छाती, काँपते हुए अधर और उज्ज्वल तथा नीरपूर्ण नेत्र देख, सत्यानन्द बड़े ही प्रसन्न हुए, बोले,—"तुम साध्वी हो, इसमें सन्देह नहीं, किन्तु बेटी! पत्नी केवल गृहधर्ममें ही सहधर्मिणी मानी जाती है। वीरधर्ममें रमणीकी सहायता कैसी?"

शान्ति—"कौनसे महावीर बिना पत्नीके ही वीर हो गये हैं? यदि सीता न होती तो राम थोड़े ही वीर हो सकते थे? बतलाइये तो सही, अर्जुनने कितने विवाह किये थे? भीममें जितना बल था, उनके उतनी ही पत्नियाँ भी थीं। कहाँतक कहूं? आपको बतलानेकी जरूरत नहीं है।"

सत्या०—"ठीक है, पर कौन वीर अपनी स्त्रीको लेकर रणभूमिमें गया है?"

सत्या०—अर्जुन जिस समय यादवी सेनाके साथ आकाश मार्गसे युद्ध कर रहे थे, उस समय किसने उनका रथ चलाया था? द्रौपदी यदि साथ न रहती, तो पाण्डवगण कुरुक्षेत्रकी लड़ाईमें जूझने थोड़े ही जाते?"

सत्या०—"ठीक है; पर साधारण लोगोंके मन स्त्रियोंको देखकर चञ्चल हो जाते हैं, जिससे वे काममें ढिलाई करने लगते हैं। इसीलिये सन्तानोंसे यह प्रतिज्ञा करायी जाती है कि वे किसी स्त्रीके साथ एक आसनपर न बैठें। जीवानन्द मेरा दाहिना हाथ है। तुम क्या मेरा दाहिना हाथ ही तोड़ने चली हो?"

शान्ति—"नहीं, मैं आपके दाहिने हाथका बल बढ़ाने आयी हूं। मैं ब्रह्मचारिणी हूं और प्रभुके पास ब्रह्मचारिणी ही बनकर रहूंगी। मैं केवल धर्माचरण करने आयी हूं—स्वामीके दर्शन करनेके लिये नहीं। मैं विरहकी ज्वालासे जल नहीं रही हूं। स्वामीने जो धर्म स्वीकार किया है, उसमें मेरा हिस्सा क्यों न होगा? यही सोचकर मैं चली आयी हूं।"

सत्या०—"अच्छी बात है; मैं कुछ दिनोंतक परीक्षा लूंगा।"

शान्तिने पूछा—"मैं आनन्दमठमें रहने पाऊंगी न ?"

सत्या०—"तो आज फिर कहाँ जाओगी ?"

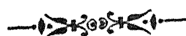
शान्ति—"इसके बाद ?"

सत्या०—"माता भवानीकी तरह तुम्हारे ललाटमें भी अग्नि है। सन्तान-सम्प्रदायको ही क्यों भस्म करोगी?"

यह कह, आशीर्वाद दे, सत्यानन्दने शान्तिको विदा किया। शान्तिने आपही-आप कहा—"अच्छा बुड्ढे! रह जा—मेरे ललाटमें आग लगी है न? अच्छा, तो मैं देखूंगी, कि तेरी माँके कपालमें आग लगी है या मेरे ?"

सच पुछो, तो सत्यानन्दका यह अभिप्राय नहीं था—उन्होंने उसकी आँखोंमें जो बिजली थी, उसीकी बात कही थी। पर क्या ऐसी बात किसी बूढ़े-बड़ेको नौजवानोंसे कहनी चाहिये।

आठवां परिच्छेद।



शान्तिको उस दिन रातभरके लिये मठमें रहनेकी आज्ञा मिली थी, इसलिये वह रहनेके लिये घर ढूंढ़ने लगी। अनेक घर खाली पड़े थे। गोवर्द्धन नामका नौकर—वह भी एक छोटा-मोटा सन्तान ही था—हाथमें चिराग लिये उसे घर दिखाता फिरता था। कोई घर शान्तिको पसन्द नहीं आया। हताश होकर गोवर्द्धन शान्तिको सत्यानन्दके पास ले चला। शान्तिने कहा—"क्यों भाई! इधरके कई घर तो तुमने दिखलाये ही नहीं ?"

गोवर्द्धनने कहा,—"वे सब घर अच्छे हैं, इसमें सन्देह नहीं; पर सबमें आदमी भरे हैं।"

शान्ति—"कैसे कैसे लोग हैं?"

गोव०—"बड़े-बड़े सेनापतिगण।"

शांति—"बड़े बड़े सेनापति कौन-कौन हैं?"

गोव०—"भवानन्द, जीवानंद, धीरानंद, ज्ञानानंद। इस आनन्दमठमें सब आनन्द-ही-आनन्द हैं।"

शांति—"चलो, मैं जरा उन घरोंको देख लूं।"

यह सुन, गोवर्द्धन पहले तो शांतिको धीरानन्दके घरमें ले गया। उस समय धीरानन्द महाभारतका द्रोणपर्व पढ़ रहे थे। अभिमन्युने किस प्रकार सप्तरथियोंके साथ युद्ध किया था यही पढ़नेमें वे डूबे हुए थे। उन्होंने कुछ भी न कहा। शान्ति भी चुपचाप वहांसे लौट आयी।

इसके बाद वह भवानन्दके घर गयी। उस समय वे ऊपरको दृष्टि किये, किसीका मुखड़ा याद कर रहे थे। किसका मुखड़ा, सो तो नहीं मालूम; पर शायद वह मुख बड़ा ही सुन्दर था। उसके काले-काले घुंघराले और सुगंधियुक्त केश कानोंतक फैली हुई भौंहोंपर आ पड़े थे। बीचमें विराजित सुंदर और त्रिकोण ललाटपर मृत्युकी भयङ्कर छाया पड़ रही थी। मानों वहां मृत्यु और मृत्युञ्जयका आपसमें द्वन्द्व युद्ध हो रहा था। आंखें बंद, भौंहें स्थिर, होंठ नीले, गाल पीले, नाक ठंढी, छाती फूली हुई और हवासे कपड़े उड़ रहे थे। इसके बाद जैसे शरत-कालका मेघ-निर्मुक्त चन्द्रमा धीरे-धीरे मेघमालाको उज्ज्वल बनाता हुआ अपना सौंदर्य विकसित करता है, जैसे प्रभात-सूर्य तरङ्गोंके आकारवाले मेघोंको क्रमसे सुनहला बनाता हुआ आप ही जगमगा उठता है; दशों दिशाओंको आलोकित करता हुआ स्थल, जल, कीट, पतङ्ग सबको प्रफुल्लित करता है, उसी तरहसे धीरे-धीरे उस मृत देहमें मानों प्राण-सञ्चार हो रहा था। अहा! कैसी शोभा है! भवानन्द बैठे बैठे यही सब सोच रहे थे। इसलिये वे भी कुछ न बोले। कल्याणीका रूप देखकर उनका हृदय कातर हो गया था, इसीलिये शांतिके रूपपर उनकी दृष्टि न पड़ी।

शांति एक दूसरे कमरेमें चली गयी। वहां पहुंचकर उसने पूछा—"यह घर किसका है?"

गोवर्द्धनने कहा—"जीवानन्द महाराजका।"

शांति—"ये कौन हैं, भाई? यहाँ तो कोई नजर ही नहीं आता।"

गोवर्द्धन—"मालूम होता है, कि वे कहीं गये हैं। अभी आते होंगे।"

शांति,—"यह घर तो सबोंसे अच्छा है।"

गोवर्द्धन—"पर इस घरमें तो आपको जगह नहीं मिल सकती।"

शांति—"क्यों?"

गोवर्द्धन—"क्योंकि यहां जीवानन्द महाराज रहते हैं।"

शांति,—"वे किसी और घरमें जा रहेंगे।"

गोवर्द्धन—"भला ऐसा भी कभी हो सकता है? जो इस घरमें रहते हैं, वे ही एक तरहसे सबके मालिक हैं। वे जो कुछ करते हैं, वही होता है।"

शान्ति—"अच्छा, तुम जाओ, मुझे यहां जगह न मिलेगी, तो पेड़की छाया तो है?"

यह कह, गोवर्द्धनको वहांसे हटाकर शान्ति उस घरके अंदर चली गयी। भीतर आ जीवानन्दके काले हरिनके चमड़ेपर आसन जमाकर बैठ गयी और दीयेको जरा तेजकर जीवानन्दकी एक पुस्तक हाथमें लेकर पढ़ने लगी।

कुछ ही देरमें वहां जीवानन्द आ पहुंचे। शान्तिको मर्दाना पोशाकमें देखकर भी वे झट उसे पहचान गये और बोले,—"यह क्या? ऐं! शान्ति?"

शान्तिने धीरे धीरे उस पुस्तकको नीचे रख दिया और जीवानन्दकी ओर देखते हुए कहा—"शान्ति किसका नाम है, जी?"

जीवानन्दको तो काठसा मार गया—उनकी बोली बन्द हो गयी। अपनेको बहुत कुछ सम्हालकर वे बोले,—"क्या तुम शांति नहीं हो ?"

शान्तिने घृणाके साथ कहा,—"नहीं, मेरा नाम नवीनानन्द गोस्वामी है।" यह कह, वह फिर पुस्तक पढ़ने लगी।

जीवानन्द बड़े जोरसे हंस पड़े, बोले,—"यह तो गिलहरी एकदम नया रङ्ग लायी है। अच्छा, तो कहो नवीनानन्दजी! तुम्हारा यहां किस लिये आना हुआ ?"

शान्तिने कहा,—"भले आदमियोंके बातचीत करनेका यह नियम है, कि पहले पहलकी देखादेखीमें बातचीत करते समय आप या जनाब वगैरह कहकर पुकारते हैं। आप देख रहे होंगे, कि मैं स्वयं भी आपके प्रति कोई अनादरसूचक शब्द मुंहसे नहीं निकालती। फिर आप क्यों मुझे तुम तुम कह रहे हैं ?"

"जो आज्ञा सरकारकी" कहकर जीवानन्दने गलेमें चादर लपेट, दोनों हाथ जोड़कर कहा,—"अब यह दास आपसे विनयके साथ यह निवेदन करता है, कि आप कृपाकर इसे यह बतला दें, कि आपका भरुईपुरसे शुभागमन किस निमित्त हुआ ?"

शान्तिने बड़ी गम्भीरतासे कहा,—"अब आपने यह व्यर्थकी तानेजनी शुरू की। इसकी तो कोई जरूरत नहीं थी। मुझे भरुईपुरका नामतक नहीं मालूम। मैंने आज यहां आकर सन्तानधर्मकी दीक्षा ग्रहण की है।"

जीवा०—"ऐं, यह तो सब चौपट हुआ देखता हूं। क्या यह सच है ?"

शान्ति—"चौपट क्यों ? आपने भी दीक्षा ली है ?"

जीवा०—"तुम स्त्री जो ठहरी।"

शान्ति—"यह क्या ? यह बात आपको कैसे मालूम हुई ?"

जीवा०—"मेरा विश्वास था, कि मेरी ब्राह्मणी स्त्री जातिकी है।"

शान्ति—"ब्राह्मणी? तो क्या आपके ब्राह्मणी भी है?"

जीवा०—"थी तो सही।"

शान्ति—"इसीसे आपको सन्देह हो रहा था, कि मैं ही आपकी ब्राह्मणी हूं?"

जीवानन्दने हाथ जोड़ और गलेमें चादर लपेट विनयपूर्वक कहा,—"हां सरकार!"

शान्ति—"यदि आपके मनमें इस प्रकार हंसीकी बातें पैदा हुआ करती हैं, तो कहिये, आपका कर्त्तव्य क्या है?"

जीवा०—"आपके कपड़े जबरदस्ती हटाकर आपके होठोंका रसपान करना ही, और क्या।"

शान्ति—"यह आपकी दुष्टबुद्धि अथवा अधिक गांजा पीनेका परिचय है। आपने दीक्षाके समय शपथ की थी, कि स्त्रियोंके साथ कभी एक आसनपर नहीं बैठेंगे। यदि आपका यह विश्वास हैं कि मैं स्त्री हूं—इस तरह रस्सीमें सांपका भ्रम बहुतोंको हुआ करता है—तो आपके लिये उचित यही है, कि अलग आसनपर बैठिये। आपको मेरे साथ बातचीत भी नहीं करनी चाहिये।"

यह कह, शान्तिने फिर पुस्तकमें मन लगाया। परास्त होकर जीवानन्दने अलग शय्या बिछायी और उसीपर शयन किया।





आनन्दमठ



तीसरा खण्ड



पहिला परिच्छेद



ईश्वरकी कृपासे ११७६ का साल समाप्त हो गया। बङ्गालकी पूरी जनसंख्याके छः आने मनुष्योंको (जो न जाने कितने करोड़ रहे होंगे) यमपुर भेजकर वह दुष्ट संवत्सर आप ही कालके गालमें चला गया। सन् ११७७ सालमें ईश्वरने दया की, पानी अच्छा बरसा, पृथ्वीने खूब अन्न उपजाये। जो लोग जीते बचे थे, उन्होंने पेटभर खानेको पाया। बहुतेरे लोग अनाहार या अल्पाहारके कारण रोगी हो गये थे। वे भरपेट ठूंस ठूंस कर खानेसे ही मर गये। पृथ्वी तो शस्यशालिनी हुई, पर गांवके गांव खाली नजर आते थे। सुनसान घरोंमें केवल चूहे डण्ड पेलते नजर आते या भूत-प्रेत फिरा करते थे। गाँव गाँवमें सैकड़ों बीघे जमीन बिना जोते-बोये ऊसर सी पड़ी रही, जिसमें जंगलसा बन गया। देशभरमें जंगलोंकी भरमार हो गयी। जहाँ लहराते हुए हरेभरे धानके खेत दिखाई देते थे, जहां असंख्य गायभैंसें चरती नजर आती थीं, जो बाग बगीचे गांवके युवक और युवतियोंकी प्रमोद-भूमि थी, वे सब स्थान क्रमशः घोर जंगल होने लगे। एक वर्ष दो वर्ष करते करते तीन वर्ष बीत गये। जंगलोंकी संख्या बढ़ती ही चली गयी। जो स्थान मनुष्योंके सुखका स्थान था, वहाँ नर-मांस–भोजी बाघ आकर हरिण आदि जानवरोंका शिकार करने लगे। जहाँ सुन्दरियोंकी टोली महावरसे रंगे हुए पैरोंकी पैजनियोंको बजाती, हमजोलियोंके साथ हंसी ठठोली करती, इतराती और बतराती जाती थीं, वहाँ रीछोंकी मांद और अड्डे बन गये हैं। जहां छोटे छोटे बच्चे बालकालमें सन्ध्या समय खिले हुए चमेलीके फूलकी तरह प्रफुल्लित होकर हृदयको तृप्त

करनेवाली किलकारियां सुनाया करते थे, वहीं अब झुण्डके झुंड मतवाले जंगली हाथी वृक्षोंकी डालें तोड़ते नजर आने लगे। जहां कभी दुर्गाजीकी पूजा हुआ करती वहां स्यारोंकी मांद हो गयी, जहां सावनमें ठाकुरजीका झूला होता था वहां आज उल्लुओंने अपना अड्डा जमा लिया। नाट्य भवनमें दिनदहाड़े काले नाग मेढ़क खोजने लगे। बंगालमें आज अन्न उपजा है तो खानेवाले नदारद हैं, बिकनेवाली चीजें पैदा हुई हैं पर कोई खरीदार नहीं है। किसानोंने खेती की, पर रुपया नहीं पाया। इसीलिये वे जमींदारको मालगुजारी न दे सके। राजाने जमींदारोंसे मालगुजारी न पाकर उनकी जमींदारियां जब्त करनी शुरू कीं, इसलिये धीरे धीरे जमींदार दरिद्र होने लगे। वसुमतीने खूब अन्न उपजाये, पर किसीको धन नहीं मिला—सबका घर धनसे छूंछा ही नजर आने लगा। लूट-खसोटके दिन आये; चोर डाकुओंने सिर उठाया, सज्जन लोग डरके मारे घरोंमें छिप रहे।

इधर सन्तान सम्प्रदायवाले नित्य चन्दन और तुलसीदलसे विष्णु भगवानके पादपद्मोंकी पूजा करते और जिसके घरमें पिस्तौल या बन्दूक मिलती, उसके घरमें घुसकर उसे छीन लाते। भवानन्दने सब किसीसे कह दिया था, कि "अगर किसी घरमें एक ओर मणि-माणिक्य और हीरा मोती हो और दूसरी ओर एक टूटी हुई बन्दूक पड़ी हो, तो सब मणि-माणिक्य और हीरा-मोती छोड़कर वह टूटी हुई बन्दूक ही ले आना।"

इसके बाद वे लोग गांव गांवमें अपने दूत भेजने लगे। वे लोग जिस किसी ग्राममें जाते, वहांके हिन्दुओंको देख देखकर कहते,—"क्यों भाई! विष्णु-पूजा करोगे?" यही कह कहकर वे २०-२५ आदमियोंका दल बांध लेते और मुसलमानोंके गांवमें जाकर उनके घरोंमें आग लगा देते थे। मुसलमान बेचारे इधर अपनी जान बचानेमें लगते, तबतक उधर सन्तान सम्प्रदायवाले उनका सर्वस्व लूट पाटकर नये विष्णु-भक्तोंको बांट देते थे।

लूटका माल पाकर जब गांववाले बड़े आनन्दित होते, तब ये लोग उन्हें विष्णु-मन्दिरमें ला, प्रतिमाके पैर छुलाकर उन्हें सन्तान धर्ममें दीक्षित कर लेते थे। लोगोंने देखा कि सन्तान होनेमें तो बड़ा लाभ है। मुसलमानी सलतनतकी अराजकता और कुशासनके कारण सब कोई मुसलमानोंसे जल उठे थे। हिन्दू धर्म लुप्त हुआ जा रहा था, इसलिये बहुतसे लोग हिन्दुत्वकी स्थापनाके लिये भी चिन्तित हो रहे थे, अतएव दिन दिन सन्तानोंकी संख्या बढ़ने लगी। एक एक दिनमें सैकड़ों और एक एक महीनेमें हजारों नये नये लोग आकर सन्तान बनने और भवानन्द तथा जीवानन्दके चरणोंमें सिर झुकाने लगे। तथा दलके दल चारों ओर मुसलमानोंको दण्ड देनेके लिये जाने लगे। वे जहां कहीं राजकर्मचारियोंको देख पाते, वहीं उनकी मरम्मत करने लगते। कभी कभी तो उनके प्राण ही ले डालते थे। जहां कहीं सरकारी खजाना पाते उसपर छापा मारते, और लूट पाट कर घर ले आते। जहां कहीं मुसलमानोंकी बस्ती मिलती, उसमें आग लगा देते और गांवके गांव जलाकर धूलमें मिला देते। राजपुरुषगण इनका दमन करनेके लिये फौज रवाना करने लगे, पर इस समय सन्तानोंका दल खूब बँधा हुआ था। उनके पास हथियार भी काफी थे और वे ठीक भी हो गये थे। उनके वीर दर्पके आगे मुसलमान ,सैनिकोंके पैर आगे नहीं बढ़ते थे। यदि कदाचित् वे आगे आते तो सन्तानगण अपने अमित बल पराक्रमसे उनपर भीषण आक्रमण करते, उनके दलको छिन्न भिन्नकर हरि हरिकी ध्वनि करते। यदि किसी सन्तान दलको मुसलमान सैनिक परास्त कर डालते, तो उसी समय उनके सम्प्रदायका दूसरा दल वहां आ पहुंचता और जीतनेवालोंके सिर धड़से जुदा कर हरि हरि कहता हुआ निकल जाता था।

इस समय परम प्रसिद्ध, भारतीय अंगरेज कुलके प्रातः सूर्य वारन हेस्टिंग्ज भारतवर्षके गवरन जनरल थे। कलकत्तेमें बैठे

बैठे लोहेकी सीकड़ तैयार कर उन्होंने सोचा कि मैं इसी सीकड़में सप्तद्वीपा और ससागरा भूमिको बांध रखूंगा। एक दिन सिंहासनपर बैठे हुए जगदीश्वरने भी 'तथास्तु' कह दिया था; पर अब वह दिन नहीं रहे। आज तो सन्तानोंकी भीषण हरि-ध्वनिको सुनकर वारन हेस्टिंग्ज़का कलेजा कांप उठा।

वारन हेस्टिंग्जने पहले फौजदारी सैन्य द्वारा विद्रोहको दबानेकी चेष्टा की, किन्तु उन सिपाहियोंका तो इन दिनों यह हाल हो रहा था कि वे यदि किसी बुढ़ियाके मुंहसे भी हरि-नाम सुन लेते तो सिरपर पैर रखकर भाग जाते थे। इसीसे लाचार होकर वारन हेस्टिंग्जने कप्तान टामस नामक एक बड़े ही चतुर सैनिककी अध्यक्षतामें कम्पनीके सिपाहियोंका एक दल विद्रोह दबानेके लिये भेजा।

कप्तान टामसने विद्रोही दमनका अत्यन्त उत्तम प्रबन्ध किया। उन्होंने राजा और जमीन्दारोंसे सिपाही मांगकर कम्पनीके सुशिक्षित, सुसज्जित और अत्यन्त बलिष्ट देशी विदेशी सैनिकोंके साथ मिला दिये। इसके बाद उस सम्मिलित सैन्यको अलग अलग टुकड़ियोंमें बांटकर उन्होंने एक एक टुकड़ीको सुयोग्य सैनिकोंके अधीन कर दिया। इसके बाद कौन सी टुकड़ी किस ओर भेजी जाय, इसका बन्दोबस्त किया। उन्होंने सब किसीसे कह दिया,—"देखो, तुम अमुक प्रदेशमें जाकर जालकी तरह फैल जावो। जहां कहीं कोई शत्रु नजर आये, उसे वहीं चींटीकी तरह मसल डालना।" कम्पनीके सिपाहियोंमेंसे कोई गांजेका दम लगाकर और कोई शराब पीकर बन्दूक लिये हुए सन्तानोंको मारने जाते, परन्तु सन्तानगण इतने असंख्य और ऐसे अजेय थे कि कप्तान टामसके सैनिक घासकी तरह कटते गये। हरि हरिकी ध्वनिसे कप्तान टामसके कान बहरे हो गये।

दूसरा परिच्छेद

—:०*०:—

उन दिनों कम्पनीकी अनेक रेशमकी कोठियां थीं। ऐसी ही एक कोठी शिवग्राममें भी थी। डनवर्थ साहब उस कोठीके मालिक थे। उस समय इन कोठियोंकी रक्षाका बड़ा अच्छा बन्दोबस्त था। इसीसे डनवर्थ साहब किसी तरह अपनी जान बचा सके, पर उन्हें अपने बाल-बच्चोंको कलकत्ते भेज देना पड़ा। सबको भेजकर वे आप सन्तानोंके उपद्रव सह रहे थे। इसी समय कप्तान टामस साहब अपनी कुछ फौजके साथ वहां पहुंचे। इस समय सन्तानोंका उत्साह देखकर बहुतसे चोर चाईं तथा डोम चमार और भुइयां नीच जाति वाले बेफिक्रोंके साथ लूट खसोट मचाने लगे थे। इन लोगोंने टामस साहबकी रसदपर भी छापा मारा। कप्तान साहबकी फौजके लिये गाड़ियों-पर बहुत सी उमदा घी, मैदा, मुर्गी और चावल आदि चीजें लदी जा रही थीं। यह देखकर डोम चमारोंके मुंहमें पानी भर आया। उन्होंने गाड़ी पर हमला कर दिया, परन्तु कप्तान टामसके सिपा-हियोंके हाथमें जो बन्दूकें थीं, उन्हींके कुन्देकी मारसे वे भाग गये। कप्तान टामसने कलकत्ते रिपोर्ट भेजी कि आज मैंने १५७ सिपा-हियोंके ही सहारे १४७०० विद्रोहियोंको परास्त कर डाला है। विद्रोहियोंमेंसे २१५३ आदमी मरे, १२५३ घायल हुए और सात कैद कर लिये गये हैं। पर केवल यही अन्तिम बात रिपोर्टभरमें सच्ची थी। कप्तान टामस, अपने मनमें ऐसा समझकर, मानों उन्होंने केनहिम या रसबाककी सी कोई बड़ी भारी लड़ाई ही जीती है, घमंडसे अकड़े हुए, मूंछोंपर ताव देते हुए, निर्भय इधर उधर घूमने लगे, साथ ही डनवर्थ साहबको उपदेश भी देने लगे

अब क्या डर है अब अपने बाल-बच्चोंको कलकत्तेसे यहीं ले आओ; विद्रोहका तो मैंने अंत ही कर दिया। डनवर्थ साहबने कहा,—"अच्छी बात है, आप यहां दस दिन और ठहर जाइये। देश थोड़ा और स्थिर हो जाय, तब मैं अपने स्त्री-पुत्र आदिको बुलवा लूंगा।" डनवर्थ साहबने बहुतसी मुर्गियां और भेड़ें पाल रखी थीं। उनके यहांका पनीर भी अच्छा होता था। तरह तरहकी जंगली चिड़ियोंका मांस उनके भोजनालयकी शोभा बढ़ाया करता था। इधर लम्बी दाढ़ीवाला बावर्ची भी मानों द्रौपदीका ही अवतार था। इसलिये कप्तान टामस बड़ी बेतकल्लुफीके साथ वहीं रहने लगे।

इधर भवानन्द मन ही मन दांत पीस रहे थे। वे यही सोच रहे थे कि कब टामस साहबका सिर काटकर द्वितीय सम्बरारिकी उपाधि धारण कर लूं। अंग्रेज लोग भारतवर्षकी भलाई करने आये हैं, उस समय संतानोंकी समझमें यह बात नहीं आती थी। समझते भी कैसे? कप्तान टामसके समान अंगरेज भी इस बातको नहीं जानते थे। उस समय यह बात विधाताके मनमें ही छिपी हुई थी। भवानन्द सोच रहे थे, "एक दिन इन असुरोंका सवंश नाश करूंगा। सबको जमा होकर यहां चले आने दो, बस उनकी जरा सी असावधानी देखते ही उनपर टूट पड़ूंगा। अभी जरा दूर ही दूर रहनेका काम है।" इसीलिये वे अपने दलबल समेत दूर ही दूर रहे। कप्तान टामस निष्कण्टक होकर द्रौपदीके गुणोंकी बानगी लेने लगे।

साहब बहादुरको शिकारका बड़ा शौक था, इसलिये वे कभी कभी शिवग्रामके पासवाले जंगलमें शिकार खेलनेके लिये जाया करते थे। एक दिन टामस साहब डनवर्थ साहबके साथ घोड़ेपर सवार हो, कई एक शिकारियोंके साथ शिकार खेलने निकले। यह तो कहना ही व्यर्थ है कि टामस साहब बड़े भारी साहसी और बलवीर्यमें अंगरेजोंमें भी अद्वितीय थे।

वह घना जंगल बाघों, भैंसों और भालुओंसे भरा हुआ होनेके कारण बड़ा भयावह था। इसलिये कुछ दूर आनेपर शिकारियोंने आगे बढ़नेसे इनकार कर दिया। वे बोले,—"बस, अब आगे भीतर जानेका रास्ता नहीं है; हमलोग तो अब आगे नहीं जा सकते।" एक बार डनवर्थ साहब इसी जंगलमें एक भयानक शेरके पंजेमें पड़ते पड़ते बच गये थे, इसलिये उन्होंने भी आगे जाना स्वीकार नहीं किया—सबकी इच्छा लौटनेकी ही थी। कप्तान टामसने कहा,—"तुम लोग न जाओगे, तो लौट जाओ, पर मैं तो अब नहीं लौटता।" यह कह, कप्तान साहब उस घोर जंगलमें घुस पड़े।

सचमुच उस जंगलमें रास्ता नहीं था। घोड़ा आगे न बढ़ सका; पर साहब घोड़ेको छोड़, कन्धेपर बन्दूक लिये अकेले ही आगे बढ़े। वे घुसे तो बाघकी खोजमें थे; पर खोजते-खोजते हैरान हो गये, तोभी कहीं बाघ न दिखाई दिया। उसके बदले उन्होंने देखा कि एक बड़े भारी पेड़के नीचे खिले हुए फूलोंवाली लताओं और छोटे छोटे पौधोंके बीचमें न जाने कौन बैठा है? वह एक नवीन संन्यासी था, जिसके रूपसे वह सारा जंगल उज्ज्वल हो रहा था। खिले हुए फूल मानों उसके स्वर्गीय शरीरके सम्पर्कसे और भी अधिक सुगन्धमय हो गये थे। कप्तान साहब भौंचक से हो रहे—पर तुरन्तही क्रोध आ गया। वे हिन्दुस्तानी बोली विचित्र तरहसे बोलते थे। उन्होंने पूछा,—"टुम कौन हाय?"

संन्यासीने कहा,—"मैं संन्यासी हूं।"

कप्तानने पूछा,—"टुम बागी है?"

संन्यासी—"यह किस जानवरका नाम है?"

कप्तान—"हम टुमको गुली मार देगा।"

संन्यासी—"मार दो।"

कप्तान मन ही मन विचार कर रहे थे, कि गोली मारूं

या न मारूं, कि इतनेमें उस संन्यासीने बिजलीकी तरह तड़पकर साहबके हाथकी बन्दूक छीन ली। इसके बाद संन्यासीने अपना रक्षावरण—चर्म खोलकर फेंक दिया और एक ही झटकेमें जटा भी हटाकर दूर कर दी। कप्तान टामसने देखा, कि एक अपूर्व सुन्दरी सामने खड़ी है। सुन्दरीने हँसते हँसते कहा,—"साहब! मैं स्त्री हूं; मैं किसीको मारती नहीं। मैं तुमसे पूछती हूँ कि हिन्दू मुसलमानोंमें झगड़ा होता है, तुम लोग क्यों बीचमें कूदते हो? अपने घर चले जाओ।"

साहब—"टुम कोन हाय?"

शान्ति—"देखते तो हो कि मैं संन्यासिनी हूं, तुम जिनके साथ लड़ाई करने आये हो, उन्हींमेंसे किसी एककी पत्नी हूं।"

साहब—"टुम हमारा घारपर चलेगा?"

शान्ति—"क्या तुम्हारी रखेली होकर?"

साहब—"औरटका माफिक रहना, लेकिन शादी नहीं होगा।"

शान्ति—"अच्छा, मैं भी तुमसे एक बात पूछती हूं, हमारे घरपर पहले एक बन्दर था पर हालमें वह मर गया। उसका पींजरा खाली पड़ा है। क्या तुम उसके पींजरेको आबाद करने चलोगे? मैं तुम्हारी कमरमें भी साँकल बांध दूँगी। हमारे बागीचेमें खूब मीठे केले फलते हैं, उन्हें भरपेट खाया करना।"

साहब—"टुम बड़ा बहादुर औरट है। टुमारा साहस देखकर हम बहुट खुशी हुआ। टुम हमारा घारपर चलो। टुमारा खाविण्ड टो लड़ाईमें मारा ही जायगा; फिर टुम क्या करेगा?"

शान्ति—"अच्छा, तो हमलोग अभीसे आपसमें एक बात तै कर रखें। युद्ध तो दो चार दिनोंमें होगा ही। यदि उस लड़ाईमें तुम जीतोगे, और मैं जीती बचूंगी, तो तुम्हारी रखेली होकर रहूँगी। पर कहीं हमारी जीत हुई, तो तुम हमारे घर आकर बन्दर बनकर पींजरेमें रहोगे और केले खाया करोगे न?"

साहब—"केला बहुत उमडा चीज होटा है। इस वखट टुमारे पास है।?"

शान्ति—"ले जा अपनी बन्दूक! ऐसो जङ्गली जातिसे बातें करना भी बेवकूफी है!"

यह कह, बन्दूक फेंककर शांति हंसती हुई चली गयी।

तीसरा परिच्छेद।



शान्ति, साहबको वहीं छोड़कर हरिणीकी भांति उछलती-कूदती जङ्गलके अन्दर न जाने कहां गायब हो गयी। थोड़ी देर बाद साहबको किसी स्त्रीके मधुरकण्ठसे निकला हुआ गीत सुनाई दिया,—

"यह यौवन जल तरङ्ग कौन रोकि राखि हैं?
हरे मुरारे! हरे मुरारे!"

फिर न जाने कहांसे सारंगीकी सुरीली तानमें भी यही गीत बज उठा,—

"यहं यौवन जल तरङ्ग कौन रोकि राखि हैं?
हरे मुरारे! हरे मुरारे!"

फिर उसी सुरमें सुर मिलाकर किसी पुरुषने भी गाया,—

"यह यौवन जल तरङ्ग कौन रोकि राखि हैं?
हरे मुरारे! हरे मुरारे!"

तीनों सुरोंने एकमें मिलकर बनकी सारी लताओंको हिला डाला। शान्ति गाती हुई चली;—

"यह यौवन जल तरङ्ग कौन रोकि राखि हैं?
हरे मुरारे! हरे मुरारे!
नदिया बिच नैया जाती है, अंधड़ पानी सह लेती हैं।
चतुर खिवैया डांड़ चलावे, नहिं क्यों पार उतरि हौं?

हरे मुरारे ! हरे मुरारे !
बांध टूटिगो बालू केरो, पूरन हुए मनोरथ मेरो,
गङ्गाधार ज्वार जब आयो, कौन रोकि तोहे राखि हैं ?
हरे मुरारे ! हरे मुरारे !"

सारंगीमें भी यही गीत बज रहा था—
"गंगाधार ज्वार जब आयो, कौन रोकि तोहे राखि हैं ?
हरे मुरारे ! हरे मुरारे !"

जहां घनघोर जङ्गल था, बाहरसे देखनेपर कहीं कुछ नहीं दिखाई देता था, शान्ति उसी ओर चली गयी। वहां शाखा-पल्लवोंके बीच छिपा हुआ छोटासा झोंपड़ा था। उसके खम्भे वगैरह डालोंके थे, छाजन पत्तोंकी, ज़मीन काठकी और गच मिट्टीकी थी। लताद्वारको हटाकर शांति उसी झोपड़ेके अन्दर घुसी। वहीं जीवानन्द बैठे हुए सारङ्गी बजा रहे थे।

शान्तिको देखकर जीवानन्दने पूछा;—"इतने दिन बाद गङ्गामें ज्वार आया है क्या ?"

शांतिने हंसकर उत्तर दिया,—"नदी नालोंको डुबाकर गंगामें ज्वार आनेपर भी कहीं पानी वेगसे चलता है ?"

जीवानन्दने उदास होकर कहा,—"देखो शांति ! एक दिन व्रतभङ्ग हो जानेके कारण मेरे प्राण तो न्यौछावर हो ही चुके हैं; क्योंकि पापका प्रायश्चित्त तो करना ही होगा। अबतक तो मैं कभीका प्रायश्चित्त कर चुका होता; पर तुम्हारे ही अनुरोधसे नहीं कर सका। पर अब देखता हूं कि बड़ी भारी लड़ाई शीघ्र ही छिड़ा चाहती है। उसी युद्धक्षेत्रमें मुझे उस पापका प्रायश्चित्त करना होगा। इन प्राणोंको निश्चय ही त्यागना पड़ेगा। मेरे करनेके दिन—"

शांतिने उन्हें आगे और कुछ नहीं कहने दिया, झटपट बोल उठी,—"मैं तुम्हारी धर्मपत्नी, सहधर्मिणी और धर्मकी संगिनी हूं। तुमने बहुत बड़ा धर्मका काम अपने सिरपर उठाया है।

उसीमें तुम्हारी सहायता करनेके लिये मैं घर छोड़कर यहां आयी हूं। दोनों जने एक साथ मिलकर धर्माचरण करेंगे, यही सोचकर मैं घर छोड़ जंगलमें आ चली हूं। मैं तुम्हारे धर्मकी वृद्धि करूंगी। धर्मपत्नी होकर तुम्हारे धर्ममें विघ्न क्यों डालूंगी? विवाह लोक, परलोक, दोनोंके लिये किया जाता है। सोचकर देखो, मेरा तुम्हारा विवाह तो इस लोकके लिये हुआ ही नहीं, केवल परलोकके लिये हुआ है। परलोकमें हमें दूना फल मिलेगा। फिर प्रायश्चित्तकी बात कैसी? तुमने कौनसा पाप किया है? तुम्हारी प्रतिज्ञा यही थी, कि किसी स्त्रीके साथ एक आसनपर न बैठोगे। अब बतलाओ, कि तुम कहां और कब मेरे साथ एक आसनपर बैठे थे। फिर प्रायश्चित्त कैसा? हाय प्रभो! तुम मेरे गुरु हो, फिर मैं तुम्हें क्या धर्म सिखलाऊंगी। तुम वीर हो, तुम्हें मैं वीरव्रत क्या सिखलाऊंगी?"

आनन्दसे गद्गद हो, जीवानन्दने कहा,—"क्यों नहीं? अभी तो तुमने मुझे सिखलाया!"

शांति प्रफुल्लित चित्तसे कहने लगी,—"और देखो, प्रभो! हमारा विवाह इस लोकके लिये भी निष्फल कैसे हुआ? तुम मुझे प्यार करते ही हो, मैं तुम्हें जीसे चाहती ही हूं, फिर इससे बढ़कर इस लोकमें और कौनसा फल चाहिये? बोलो, वन्देमातरम्।"

दोनों व्यक्ति एक स्वरसे 'वन्देमातरम्' गाने लगे।

———

चौथा परिच्छेद।



एक दिन भवानन्द गोस्वामी नगरमें गये और चौड़ी सड़क छोड़कर अंधेरी गलीमें घुसे। गलीके दोनों तरफ ऊंचे ऊंचे मकान खड़े थे। सूर्य्य भगवान् दोपहरमें भी एकाध बार ही इस

गलीके भीतर झांक लेते हैं, नहीं तो वहां बराबर अंधकारही अंधकार रहता है। उसी गलीके पासवाले एक दोतल्ले मकानमें भवानंद ठाकुर घुस पड़े। नीचेके जिस घरमें एक अधेड़ स्त्री बैठी रसोई बना रही थी, वहीं जाकर भवानंद महाप्रभु उपस्थित हुए। स्त्री अधेड़, मोटी ताजी, काली, सफेद कपड़े पहने, माथेमें चंदन लगाये, सिरपर बालोंका जूड़ा बांधे थी। हांड़ीके कोरमें भात चलानेसे कलछी ठक-ठक बोल रही थी। फर फर करके उसके सिरके बाल हवामें उड़ रहे थे, वह आप ही आप न जाने क्या बड़बड़ा रही थी और उसके चेहरेके चढ़ाव उतारके साथ साथ उसके बालोंका लहराना कुछ और शोभा दे रहा था। इसी समय भवानन्द महाप्रभु उस घरमें घुस पड़े और बोले,—"पण्डिताइनजी प्रणाम।" पण्डिताइनजी भवानन्दको देखकर जल्दी जल्दी अपने कपड़े सम्हालने लगीं। उनकी इच्छा थी कि सिरका सुहावना जूड़ा खोल डालें, पर जूठा हाथ होनेके कारण वैसा न कर सकीं। एक तो उनके वे बाल स्वभावतः ही मुलायम थे, तिसपर पूजाके समयका उनमें मालसिरीका एक फूल भटका रह गया था। उन्होंने कितना चाहा कि उसे आँचलसे छिपा लें, पर आंचलमें वह छिप न सका, कारण वे सिर्फ पांच हाथकी साड़ी पहने हुई थीं। वह पांच हाथकी साड़ी उनकी मोटी तोंदको ही ढकनेमें प्रायः ख़तम हो गयी थी, तिसपर दुःसह भार-ग्रस्त हृदय-मण्डलकी भी उसे आबरू बचानी पड़ती थी। अन्ततो गत्वा कन्धेतक पहुंचते न पहुंचते ही साड़ीने जवाब दिया। कानके पास आकर चुपकेसे कहा कि बस, अब इसके आगे मुझसे नहीं जाया जायगा। लाचार लज्जा और संकोचवश गौरी ठकुराइनने आंचलको कानके पास लाकर हाथसे पकड़ रखा और आगेसे आठ हाथकी साड़ी पहननेकी मनही मन प्रतिज्ञा करते हुए कहा,—"कौन? गुसाईंजी! आओ, आओ। मुझे प्रणाम क्यों करते हो भाई?"

भवा०—"तुम भाभीजी ठहरीं ?"

गौरी—"आदरसे जो चाहो कह लो, नहीं तो तुम ठहरे गुसाईं बाबा—साक्षात् देवता! खैर, जब प्रणाम किया ही तो मैं भी असीस देती हूं कि जियो जागो। हां, प्रणाम कर भी सकते हो; क्योंकि उमरमें मैं तुमसे बड़ी हूं।"

इस समय गौरीदेवीकी उमर भवानन्दसे २५ वर्ष अधिक होगी; परन्तु सुचतुर भवानन्दने कहा,—"यह क्या भाभी! तुम यह क्या कहती हो? तुम्हें रसीली छबीली देखकर ही भाभी कहकर पुकारता हूं। नहीं तो तुम्हें याद है या नहीं, उस बार हिसाब लगाकर देखा गया था, तो तुम मुझसे छः वर्ष छोटी निकली थीं? हम वैष्णवोंमें तो जानती ही हो कि हर तरहके लोग हैं। इसीलिये मेरी इच्छा होती है कि मठके ब्रह्मचारीजीकी आज्ञा लेकर तुम्हारे साथ सगाई कर लूं। यही कहनेके लिये मैं तुम्हारे पास आया हूं।"

गौरी—"छिः! यह भी कोई बात है? मैं ठहरी विधवा—"

भवा०—"तो क्या विधवाकी सगाई नहीं होती?"

गौरी—"अरे भाई! जाओ, जो मनमें आवे, करो। तुम लोग पंडित ठहरे। हम औरतें यह क्या जानें? खैर, कब सगाई होगी?"

भवानन्दने बड़ी मुश्किलसे अपनी हंसी रोककर कहा,—"बस एक बार उस ब्रह्मचारीसे मिलने भरकी देर है। अच्छा, यह तो कहो वह कैसी है?"

गौरी उदास हो गयी। उसने मनही मन सोचा कि मालूम होता है, सगाईकी बात यह योंही दिल्लगीके तौरपर कह रहा था! बोली,—"कैसी क्या? जैसी थी, वैसी है।"

भवा०—"तुम एक बार जाकर उसको देखो, कि कैसी है। उससे कहना कि मैं उससे मिलने आया हूं।"

यह सुन, गौरी देवी हाथकी कलछी जमीनपर रख; हाथ धो, लम्बी लम्बी डग भरती दोतल्लेपर जानेके लिये सीढ़ियां

चढ़ने लगीं। ऊपर एक कमरेमें एक फटी चटाईपर एक अपूर्व सुन्दरी बैठी थी; पर उसके सौन्दर्यपर भीषण छाया पड़ी थी। मध्याह्न कालमें, कूल-परिप्लाविनी, प्रसन्न-सलिला, विपुल-जल-कल्लोलिनी, स्रोतस्वतीके ऊपर जैसी घने बादलोंकी छाया पड़ जाती है, वैसी ही छाया पड़ी हुई थी। नदीमें तरङ्गें उठ रही थीं, तीरपर कुसुमित वृक्ष हवाके झोंकेसे हिल रहे थे, कोई कोई फूलोंके भारसे झुक रहे थे, अट्टालिकाओंकी श्रेणी भी अपनी शोभा दिखा रही थी, डांड़ोंकी चोटसे नदीका जल चञ्चल हो रहा था, दोपहरका सुहावना समय था; पर उस काली छायामें सारी शोभा-क्षीण थी। उस सुन्दरीकी भी वही दशा थी। पहलेकेसे सुन्दर चिकने और चञ्चल केश, पहलेके ही तरह प्रशान्त और उन्नत ललाटपर किसीको निराली लेखनीसे अङ्कित भौंहें, पहलेकीसी बड़ी साश्रु और काली पुतलियोंवाली आँखें—सभी हैं, पर न तो उनमें पहलेकी भांति कटाक्ष है, न चञ्चलता है, पर कुछ कुछ नम्रता है। अधरोंपर वही पहलेकीसी ललाई है; हृदय उसी तरह भावपूर्ण है, बांहें वैसी ही वनलताकी कोमलताको भी मात करनेवाली हैं, पर आज न तो वह कान्ति है, न ज्योति, न चञ्चलता और न रस, अधिक क्या वह यौवन ही अब न रहा, केवल सौन्दर्य और माधुर्य। उसमें और दो नयी बातें आ गयी हैं—धीरता और गम्भीरता। पहले इन्हें देखनेसे मालूम होता था कि यह मनुष्य लोककी अनुपम सुन्दरी हैं; पर आज देखनेसे मालूम होता है कि यह देवलोककी कोई शापग्रस्ता देवी है। चारों ओर भोजपत्रपर लिखी हुई पोथियाँ फैली हुई हैं; दीवारमें खूंटीपर सुमिरनी माला लटक रही है और जगह जगहपर जगन्नाथ, बलराम, सुभद्राका पट लगा है, कहीं कालियदमन, नव-नारी कुञ्जर, वस्त्रहरण, गोवर्द्धनधारण आदि ब्रजलीलाओंके चित्र अंकित हैं। चित्रोंके नीचे लिखा है,—"चित्र हैं हा विचित्र!" भवानन्दने उसी घरमें प्रवेश किया।

भवानन्दने पूछा,—"कल्याणी! कैसी हो? तुम्हारा शरीर तो अच्छा है न?"

कल्याणी—"आप क्या इस सवालका पूछना बन्द न करेंगे? मेरा शरीर अच्छा रहनेसे न आपकी ही कुछ भलाई है, न मेरी।"

भवा०—"जो वृक्ष रोपता है, वह उसमें नित्य जल छोड़ा करता है। उस वृक्षको पनपते देखकर उसे सुख होता है। तुम्हारे मुर्दे शरीरमें मैंने जान डाली थी, इसीलिये पूछता रहता हूं कि वह जान ज्योंकी त्यों है या नहीं?"

कल्याणी—"कहीं विषका वृक्ष भी सूखता है?"

भवानन्द—"तो क्या जीवन विष है?"

कल्याणी—"नहीं तो मैं क्यों अमृत पीकर उसका नाश करने जाती?"

भवानन्द—"मैंने कई दफे सोचा, पर साहस न हुआ कि तुमसे पूछूं कि किसने तुम्हारा जीवन विषमय कर दिया था।"

कल्याणी—"किसीने नहीं–यह जीवन तो आपही विषमय है। मेरा जीवन विषमय है, आपका जीवन विषमय है, सारे संसारका जीवन विषमय है।"

भवा०—"ठीक है कल्याणी! मेरा जीवन सचमुच विषमय है। जिस दिनसे......———हाँ, तो तुम्हारा व्याकरण पढ़ना समाप्त हो गया?"

कल्याणी—"नहीं।"

भवा०—"और कोष?"

कल्याणी—"उसे पढ़नेमें तो जी नहीं लगता।"

भवा०—"पहले तो मैंने पढ़ने लिखनेमें तुम्हारा बड़ा उत्साह देखा था, अब ऐसी अश्रद्धा क्यों हो गयी?"

कल्याणी—"जब आपकेसे पण्डित भी महापापी होते हैं तब न लिखना पढ़ना ही अच्छा है। प्रभो! मेरे स्वामीका कुछ हाल बतलाइये।"

भवा०—"तुम बारबार यह बात क्यों पूछती हो? वे तो तुम्हारे लिये मरे हुएके बराबर हैं।"

कल्याणी—"मैं उनके लिये मर गयी हूं सही; पर वे मेरे लिये कभी नहीं मर सकते।"

भवा०—"वे तुम्हारे लिये मरे तुल्य हो जायंगे, यही सोचकर तो तुमने अपनी जान दी थी। फिर बार बार वही बात तुम क्यों पूछती हो?"

कल्याणी—"मरनेसे ही क्या सम्बन्ध टूट जाता है? कहिये, वे कैसे हैं?"

भवा०—"अच्छे हैं।"

कल्याणी..."कहां हैं; पदचिह्नमें?"

भवा०—"हाँ वहीं है।"

कल्याणी—"क्या कर रहे हैं?"

भवा०—"जो करते थे, वही करते हैं। किला और हथियार तैयार करा रहे ह। उन्हींके बनाये हुए अस्त्रोंसे आजकल सहस्त्र-सहस्त्र सन्तान सज्जित हो रहे हैं। उनके प्रतापसे तोप, बन्दूक, गोला, गोली और बारूदका हमलोगोंको अभाव नहीं है। सन्तानोंमें आजकल वेही श्रेष्ठ समझे जाते हैं। वे हमलोगोंका बड़ा उपकार कर रहे हैं—दाहिने हाथ बन रहे हैं।"

कल्याणी—"मैं यदि प्राण-त्याग नहीं करती, तो वे इतना थोड़े ही कर सकते थे। जिसकी छातीमें कच्चा घड़ा बंधा होता है, वह थोड़े ही भवसागर पार हो सकता है? जिसके पैरोंमें जंजीर पड़ी होती है वह थोड़ेही दौड़ सकता है? सन्यासी, तुमने इस क्षुद्र जीवनको क्यों बचाया था?"

भवा०—"स्त्री सहधर्मिणी, पतिके धर्ममें सहायक होती है।"

कल्याणी—"छोटे छोटे धर्मोंमें। बड़े बड़े धर्मोंमें तो वह कण्टक ही प्रमाणित होती है। मैंने विषकण्टक द्वारा उनके

अधर्मका कांटा निकाल फेंका था। छिः पापी, दुराचारी, ब्रह्मचारी! तुमने मुझे मरनेसे क्यों बचाया?"

भवा०—"मैंने जो प्राण तुम्हें लौटा दिये, उन्हें मेरी ही थाती समझ लो और बोलो, तुम उन्हें मेरे हवाले कर सकती हो?"

कल्याणी—"अच्छा, यह तो कहिये, आपको मेरी सुकुमारीका कुछ हाल मालूम है वा नहीं?"

भवा०—"बहुत दिनोंसे कुछ नहीं मालूम। जीवानन्द बहुत दिनोंसे उधर गये ही नहीं।"

कल्याणी—"तो क्या आप मुझे उसका संवाद नहीं ला दे सकते? स्वामी भलेही छूट जायं; पर जीते जी कन्याको क्यों छोड़ूं? अगर इस समय सुकुमारीको पा जाऊं, तो यह जीवन कुछ सुखमय हो सकता है। पर आप मेरे लिये इतना तरद्दुद क्यों उठाने लगे?"

भवा०—"क्यों नहीं उठाऊंगा? कल्याणी! मैं तुम्हारी लड़की ला दूंगा; पर इसके बाद?"

कल्याणी—"इसके बाद क्या?"

भवा०—"स्वामी?"

कल्याणी—"उन्हें तो मैंने जान बूझकर छोड़ दिया है।"

भवा०—"यदि उनका व्रत सम्पूर्ण हो जाय?"

कल्याणी—"तब उन्हींकी होकर रहूंगी। वे क्या जानते हैं, कि मैं मरी नहीं हूं?"

भवा०—"नहीं।"

कल्याणी—"क्या आपसे उनकी देखादेखी नहीं होती?"

भवा०—"होती है।"

कल्याणी—"मेरी कुछ बात नहीं चलती?"

भवा०—"नहीं, जो स्त्री मर गयी, उससे स्वामीका नाता ही क्या रह गया?"

कल्याणी—"आप क्या कह रहे हैं?"

भवा०—तुम्हारा नया जन्म हुआ है; अब तुम फिर विवाह कर सकती हो।"

कल्याणी—"मेरी कन्याको ला दो।"

भवा०—"ला दूंगा—तुम फिर विवाह कर सकती हो?"

कल्याणी—"क्या तुम्हारे साथ?"

भवा०—"विवाह करोगी?"

कल्याणी—"क्या तुम्हारे ही साथ?"

भवा०—"यदि ऐसा ही हो?"

कल्याणी—"तो फिर सन्तानधर्म कहां जायगा?"

भवा०—"अथाह जलमें डूब जायगा।"

कल्याणी—"और परलोक?"

भवा०—"वह भी अथाह जलमें डूब जायगा।"

कल्याणी—"और यह महाव्रत?"

भवा०—"वह भी।"

कल्याणी—"किसलिये तुम इन सबको अथाह जलमें डुबानेको तैयार हो?"

भवा०—"तुम्हारे ही लिये। देखो, मनुष्य, ऋषि, सिद्ध, देवता, सबका चित्त अवश रहता है। सन्तानधर्म मेरा प्राण है सही; पर आज पहले पहल मुझे कहना पड़ता है कि तुम मेरे प्राणोंसे भी बढ़कर हो। जिस दिन मैंने तुम्हें जिलाया, उसी दिनसे तुम्हारे चरणोंका क्रीत दास हो रहा हूं। मैं नहीं जानता था कि संसारमें इतनी रूपराशि है। यदि मैं जानता कि किसी दिन ऐसी रूपराशि मेरी आँखोंतले आयगी, तो मैं कदापि सन्तानधर्म नहीं ग्रहण करता। यह धर्म इस आगमें पड़कर राख हो जाता है। मेरा धर्म जलकर राख हो चुका, सिर्फ प्राण रह गये हैं। आज चार वर्षोंसे ये प्राण भी जल रहे हैं। अब ये भी न बचेंगे। ओह! कैसी जलन है, कल्याणी! कैसी ज्वाला है! पर इसमें जलने योग्य ईन्धन अब नहीं रह

गया। प्राण निकल रहे हैं। चार सालतक सहता आया, अब नहीं सहा जाता। बोलो, तुम मेरी होगी या नहीं?"

कल्याणी—"मैंने तुम्हारे ही मुंहसे सुना था कि सन्तान-धर्मका यह नियम है कि जो इंद्रियोंपर वश नहीं रखता उसे प्राण देकर इस पापका प्रायश्चित्त करना पड़ता है। क्या यह बात ठीक है?"

भवा०—"हां, ठीक है।"

कल्याणी—"तब तो, तुम्हारे इस पापका प्रायश्चित्त मृत्यु ही है।"

भवा०—"हां, मेरा प्रायश्चित्त मृत्यु ही है।"

कल्याणी—"यदि मैं तुम्हारी मनोकामना पूर्ण कर दूं, तो तुम प्राण दे डालोगे?"

भवा०—"हां, जरूर दे डालूंगा।"

कल्याणी—"और यदि नहीं पूर्ण करूं तो?"

भवा०—"यदि नहीं पूर्ण करो तो भी मुझे मरकर इस पापका प्रायश्चित्त करना ही पड़ेगा; क्योंकि मेरा चित्त इंद्रियोंका दास हो गया है।"

कल्याणी—"मैं तुम्हारी मनोकामना पूर्ण नहीं करूंगी। बोलो, तुम कब मरोगे?"

भवा०—"आगामी युद्धमें।"

कल्याणी—"बस तो अब यहांसे चले जाओ। बोलो, मेरी कन्या भेज दोगे या नहीं?"

भवानन्दने आंखोंमें आंसू भरकर कहा,—"ला दूंगा। क्या मेरे मर जानेपर मुझे स्मरण रखोगी?"

कल्याणीने कहा—"रखूंगी, तुम्हें व्रतच्युत, अधर्मी समझकर याद किया करूंगी।"

भवानन्द चले गये। कल्याणी पुस्तक पढ़ने लगी।

पांचवां परिच्छेद

भवानंद सोचते विचारते मठकी ओर चले। जाते ही जाते रात हो गयी। वे अकेले थे। अकेले ही जङ्गलमें घुसे। वनमें घुसनेपर उन्होंने देखा कि कोई उनके आगे आगे चला जा रहा है। भवानंदने पूछा,--"कौन जा रहा है?"

आगे जानेवालेने कहा--"अगर तुम्हें पूछना आता, तो ठीकसे जवाब भी देता। यही समझ लो, कि मैं पथिक हूं।"

भवा०--"वन्दे।"

आगे जानेवाला बोला—"मातरम्।"

भवा०—"मैं हूं, भवानंद गोस्वामी।"

आगे जानेवाला—"मैं भी धीरानन्द हूं।"

भवा०—"कहां गये थे, धीरानन्द?"

धीरा०—"आपहीकी खोजमें।"

भवा०—"क्यों? किसलिये?"

धीरा०—"एक बात कहनी थी।"

भवा०—"कौनसी बात?"

धीरा०—"एकांतमें कहनेकी बात है।"

भवा०—"यहीं कहो न, यहां तो और कोई नहीं है।"

धीरा०—"आप नगरमें गये थे?"

भवा०—"हां"

धीरा०—"गौरी देवीके घरपर?"

भवा०—"तुम भी गये थे क्या?"

धीरा०—"वहां एक बड़ी ही सुन्दरी युवती रहती है।"

भवानन्द कुछ आश्चर्यमें पड़ गये, साथ ही कुछ डर भी गये बोले,—"यह कैसी बातें कर रहे हो?"

धीरा०—"आपने उससे मुलाकात की थी न?"

भवा०—"फिर क्या हुआ?"

धीरा०—"आप उसपर अतिशय अनुरक्त हो रहे हैं।"

भवा०—(कुछ सोचकर) "धीरानन्द! तुमने इतनी खोज-ढूंढ़ किसलिये की? देखो, धीरानन्द! तुम जो कुछ कह रहे हो, सब सच है। पर यह तो कहो, यह बात तुम्हारे सिवा और भी किसीको मालूम है?"

धीरा०—"और कोई नहीं जानता।"

भवा०—"तब यदि मैं तुम्हारी जान ले लूं, तो बदनामीसे बच जा सकता हूं।"

धीरा०—"हां"

भवा०—"तब आओ, इसी निर्जनमें हम दोनों युद्ध करें। या तो मैं तुम्हें मारकर निष्कण्टक हो जाऊंगा या तुम मुझे मारकर मेरी सारी जलन मिटा दोगे। हथियार पास है?"

धीरा०—"है-खाली हाथ भला कौन तुम्हारे साथ ऐसी बढ़ बढ़कर बातें करता? यदि तुम युद्ध ही करना चाहते हो, तो आओ, मैं अवश्य ही युद्ध करूंगा। एक सन्तानका दूसरे संतानसे विरोध करना अनुचित है; किन्तु आत्मरक्षाके लिये किसीसे विरोध करना बुरा नहीं है। पर मैं जो सब बातें कहनेके लिये तुम्हें ढूंढ रहा था, उन्हें सुनकर लड़ते; तो ठीक था।"

भवा०—"हर्ज ही क्या है? कह डालो।"

भवानन्दने तलवार निकालकर धीरानन्दके कन्धेपर रखी। धीरानन्द टससे मस न हुए।

धीरा०—"मैं यही कह रहा था कि तुम कल्याणीसे विवाह कर लो।"

भवा—"वह कल्याणी ही है, यह भी जानते हो?"

धीरा०—"हां, तो तुम विवाह क्यों नहीं कर लेते?"

भवा—"उसका स्वामी मौजूद है।"

धीरा०—"वैष्णवोंमें इस तरहका विवाह होता है।"

भवा०—"ऐसा मुंड़े हुए सन्यासियोंमें होता है, सन्तानोंमें नहीं। सन्तानोंको तो विवाह करना ही नहीं चाहिये।"

धीरा०—"क्या सनातनधर्म छोड़ नहीं सकते? तुम्हारे तो प्राण निकले जा रहे हैं। छिः! छिः! यह क्या कर डाला? मेरा कन्धा कट गया!"

सचमुच धीरानन्दके कन्धेसे खून जारी हो रहा था।

भवा०—"तुम किस मतलबसे मुझे धर्मके विरुद्ध सलाह देने आये हो? इसमें अवश्य ही तुम्हारा कोई स्वार्थ है।"

धीरा०—"वह भी कहता हूं; पर जरा तलवार हटा लो, सब कुछ कह दूंगा। इस सन्तानधर्मके मारे मैं तो हैरान हो गया। मैं तो अब इसे छोड़कर स्त्री-पुत्रके साथ दिन बितानेके लिये अधीर हो रहा हूं। मैं अब इसे छोड़ूंगा। परन्तु मेरा घर जाकर रहना भी मुश्किल है। सभी मुझे विद्रोही जानते हैं। जहां घर जाकर रहने लगा कि झट राजपुरुषगण आकर मेरा सिर उतार ले जायंगे। नहीं तो सन्तानगण ही मुझे विश्वास-घातक समझकर मार डालेंगे। इसलिये मैं चाहता हूं कि तुम्हें भी अपने ही रास्तेपर ले चलूं।"

भवा०—"क्यों? मुझे ही क्यों?"

धीरा०—"यही तो असल मतलबकी बात है। सभी सन्तान-गण तुम्हारी आज्ञा मानते हैं। इन दिनों सत्यानन्द यहां हैं ही नहीं, तुम्हीं सबके सिरधरू हो। तुम इस सेनाको लेकर युद्ध करोगे, तो तुम्हारी जीत अवश्य होगी। युद्ध जय होनेपर तुम अपने ही नामसे राज्यस्थापन कर लेना। सेना तुम्हारे वश है ही। तुम राजा बनो, कल्याणी तुम्हारी पटरानी बने, मैं तुम्हारा अनुचर बनकर स्त्री पुत्रका मुंह देखते हुए दिन बिताऊं और तुम्हें आशीर्वाद देता रहूं, यही मेरी इच्छा है। चाहे सन्तानधर्म अगाध जलमें डूब जाय, इसकी मुझे परवाह नहीं।"

यह सुन, भवानन्दने धीरानन्दके कन्धेपरसे तलवार हटा

ली और बोले,—"धीरानन्द! तुम युद्ध करो। मैं तुम्हें मार डालूंगा। मैं इन्द्रियोंका दास होकर भले ही रहूं; पर विश्वास-घातक होकर नहीं रह सकता। तुम मुझे विश्वासघातक बनने-की सलाह दे रहे हो और आप भी विश्वासघातक हो रहे हो, इसलिये तुम्हें मार डालनेसे मुझे ब्रह्महत्याका पाप नहीं लगेगा। मैं तुम्हें जरूर मार डालूंगा।"

बात पूरी होते न होते धीरानन्द बेतहाशा भाग चला। भवा-नन्दने उसका पीछा नहीं किया। वे कुछ देरतक अनमनेसे रहे, पीछे उसे बहुत ढूँढ़ा; पर कहीं पता न लगा।

छठा परिच्छेद

मठमें न जाकर भवानन्द घने जङ्गलमें चले गये। उस जंगल-में एक पुरानी इमारत भग्नावशेष अवस्थामें पड़ी थी। टूटी-फूटी ईंटोंके ढेरपर जङ्गली लताएं और पौधे बहुतायतसे उग गये थे। वहां असंख्य सर्प रहते थे। उस खँडहरके अन्दर कुछ साफ सुथरी और साबित एक कोठरी थी। भवानन्द वहीं जाकर बैठ गये और सोचने लगे।

घोर अंधेरी रात है। उसपर लम्बाचौड़ा और घना जङ्गल, जिसमें आदमीका पूत भी नहीं और वह वृक्ष-लताओंके मारे ऐसा बीहड़ हो रहा है, कि बेचारे जङ्गली पशु भी उसके अन्दर जानेका रास्ता नहीं पाते। वह वन अतिविशाल जनशून्य, अन्धकार, दुर्भेद्य और नीरव है। रह रहकर केवल बाघका गरजना अथवा जंगली पशुओंका भूख या डरसे तड़पना और चीत्कार सुनायी पड़ जाता है। कभी कभी किसी बड़े पक्षीके पंख फड़फड़ानेका शब्द सुनाई देता है और कभी कभी आपसमें

एक दूसरेको मारनेवाले या खा जानेवाले जानवरोंकी दौड़-धूप-का शब्द सुनाई देता है। उस निर्जन, अन्धकारपूर्ण खँडहरमें अकेले भवानन्द बैठे हैं। उनके लिये पृथ्वी मानों रही नहीं गयी। अथवा केवल उपादानमयी हो रही है। उस निविड़ अन्धकारमें भवानन्द हथेलीपर सिर रखे सोच रहे हैं—वे ऐसी प्रगाढ़ चिंतामें निमग्न हो रहे हैं, कि न तो उनकी देह हिलती है, न जोर जोरसे सांस चलती है, न किसी बातका भय मालूम होता है। वे मन-ही-मन कह रहे हैं,—"जो होनेवाला है, वह तो होकर ही रहेगा। मैं भागीरथीकी जलतरंगके पास आकर भी छोटेसे हाथीके बच्चेकी तरह इन्द्रियस्रोतमें डूब मरा, इसीका बड़ा भारी दुःख रहा। एक क्षणमें यह देह मिट्टीमें मिल जा सकती है। देहका ध्वंस होते ही इन्द्रियोंका ध्वंस हो जायेगा। फिर मैं इन्द्रियोंके वशमें क्यों गया? मेरा मरना ही ठीक है। धर्म-त्यागी कहलाकर जीना! राम राम! मैं तो अब मरूंगाही।"

इसी समय ऊपरसे उल्लू बोल उठा। भवानन्द और जोरसे कह उठे—"ओह! यह कैसा शब्द है! कानोंको ऐसा लगा, मानों यम मुझे पुकार रहा है। मैं नहीं जानता, किसने यह शब्द किया; किसने मुझे पुकारा, किसने मुझे यह उपदेश दिया, किसने मुझे मरनेको कहा। पुण्यमयी अनन्ते! तुम शब्दमयी हो; पर तुम्हारे शब्दका मर्म तो मैं समझ नहीं सकता। मुझे धर्ममें मति दो, पापसे दूर करो। हे गुरुदेव! ऐसा आशीर्वाद करो, जिसमें धर्ममें मेरी मति सर्वदा बनी रहे।"

इसी समय उस भीषण वनमें अत्यन्त मधुर, गम्भीर और मर्मभेदी मनुष्य-कण्ठ सुनाई पड़ा। मानों किसीने कहा,—"मैं आशीर्वाद करता हूं, कि तुम्हारी मति धर्ममें अविचल भावसे बनी रहे।"

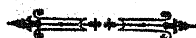
भवानन्दके शरीरके रोंगटे खड़े हो गये। यह क्या? यह तो

गुरुदेवका ही कण्ठ-स्वर है! बोले,—"महाराज! आप कहाँ हैं? आइये, आकर इस दासको दर्शन दीजिये।"

पर न तो किसीने दर्शन दिये, न उत्तर दिया। भवानन्दने बार बार पुकारा; पर कोई न बोला। उन्होंने इधर उधर बहुत ढूंढ़ा; पर कहीं किसीको न पाया।

रात बीती, प्रभात हुआ और प्रातःकालके सूर्य उदित होकर जंगली पेड़-पौधोंकी हरी-हरी पत्तियोंपर अपनी किरणें फैलाने लगे, तब भवानन्द वहांसे चलकर मठमें पहुंचे। उस समय उनके कानोंमें "हरे मुरारे! हरे मुरारे!" की ध्वनि सुनाई पड़ी। सुनते ही वे पहचान गये कि यह सत्यानन्दका कण्ठस्वर है। वे समझ गये, कि प्रभु लौट आये हैं।

सातवां परिच्छेद



जीवानन्दके कुटीसे बाहर चले जानेपर शांति फिर सारंगी-की सुरीली ध्वनिके साथ अपना मीठा गला मिलाकर गाने लगी—

"प्रलयपयोधिजले धृतवानसि वेदं
विहितवहित्रचरित्रमखेदम्।
केशव धृत मीन शरीर,
जय जगदीश हरे!"

गोस्वामी जयदेव विरचित राग, ताल, लययुक्त स्तोत्र; शान्तिदेवीके कण्ठसे निकलकर उस अनन्त काननकी अनन्त नीरवताको भेदकर वर्षाकालकी उमड़ी हुई नदीकी मलयानिलसे चञ्चल की हुई तरङ्गोंके समान मधुर मालूम होने लगा, तब उसने फिर गाया—

"निन्दसि यज्ञविधेरहह श्रुतिजातम्,
सदय हृदय दर्शित पशुघातम्,
केशव धृत बुद्ध-शरीर,
जय जगदीश हरे!"

उसी समय बाहरसे न जाने किसने मेघ-गर्जनकी तरह बड़े ही गम्भीर स्वरसे गाया—

"म्लेच्छनिवहनिधने कलयसि करवालम्।
धूमकेतुमिव किमपि करालम्॥
केशव धृत कल्कि शरीर,
जय जगदीश हरे!"

शान्तिने भक्तिभावसे सिर झुकाकर सत्यानन्दके पैरोंकी धूलि सिर चढ़ायी; बोली—"प्रभो! मेरे बड़े भाग्य जो आज आपके चरणकमल यहांतक आये। आज्ञा कीजिये मुझे क्या करना होगा।"

यह कह, फिर सारङ्गीका सुर मिलाकर उसने गाया,—"तव चरणप्रणाता वयमिति भावय, कुरु कुशलं प्रणतेषु।"

सत्यानन्दने कहा,—"देवि! तुम्हारी कुशल ही होगी।"

शान्ति०—"सो कैसे महाराज? आपकी आज्ञा तो मेरे वैधव्यके हेतु है।"

सत्या०—"पहले मैं तुम्हें पहचानता नहीं था। बेटी! मैं रस्सीका ज़ोर आजमाये विना ही उसे खींच रहा था। तुम्हारा ज्ञान मुझसे कहीं बढ़ा हुआ है। अब तुम जो उपाय अच्छा समझो, करो। जीवानन्दसे यह मत कहना कि मैं सब कुछ जान गया हूं। तुम्हारे लिये वे अपनी जान बचानेकी चेष्टा करेंगे। अबतक बचाते भी रहे हैं। बस, इसीसे मेरा काम हो जायगा।"

यह सुनते ही उन नील उत्फुल्ल लोचनोंमें आषाढ़ मासमें चमकनेवाली बिजलीकी तरह क्रोधाग्नि पैदा हो आयी। शान्तिने कहा—"यह क्या महाराज! आप यह क्या कह रहे हैं? मैं

और मेरे स्वामी एकप्राण दो-शरीर हैं। अभी आपसे मेरी जो जो बातें हुई हैं, वह सब मैं उनसे कह दूंगी। उन्हें मरना होगा तो वे मरेंगे ही; इसमें हर्ज ही कौन-सा है? मैं भी तो उनके साथ-ही-साथ मरूंगी। उनके लिये स्वर्गका द्वार खुला है, तो क्या मेरे लिये बन्द है?"

ब्रह्मचारीने कहा—"मैं आजतक किसीसे हारा नहीं था। आज पहले पहल तुमसे हारा। मां! मैं तुम्हारा पुत्र हूं। सन्तान-पर दया करो, जीवानन्दको बचाओ, अपनी प्राणरक्षा करो, इसीसे मेरा कार्योद्धार हो जायगा।"

फिर बिजली चमक उठी। शान्तिने कहा—"मेरे स्वामीका धर्म मेरे हाथमें है। उन्हें दूसरा कौन धर्मसे हटा सकता है? इस लोकमें स्त्रीके लिये पति देवता है; परन्तु परलोकमें धर्म ही सबका देवता है। मेरे लिये मेरे पति बड़े हैं, उनकी अपेक्षा मेरा धर्म बड़ा है; और उससे भी मेरे स्वामीका धर्म बड़ा है। अपना धर्म मैं जिस दिन चाहूं छोड़ सकती हूं, पर अपने स्वामी-का धर्म मैं कैसे छोड़ा दूंगी? महाराज! आपकी बात मानकर यदि मेरे स्वामी प्राण देनेको तैयार हों, तो मैं उन्हें नहीं रोकूंगी।"

यह सुन ब्रह्मचारीने लम्बी सांस लेकर कहा—"मां! इस कठोर व्रतमें बलिदान करना पड़ता है। हम सबको इसपर बलि हो जाना पड़ेगा। मैं मरूंगा, जीवानन्द मरेंगे, भवानन्द मरेंगे, सभी मरेंगे। मां! मुझे तो ऐसा मालूम पड़ता है कि तुम भी मरोगी। किन्तु देखो, काम करके मरना अच्छा होता है। विना काम किये मरना क्या अच्छा होगा? मैं तो केवल जन्मभूमिको ही मां समझता हूं; और किसीको मैं मां नहीं कहता। क्योंकि इस सजल-सफल धरणीके सिवा हमारी और कोई माता हो ही नहीं सकती। उसके सिवा मैंने आज केवल तुम्हींको मां कहकर पुकारा है। मां हो तो सन्तानकी भलाई करो। ऐसा काम

करो जिससे कार्योद्धार हो। जीवानन्दके प्राण बचाओ। अपनी भी प्राणरक्षा करो।"

यह कह सत्यानन्द "हरे मुरारे मधुकैटभारे" गाते हुए चले गये।

आठवां परिच्छेद

धीरे धीरे सन्तान-सम्प्रदायवालोंमें यह संवाद फैल गया, कि सत्यानन्द लौट आये हैं और उन्होंने सन्तानोंको कुछ आदेश देनेके लिये बुलाया है। बस, सन्तानोंके दल-के-दल आकर इकट्ठे होने लगे। चांदनी रातमें, नदीकी रेतीली भूमिके पास घने जंगलमें, जहां आम, कटहल, ताड़, इमली, पीपल, बेल, बड़ और सेमल आदिके हजारों वृक्ष लगे हुए थे, वहीं दस हजार सन्तान आकर जमा हुए। एक दूसरेके मुंहसे सत्यानन्दके आनेकी बात सुनकर ये लोग महा कोलाहल करने लगे। सत्यानन्द किस लिये और कहां गये हुए थे, यह सबको नहीं मालूम था। अफवाह थी कि वे सन्तानोंके मंगलकी कामनासे हिमालयपर तपस्या करने गये हुए हैं। आज सभी आपसमें इसकी चर्चा कर रहे हैं कि—"मालूम होता है, महाराजकी तपस्या सिद्ध हो गयी। अब राज्य हमारा हो जायगा।"

उस समय बड़ा शोरगुल मचा। कोई चिल्ला-चिल्लाकर कहने लगा—"मारो, मारो इन मुसलमानोंको।" कोई कहने लगा—"जय, महाराजकी जय!" कोई "वन्देमातरम्" गीत गाने लगा। कोई कहता—"भाई! क्या कोई ऐसा भी दिन आयेगा, जब हम तुच्छ बङ्गाली भी रणक्षेत्रमें प्राणत्याग करेंगे,"

कोई कहता—"क्या वह दिन देखना भी नसीब होगा, कि हम मसजिदें गिराकर उनपर राधामाधवके मन्दिर उठायेंगे?" कोई कहता—"भाई! कब वह दिन आयेगा, जब हम अपना धन आप ही भोगेंगे?"

दस हजार मनुष्योंके कण्ठसे निकला हुआ कलरव, मन्द-मन्द हवाके वेगसे चलायमान वृक्षके पत्तोंके मरमर शब्द, बालुकामयी तरंगिणीका मृदु कल-कल शब्द, नीले आसमानके चन्द्र-तारे, स्वच्छ मेघोंके समूह, हरी-भरी भूमिपर हरा-भरा कानन, नदीका स्वच्छ जल, उजले रंगकी रेत, विकसित कुसुम-राशि और सबके चित्तको प्रसन्न करनेवाला बीच-बीचमें होनेवाला 'वन्देमातरम्' गान—क्या ही मनोहर दृश्य था!

ऐसे ही समय सत्यानन्द उस सन्तान-मण्डलीके बीचमें आ खड़े हुए। उस समय उन दस हजार सन्तानोंके मस्तक वृक्षोंके बीचसे छन-छनकर आनेवाली चन्द्र-किरणोंके पड़नेसे हरी-हरी घासोंवाली जमीनकी तरह मालूम पड़ने लगे। आंखोंमें आंसूभरे, दोनों हाथ ऊपर उठाये सत्यानन्दने बड़े ऊंचे स्वरसे कहा—"शंख, चक्र, गदा, पद्मधारी, वनमाली, वैकुण्ठनाथ, केशीसंहारक, मधुमुरनरकमर्दन, लोकपालक तुम्हारा मंगल करें। वे ही तुम्हारी भुजाओंमें बल दें, मनमें भक्ति, धर्ममें मति दें। एक बार सब लोग प्रेमसे उनकी महिमाका गीत गाओ। यह सुनते ही हजारों कण्ठोंसे उच्चस्वरमें यह संगीत निकल पड़ा।

"जय जगदीश हरे!
प्रलय पयोधि जले धृतवानसि वेदं,
विहितवहित्रचरित्रमखेदम्,
केशव धृत मीन शरीर,
जय जगदीश हरे!"

फिर सबको आशीर्वाद देते हुए सत्यानन्दने कहा—"सन्तानगण! आज मैं तुम लोगोंसे एक जरूरी बात कहना चाहता हूं।

टामस नामक एक विधर्मी दुष्टने बहुतसे सन्तानोंको मार डाला है। आज रातको तुम सब उसे सैन्य-समेत मारकर ढेर कर दो। जगदीश्वरकी यही आज्ञा है; बोलो, तुम लोग क्या कहते हो?"

भीषण हरि-ध्वनिसे सारा जङ्गल गूंज उठा—"अभी मार कर ढेर कर देंगे। चलिये, बतलाइये, वे सब कहां हैं!" "मारो, मारो! अभी दुश्मनोंको मार गिराओ" इत्यादि शब्द दूरके पर्वतोंमें प्रतिध्वनित होने लगे।

तब सत्यानन्दने कहा—"इसके लिये हमलोगोंको थोड़ा धैर्य रखना होगा। शत्रुओंके पास तोपें हैं। जबतक अपने पास भी तोपें न हों, तबतक उनसे युद्ध नहीं किया जा सकता। विशेषतया वे सब वीर-जातिके हैं। पद-चिह्नसे १७ तोपें आ रही हैं। उनके आ जानेपर हमलोग युद्ध-यात्रा करेंगे। यह देखो सवेरा हो रहा है। चार घड़ी दिन चढ़ते-चढ़ते—अरे, यह क्या?—धायं धायं धायं।"

अकस्मात् उस जंगलमें चारों ओरसे तोप छूटनेकी आवाज़ें आने लगीं। तोपें अंगरेजोंकी थीं। जालमें फंसी हुई मछलियोंकी तरह कप्तान टामसने सन्तान-सम्प्रदायको उस जङ्गलमें घेरकर मार डालनेका विचार किया था।

— —

नवां परिच्छेद



अँगरेजोंकी तोपें "धायं धायं" करके गरज उठीं। वह शब्द उस विशाल काननको कंपाता हुआ गूंज उठा, नदीके किनारे-किनारे चलकर वह धायं-धायं शब्द दूरस्थ आकाश-प्रान्तसे टकरा उठा। नदीके उस पार दूरस्थ काननमें प्रवेशकर वही ध्वनि फिर 'धायं धायं' कर उठी।

सत्यानन्दने कहा—"तुम लोग जाकर देखो, कि ये किसकी तोपें छूट रही हैं।" यह सुन; कई व्यक्ति घोड़ेपर सवार हो, अनुसन्धान करने चले; पर वे जंगलसे बाहर निकल कुछ ही दूर गये होंगे, कि उनपर सावनकी धाराकी तरह गोले बरसने लगे। बस, सबके सब घोड़े समेत वहीं ढेर हो गये।

सत्यानन्दने दूर-ही-से यह दृश्य देखा। उन्होंने कहा—"वृक्षकी ऊँची डालपर चढ़ कर देखना चाहिये, कि क्या बात है।"

उनके कहनेके पहलेसे ही जीवानन्द वृक्षपर चढ़कर सवेरेकी सूर्यकिरणोंका आनन्द ले रहे थे। वे ऊपर-ही-से चिल्लाकर बोले—"तोपें अगरेजोंकी हैं।"

सत्यानन्दने पूछा—"सब पैदल हैं या घुड़सवार?"

जीवानन्द—"दोनों ही।"

सत्या०—"कितने हैं?"

जीवा०—"मैं कुछ अनुमान नहीं कर सकता। अभीतक वे लोग धीरे-धीरे जंगलकी आड़से बाहर निकलते ही जाते हैं।"

सत्या०—"गोरे भी हैं या सब देशी ही सिपाही हैं?"

जीवा०—"गोरे भी हैं।"

तब सत्यानन्दने जीवानन्दसे कहा—"अच्छा, तुम नीचे उतरो।" जीवानन्द पेड़से नीचे उतर पड़े।

सत्यानन्दने कहा—"इस समय दस हजार सन्तान यहां उपस्थित हैं। अब इनकी सहायतासे तुम जो कुछ कर सको, कर दिखाओ। आजके लिये मैंने तुम्हें ही सेनापति बनाया।"

जीवानन्द हथियार बाँधे लपककर एक घोड़ेपर सवार हो गये। उन्होंने एक बार आंखोंके इशारेसे नवीनानन्द गोस्वामीसे न जाने कौन-सी बात कही, कोई इस इशारेको न समझ सका। नवीनानन्दने भी इशारेसे ही उसका जवाब दिया, पर इस इशारेको भी कोई न समझ सका। केवल उन्हीं दोनों आदमियोंने

अपने मन-ही-मन समझ लिया, कि यही देखादेखी शायद अन्तिम है, अब फिर इस जीवनमें देखादेखी न होगी। नवीनानन्दने अपनी दाहिनी भुजा ऊपर उठाये हुए सबसे कहा—"भाइयो! बस, अब इस समय केवल 'जय जगदीश हरे' गाओ।" फिर क्या था? एक साथ ही दस हजार सन्तान सुरमें सुर मिलाये, नदी, कानन और आकाशको प्रतिध्वनित करते, तोपोंकी आवाजको डुबाते हुए, हजारों भुजायें ऊपर उठाये गाने लगे:—

"जय जगदीश हरे!
म्लेच्छनिवहनिधने कलयसि करवालम्।"

इसी समय अँगरेजोंकी तोपोंसे छूट-छूटकर गोले उस जंगलमें जमा हुए सन्तानोंपर पड़ने लगे। किसीका सिर उड़ गया, किसीकी बाँह कट गयी, किसीका कलेजा छिद गया—लोग धरती चूमने लगे, पर तोभी किसीने गाना बन्द नहीं किया। सभी 'जय जगदीश हरे!' गाते रहे। गीत समाप्त होनेपर सबके सब एक साथ ही चुप हो गये। वह घनघोर जङ्गल, वह नदीकी रेत, वह अनन्त निर्जन स्थान एकबारगी निस्तब्ध हो गया, केवल वही तोपोंकी अत्यन्त भयानक गर्जन और दूरसे सुनायी पड़नेवाली गोरोंके हथियारोंकी झनझनाहट और पैरोंकी आहट सुनायी देती थी।

तब सत्यानन्दने उस गहरे सन्नाटेको तोड़ते हुए ऊँचे स्वरमें कहा—"जगत्के स्वामी हरिने तुम लोगोंपर कृपा की। बोलो, तोपें कितनी दूरपर हैं?"

ऊपरसे किसीने कहा—"इस जंगलके बहुत ही पास। एक छोटेसे मैदानके उस पार।"

सत्यानन्दने पूछा,—"तुम कौन हो?"

ऊपरसे जवाब मिला—"मैं हूं नवीनानन्द।" तब सत्यानन्दने कहा—"तुम लोग दस हजार सन्तान हो। तुम्हारी जय आज अवश्य होगी। बस जाओ, जाकर उनकी तोपें छीन लो।"

यह सुन, सबसे आगे घोड़ेपर सवार जीवानन्दने कहा—"चलो, आओ।"

बस, वे दसों हजार सन्तान, कोई पैदल और कोई घोड़े पर सवार हो, जीवानन्दके पीछे-पीछे चले। पैदल चलनेवालोंके कन्धे-पर बन्दूक, कमरमें तलवार और हाथमें भाला था। जंगलसे बाहर निकलते ही लगातार उनपर गोले बरसने लगे, जिससे वे छिन्न-भिन्न होने लगे। अनेक सन्तान तो बिना लड़े-भिड़े ही मारे गये। एकने जीवानन्दसे कहा—"जीवानन्द! व्यर्थ इतने आदमियोंकी जानें लेनेसे क्या लाभ है?"

जीवानन्दने घूमकर देखा कि भवानन्द हैं। जीवानन्दने कहा—"तुम्हीं कहो, मैं क्या करूँ?"

भवा०—"जंगलके भीतर, पेड़ोंके झुरमुटमें छिपकर, हम अपनी जान भी बचा सकते हैं और बहुत देरतक युद्ध भी कर सकते हैं। नहीं तो सरपट मैदानमें बिना तोपके ये सन्तान तोपोंके सामने घड़ीभर भी न ठहर सकेंगे।"

जीवा०—"तुम्हारा कहना बहुत ठीक है, पर प्रभुकी आज्ञा है कि तोपें छीन लो। इसलिये हमलोग तोपें छीननेके लिये अवश्य ही आगे बढ़ेंगे।"

भवा०—"भला किसका सामर्थ्य है, जो उनसे तोपें छीन लेगा? खैर, यदि जाना ही है तो तुम चुपचाप बैठो। मैं ही जाता हूं।"

जीवा०—"नहीं भवानन्द! यह नहीं होनेका। आज मेरे मरनेका दिन है।"

भवा०—"नहीं, आज मेरे मरनेका दिन है।"

जीवा—"मुझे तो प्रायश्चित्त करना है।"

भवा०—"नहीं, नहीं, तुम्हें तो पाप छू भी नहीं गया, तुम्हारा प्रायश्चित्त कैसा? मेरा चित्त कलुषित है। मुझे ही मरने दो। तुम रहो, मैं जाता हूं।"

जीवा०—"भवानन्द! तुमने क्या पाप किया है, यह तो मैं नहीं जानता; पर हाँ, इतना जानता हूं कि तुम्हारे जीते रहनेसे सन्तानोंका कार्य सिद्ध हो जायगा। मैं चलता हूं।"

भवानन्द कुछ देर चुप रहे। अन्तमें बोले। "यदि मरनेका प्रयोजन होगा तो आज मैं ही मरूंगा, नहीं तो जिस दिन प्रयोजन होगा उसी दिन मरूंगा। मृत्युके लिये समय-कुसमयका विचार कैसा?"

जीवा०—"तब आओ, चले आओ।"

इसके बाद भवानन्द उसके आगे चले आये। उस समय ढेर-के-ढेर गोले पड़कर सन्तानोंके सैन्यका संहार कर रहे थे। इससे लोग भागने लगे, कहीं औंधे सीधे गिरने लगे, कहीं शत्रुओं-के बन्दूकधारी सिपाहियोंने अपने अचूक निशानेसे ढेर-के-ढेर सन्तानोंको मारकर जमीनमें गिरा दिया। इसी समय भवा-नन्दने कहा—"अब तो सन्तानोंको इस तरङ्गमें कूदना ही पड़ेगा। बोलो, भाइयो! कौन-कौन कूदनेको तैयार हैं? गाओ, वन्देमात-रम्।" उस समय ऊंचे कण्ठसे मेघमल्लार रागमें सारे सन्तान तोपोंकी आवाजके तालपर "वन्देमातरम्" गान गाने लगे।

दसवां परिच्छेद



वे दसों हजार सन्तान वन्देमातरम् गान गाते, भाले ऊपर उठाये हुए बड़ी तेजीके साथ तोपोंके मोहड़ेकी ओर चल पड़े। लगातार गोले बरसनेसे सन्तान-सेना खंडखंड, विदीर्ण, और अत्यन्त विशृङ्खल हो गयी, तोभी लौटी नहीं। उसी समय कप्तान टामसकी आज्ञाके अनुसार सिपाहियोंका एक दल बन्दूकोंपर सङ्गीनें चढ़ाये सन्तानोंके दाहिनी ओरसे आकर उनपर टूट पड़ा। दोनों तरफसे हमला हो जानेके कारण सन्तानगण एक-

बारगी निराश हो गये। क्षण क्षणमें सैकड़ों सन्तान नष्ट होने लगे। तब जीवानन्दने कहा—"भवानन्द! तुम्हारी ही बात ठीक थी। अब बेचारे वैष्णवोंका हार करवाना व्यर्थ है। चलो, हम लोग धीरे-धीरे लौट चलें।"

भवा०—"अब कैसे लौट चलोगे? इस समय तो जो पीछे फिरेगा वही जान गँवायेगा।"

जीवा०—"सामने और दाहिनी तरफसे हमला हो रहा है। बायीं तरफ कोई नहीं है। चलो, धीरे-धीरे घूमकर बायीं तरफ हो जायँ और उधर-ही-से निकल भागें।"

भवा०—"भागकर कहां जाओगे? उधर नदी है। वर्षाके कारण बहुत उमड़ी हुई है। अगरेजोंके गोलेके डरसे भागकर तो सन्तान-सेना नदीमें डूब जायगी।"

जीवा०—"मुझे याद आता है कि उस नदीपर पुल बँधा है।"

भवा०—"यदि उस पुल-परसे यह दस हजार सन्तान-सेना नदी पार करने लगी, तो बड़ी भीड़ हो जायगी। शायद एकही तोपमें सारी सेना सहजमें ही विध्वंस कर दी जायगी।"

जीवा०—"एक काम करो। थोड़ीसी सेना तुम अपने साथ रख लो। इस युद्धमें तुमने जैसी हिम्मत और चतुराई दिखलाई है उससे मुझे मालूम हो गया, कि ऐसा कोई काम नहीं, जो तुम न कर सको। तुम उन्हीं थोड़ेसे सन्तानोंके साथ सामनेसे हमला रोको। मैं तुम्हारी सेनाकी आड़में बाकी सन्तानोंको पुल पार करा ले आऊंगा। तुम्हारे साथके सैनिक तो जरूर ही मरेंगे पर मेरे साथवाले अगर बच जायँ, तो कोई ताजुब नहीं।"

भवा०—"अच्छा, मैं ऐसा ही करता हूं।"

बस भवानन्दने दो हजार सन्तानोंके साथ एक बार फिर 'वन्देमातरम्' की गगनभेदी ध्वनि करते हुए बड़े उत्साहके साथ अङ्गरेजोंके तोपखानेपर हमला किया। घोर युद्ध छिड़ गया;

पर तोपोंके सामने वह छोटीसी सन्तान-सेना कबतक ठहरती ? जैसे किसान पके हुए धानके पौधोंको काट-काटकर बिछाता चला जाता है वैसे ही अङ्गरेजोंकी गोलन्दाज सेना उन्हें मार-मारकर गिराती चली गयी।

इसी बीच जीवानन्द बाकी सन्तान सैन्यका मुँह थोड़ा फेरकर बायीं ओरके जंगलकी ओर धीरे-धीरे चले। कप्तान टामसके एक सहकारी लेफ्टनेट वाटसनने दूरसे ही देखा, कि सन्तानोंका एक दल धीरे-धीरे भागा जा रहा है। यह देख, वे कुछ फौजी और कुछ मामूली सिपाहियोंके साथ जीवानन्दके पीछे दौड़े।

कप्तान टामसने भी यह देख लिया। यह देखकर कि सन्तानोंका प्रधान भाग भागा जा रहा है, उन्होंने कप्तान 'हे' नामक अपने एक सहकारीसे कहा—मैं जबतक दो-चार सौ सिपाहियोंको लेकर इन सामनेके छिन्नभिन्न विद्रोहियोंको नष्ट करनेमें लगा हूं तबतक तुम तोपों और बाकी सिपाहियोंको साथ लेकर उन भागनेवालोंका पीछा करो। बायीं ओरसे लेफ्टनेट वाटसन जा ही रहा है, दाहिनी ओरसे तुम भी जा पहुंचो। देखो, आगे बढ़कर तुम्हें पुलका मुँह बन्द कर देना होगा जिससे वे लोग तीन ओरसे घिर जायँ और जालमें फंसी हुई चिड़ियोंकी तरह मारे जा सकें। वे सब बड़े तेज चलनेवाले देशी सिपाही हैं, भागनेमें बड़े होशियार होते हैं, इसलिये तुम उन्हें सहज ही न पकड़ सकोगे। घूमघुमाव रास्तेसे घुड़सवारोंको पुलके मुहानेपर ले जाकर खड़ा कर दो, बस, फ़तह हो जायगी।" कप्तान 'हे' ने ऐसा ही किया।

"अति दर्पे हता लङ्का।" कप्तान टामसने सन्तानोंको अत्यन्त तुच्छ समझ कर केवल दो सौ पैदल सिपाही भवानन्दसे लड़नेके लिये रखे और बाकी सबको 'हे'के साथ रवाना कर दिया। चतुर भवानन्दने देखा कि अङ्गरेजोंकी तोपें हट गयीं और प्रायः सब सैनिक भी चले गये, अब जो थोड़े-बहुत रह गये हैं उन्हें हम

सहज ही मार डालेंगे। बस, उन्होंने अपने बचे-खुचे सिपाहियोंको पुकारकर कहा, "देखो ये जो थोड़ेसे दुश्मनके सिपाही बचे हैं, उन्हें मारकर ढेर कर दो, तो मैं जीवानन्दकी सहायताको चल पड़ूं। बोलो, एक बार प्रेमसे बोलो—"जय जगदीश, हरे!" यह सुनते ही वह थोड़ीसी सन्तान-सेना, 'जय जगदीश' का शोर मचाती हुई कप्तान टामसके ऊपर भूखे बाघकी तरह टूट पड़ी; उस आक्रमणकी उग्रता वे थोड़ेसे सिपाही और तिलङ्गे न सह सके, सबके सब नष्ट हो गये। भवानन्दने स्वयं आगे बढ़कर कप्तान टामसके सिरके बाल पकड़ लिये। कप्तान अन्ततक प्राणपणसे लड़ता रहा। भवानन्दने कहा—"कप्तान साहब! मैं तुम्हें नहीं मारूंगा, क्योंकि अंगरेजोंसे हमारी कोई शत्रुता नहीं है। तुम भला इन मुसलमानोंकी सहायता करनेके लिये क्यों आये हो? जाओ, मैं तुम्हें प्राणदान देता हूं, पर इस समय तो तुम हमारे बन्दी होकर रहोगे। भगवान् अङ्गरेजोंका भला करें, हमलोग तुम्हारे दोस्त ही हैं, दुश्मन नहीं।"

यह सुन कप्तान टामसने भवानन्दको मारनेके लिये अपनी खुली सङ्गीन उठानी चाही, पर भवानन्दने उसे ऐसा शेरकी तरह अपने पंजेमें पकड़ रखा था कि वह सिर भी न हिला सका। भवानन्दने अपने साथियोंसे कहा—"इसे बाँध लो।" बस, दो-तीन सन्तानोंने आगे बढ़कर कप्तान टामसको बाँध डाला। भवानन्दने कहा—"इसे एक घोड़ेपर लाद लो और इसको साथ लिये हुए जीवानन्दकी सहायताके लिये चलो।"

तब उन अल्पसंख्यक सन्तानोंने कप्तान टामसको एक घोड़ेकी पीठपर लाद लिया और "वन्देमातरम्" गीत गाते हुए वाटसनकी खोजमें चल पड़े।

उधर जीवानन्दकी सेनाके दिल टूट रहे थे और वह भागनेका मार्ग ढूँढ़ रही थी। जीवानन्द और धीरानन्दने उन्हें समझा-बुझाकर रोक रखना चाहा, पर सबको भागनेसे न रोक सके

कितने ही भागकर आमके बगीचोंमें जा छिपे। बाक़ी लोगोंको जीवानन्द और धीरानन्द पुलकी ओर ले गये। पर वहां पहुंचते ही हे और वाटसनने उन्हें दो तरफसे घेर लिया। अब जान कहां बचती है!

ग्यारहवां परिच्छेद



इसी समय टामसकी तोपें दाहिनी ओरसे आ पहुंचीं। तब तो सन्तानोंकी सेना एकबार ही तितर-बितर हो गयी। किसीके बचनेकी कोई आशा न रही। सन्तानोंमेंसे जिसका जिधर सींग समाया, वह उधर ही भाग निकला। जीवानन्द और धीरानन्दने उन्हें रोक रखनेके लिये बड़े-बड़े यत्न किये; पर न रोक सके। इसी समय बड़े ऊँचे स्वरसे आवाज आयी—"पुलपर चले जाओ, पुलपर चले जाओ, उस पार पहुंच जाओ, नहीं तो नदीमें डूब मरोगे। अंगरेजी सेनाकी ओर मुंह किये हुए धीरे-धीरे पुलपर पहुंच जाओ।"

जीवानन्दने चारों ओर दृष्टि दौड़ायी, तो सामने भवानन्द नजर आये। भवानन्दने कहा—"जीवानन्द, सबको पुलपर ले जाओ, नहीं तो रक्षा नहीं है।"

तब धीरे-धीरे पीछेकी ओर हटती हुई सन्तान-सेना पुल पार करने चली। पर ज्योंही वे पुलपर पहुंचे, अंगरेजोंने मौका पाकर तोपसे पुलको उड़ा देना शुरू किया। सन्तानोंका दल नष्ट होने लगा। भवानन्द जीवानन्द और धीरानन्द तीनों एकत्र हो गये, एक-एक तोपकी मारसे बहुतसे सन्तानोंका संहार हो रहा था। भवानन्दने कहा—"जीवानन्द, धीरानन्द, आओ, तलवारें घुमाते हुए हमलोग उस तोपको चलकर छीन लें।"

यह कह तीनों व्यक्ति तलवारें चमकाते हुए उस तोपके पास पहुंचे और गोलन्दाज सिपाहियोंको मार मार कर ढेर करने लगे। अन्य सन्तानगण भी उनको मददको आ पहुंचे। तोप भवानन्दके हाथमें चली आयी। तोप कब्जेमें कर, भवानन्द उसके ऊपर चढ़ गये और ताली बजाते हुए बोले—"बोलो वन्देमातरम्।" सब-के-सब 'वन्दे मातरम्' गाने लगे। भवानन्दने कहा—"इस तोपको घुमाकर अब इन सबोंकी खबर लेनी चाहिये।"

यह सुनते ही सन्तानोंने तोपका मुंह फेर दिया। फिर तो वह तोप उच्च नाद करती हुई वैष्णवोंके कानोंमें हरिनाम गुँजाने लगी। उसकी बाढ़के सामने सिपाही ढेर होने लगे। भवानन्द उस तोपको खींच खांचकर पुलके मुंहपर ले आये और बोले—"तुम दोनों कतारबन्दी करके सन्तान-सेनाको पुलके उस पार ले जाओ, मैं अकेला ही इस व्यूह-द्वारकी रक्षा करूंगा। तोप चलानेके लिये मेरे पास थोड़ेसे गोलन्दाज सिपाही छोड़ जाओ।"

बीस चुने हुए जवान भवानन्दके पास रह गये और असंख्य सन्तान-सेना पुल पारकर जीवानन्द और धीरानन्दके आज्ञानुसार क़तार बाँधे आगे बढ़ी। अकेले भवानन्द उन बीस जवानोंकी सहायतासे, एक ही तोपसे बहुत सिपाहियोंको जहन्नुमकी राह दिखलाने लगे। पर यवन-सेना भी ज्वारके समय लगातार उठती हुई तरङ्गोंके समान ही बढ़ती गयी और भवानन्दको चारों ओरसे घेरकर हैरान करने लगी। वे उन तरंगोंमें पड़कर डूबने लगे। पर भवानन्द न तो थकनेवाले थे, न हारनेवाले—वे बड़े ही निडर थे। वे भी तोप दाग दाग कर कितने ही सैनिकोंको नष्ट करते चले गये। यवनगण आँधीसे उठती हुई तरङ्गोंकी तरह उनपर हमला करने लगे; पर वे बीसों जवान पुलका मोहड़ा रोके ही रहे। वार-पर-वार होनेपर भी वे न हटे और यवन पुलपर न पहुंच सके। वे वीर मानों अजेय थे। उनका जीवन मानों अमर था। इस अवसरमें दल-के-दल सन्तान

उसपर पहुंच गये। थोड़ी देरमें सारी सन्तान सेना पुल पार कर जाती; पर इसी समय न जाने किधरसे नयी नयी तोपें गरज उठीं। अररर धायँकी आवाज होने लगी। दोनों ही दल थोड़ी देर हाथ रोककर देखने लगे, कि ये तोपें कहाँसे दागी जा रही हैं। उन्होंने देखा, कि जंगलके भीतरसे कितने ही देशी सिपाही तोपें दागते हुए चले आ रहे हैं। जंगलसे निकलकर सत्रह बड़ी-बड़ी तोपें एक साथ ही हे साहबके दलपर आग बरसाने लगीं। घोर शब्दसे जंगल और पहाड़ गूंज उठे। सारा दिन लड़ते-लड़ते थकी हुई यवनसेना प्राणोंके भयसे काँप उठी। उस अग्निवर्षाके आगे तिलङ्गे, मुसलमान और हिन्दुस्तानी सिपाही सभी भागने लगे। केवल दो-चार गोरे खड़े-खड़े जूझ रहे थे।

भवानन्द तमाशा देख रहे थे। उन्होंने कहा—"भाइयो! देखो, वे चींटीकटे भागे जा रहे हैं। चलो, एकबार ही उनपर टूट पड़ो।" तब चींटियोंके दलकी तरह कतार बाँधे हुई सन्तानसेना नये उत्साहसे पुलके इस पार आकर यवनोंपर आक्रमण करने लगी। वह अकस्मात् यवनोंपर टूट पड़ी। उन बेचारोंको युद्ध करनेका मौका ही न मिला। जैसे गङ्गाकी तरङ्गें पर्व्वताकार मतवाले हाथीको बहा ले जाती हैं, वैसे ही सन्तानगण यवनोंको बहा ले चले। मुसलमानोंने देखा कि पीछे तो भवानन्दकी पैदल सेना है और सामने महेन्द्रकी बड़ी-बड़ी तोपें गरज रही हैं।

अब तो हे साहबने देखा कि सर्वनाश उपस्थित है। उनकी सारी सुध-बुध जाती रही—बल, वीर्य, साहस, कौशल, शिक्षा, अभिमान—सबका दिवाला निकल गया। सारी फौजदारी, बादशाही, अंगरेजी, देशी, विलायती, काली और गोरी सेना गिर गिर कर जमीन चूमने लगी। विधर्मियोंका दल भाग चला। जीवानन्द और धीरानन्द 'मार मार' करते हुए विधर्मी सेनाके पीछे दौड़ पड़े। सन्तानोंने उनकी कुल तोपें छीन लीं। बहुतसे अंगरेज़ और देशी सिपाही मारे गये। सर्वनाश समीप आया देख,

कप्तान हे और वाटसनने भवानन्दके पास कहला भेजा—“हम सब तुम्हारे कैदी हैं, अब हमारी जानें छोड़ दो।” जीवानन्दने भवानन्दके मुंहकी ओर देखा। भवानन्दने मन-ही-मन कहा—“नहीं, यह तो नहीं होगा। आज तो मैं मरनेके लिये तैयार हूं।” यही सोचकर भवानन्द ऊपरको हाथ उठाये, हरि-हरि कहते हुए बोले—“मारो! मारो इन दुष्टोंको।”

अब तो एक भी प्राणी जीता न बचा। केवल २०।३० गोरे सिपाही एक जगह इकट्ठे होकर मन-ही-मन आत्मसमर्पण करनेका निश्चय कर, जानपर खेलकर लड़ रहे थे। जीवानन्दने कहा—“भवानन्द! हमारी तो जय हो चुकी, अब लड़नेका कोई काम नहीं है। इन दो-चार व्यक्तियोंको छोड़कर और कोई जीता नहीं रहा। इनको प्राणदान दे दो और घर लौट चलो।”

भवानन्दने कहा,—“एकको भी जीता छोड़कर भवानन्द नहीं लौट सकता। जीवानन्द! मैं तुम्हारी सौगन्ध खाकर कहता हूं, तुम अलग हटकर खड़े हो जाओ और तमाशा देखो। मैं अकेला ही इन बचे अंगरेजोंको मार गिराता हूं।”

कप्तान टामस घोड़ेकी पीठपर बंधा था। भवानन्दने हुक्म दिया—“उसे मेरे सामने ले आओ। पहले उसीकी जान लूंगा; फिर मैं तो मरूंगा ही।”

कप्तान टामस बंगला अच्छी तरह समझता था। उसने यह बात सुनललकार कर उन अंगरेज़ सिपाहियोंसे कहा—“भाई अगरेजो! मैं तो मरता ही हूं; पर तुम लोग इंग्लैण्डके प्राचीन यशकी रक्षा करना। मैं तुम्हें ईसामसीहकी सौगन्ध देकर कहता हूं कि पहले मुझे मारकर तब इन विद्रोहियोंको मारना।”

इसी समय दायेंसे एक पिस्तौल छूटी। एक आइरिशने कप्तान टामसको लक्ष्यकर यह गोली छोड़ी थी। गोली कप्तान टामसके सिरमें लगी। उसके प्राण निकल गये। भवानन्दने ज़ोर-से चिल्लाकर कहा—“मेरा ब्रह्मास्त्र व्यर्थ चला गया। अब कौन

ऐसा अर्जुन, भीम, नकुल और सहदेव है, जो इस समय मेरी रक्षा कर सके ? यह देखो, चुटीले शेरकी तरह सब गोरे मेरे ऊपर टूट रहे हैं। मैं तो मरनेके लिये आया ही हूं। अब बतलाओ कौन कौन सन्तान मेरे साथ मरना चाहते हैं।"

सब से पहले धीरानन्द आगे आये। इसके बाद जीवानन्द। साथ ही दस, फिर पन्द्रह, फिर बीस और अन्तमें ५० सन्तान आकर वहीं इकट्ठे हो गये। भवानन्दने धीरानन्दको देखकर कहा—"तुम भी क्या हमारे ही साथ मरने आये हो ?"

धीरा—"क्यों ? मरनेमें भी किसीका इजारा है ?" यह कहते हुए धीरानन्दने एक अंगरेजको घायल किया।"

भवा०—"नहीं, नहीं, मेरे कहनेका मतलब यह है कि तुम तो स्त्री पुत्रका मुंह देखते हुए सुखसे दिन बिताना चाहते थे।"

धीरा०—"कलवाली बातका इशारा कर रहे हो ? क्या अब भी तुम्हारी समझमें कुछ न आया ?" यह कहते कहते-धीरानन्द ने उस घायल गोरेको मार गिराया।"

भवा०—"नहीं—"

बात पूरी भी न होने पायी थी, कि एक गोरेने भवानन्दका दाहिना हाथ काट डाला।

धीरा०—"मेरी क्या मजाल, जो मैं तुम्हारे जैसे पवित्रात्मासे वैसी बातें कहता ? मैं तो उस समय सत्यानन्दका जासूस बन-कर गया हुआ था।"

भवा०—"यह क्या ? क्या महाराज मेरे ऊपर सन्देह करते हैं ?"

उस समय भवानन्द एक ही हाथसे लड़ रहे थे। धीरानन्दने उसकी रक्षा करते हुए कहा—"कल्याणीके साथ तुम्हारी जो-जो बातें हुई थीं, वे सब महाराजने अपने कानों सुन ली थीं।"

भवा०—"सो कैसे ?"

धीरा०—वे स्वयं वहां गये थे। देखो, सावधान हो जाओ।"

इसी समय एक गोरेने भवानन्दपर हमला किया, जिसका जवाब उन्होंने हमलेसे दिया।

धीरानन्द कहते गये—"वे कल्याणीको गीता पढ़ा रहे थे, उसी समय तुम वहाँ पहुंचे। देखो, सावधान!"—भवानन्दकी बायीं भुजा भी कटकर गिर पड़ी।

भवा०—"अच्छा, उनको मेरे मरनेका हाल सुनाते हुए कह देना कि मैं अविश्वासी नहीं हूं।"

आंखोंमें आंसू भरकर धीरानन्द युद्ध करते-करते बोले—"सो तो वे ही समझें। कल उन्होंने जो आशीर्वाद किया था उसे याद करो। उन्होंने मुझसे कह रखा था कि आज भवानन्द मरेगा, तुम उसके पास ही रहना और उससे मरते समय कह देना कि मेरे आशीर्वादसे उसे मरनेके बाद वैकुण्ठवास होगा।"

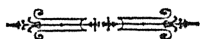
भवानन्दने कहा—"सन्तानोंकी जय हो। भाई! मरते समय एक बार 'वन्देमातरम्' गान तो मुझे सुना दो।"

उसी समय धीरानन्दके आज्ञानुसार सभी युद्धोन्मत्त सन्तान ललकारके साथ 'वन्देमातरम्' गाने लगे। इससे उनकी भुजाओंमें दुगुना बल आ गया। उस भयङ्कर मुहूर्त्तमें ही बाकी बचे हुए गोरे भी मारे गये। सारी युद्धभूमिपर सन्नाटा छा गया।

उसी मुहूर्त्तमें भवानन्दने भी मुंहसे 'वन्देमातरम्' गाते और मन-ही-मन विष्णु भगवान्के चरण-कमलोंका ध्यान करते हुए परलोककी यात्रा की।

हाय रे रमणी रूप लावण्य! इस संसारमें सबसे बढ़कर तुझे ही धिक्कार है!

बारहवां परिच्छेद



लड़ाई जीतनेके बाद सारे विजयी वीर, अजय नदीके किनारे चारों ओरसे सत्यानन्दको घेरे हुए, तरह तरहकी खुशियां मनाने लगे। केवल सत्यानन्दको ही सुख नहीं था। वे भवानन्दके लिये दुःखी हो रहे थे।

अबतक तो वैष्णवोंके पास लड़ाईके अधिक बाजे नहीं थे, पर इस समय न जाने कहांसे हजारों ढोल, दमामे, शहनाई, भेरी, तुरही, सिंघे आदि बाजे आ पहुँचे। जय-सूचक वाद्योंकी ध्वनिसे सभी जङ्गल, नदियां और पहाड़ गूंज उठे। इस प्रकार बड़ी देरतक सन्तानोंने तरह तरहसे खुशियाँ मनायीं। इसके बाद सत्यानन्दने कहा—"आज जगदीश्वरने बड़ी कृपा की जो सनातनधर्मकी जय हुई; परन्तु अभी एक काम बाकी रह गया है। जो हमारे साथ खुशियाँ न मना सके और हमें यह खुशीका दिन दिखलानेके लिये जानोंपर खेल गये, उन्हें भूल जानेसे काम नहीं चलेगा। जिन्होंने रणक्षेत्रमें प्राण गँवाये हैं, चलो, अब हम उन लोगोंका शव-संस्कार करें। विशेषकर, जिस महात्माने हमें इस लड़ाईमें जिताकर अपने प्राण दे दिये हैं, उस भवानंदका संस्कार खूब धूमधामसे करें।"

यह सुनते ही सन्तानोंका दल 'वन्देमातरम्' कहता हुआ मरे हुए वीरोंका संस्कार करने चला। सब लोग हरिनाम लेते हुए बहुत सी चन्दनकी लकड़ियाँ बटोर लाये और भवानन्दकी चिता रच उसीपर उन्हें सुला, आग लगाकर चारों ओरसे चिताको घेरे हुए 'हरे मुरारे' गाने लगे। ये लोग विष्णु-भक्त थे—वैष्णव-सम्प्रदाय—भक्त न थे, इसीलिये इनमें दाह कर्म होता था।

उसके बाद जंगलमें केवल सत्यानन्द, जीवानन्द, महेन्द्र, नवीनानन्द और धीरानन्द ही रह गये। पांचों व्यक्ति एकांतमें बैठे सलाह करने लगे।

सत्यानन्दने कहा—"इतने दिनोंतक हम-लोग जिस व्रतके लिये अपना सब कर्म-धर्म और सुख-आराम छोड़ बैठे थे, वह पूरा हो गया। अब यहाँ यवन-सेनाका नाम-निशान भी न रहा, जो बाकी बचे हैं वे एक क्षण भी हमारे सामने न ठहर सकेंगे। अब तुम लोगोंकी क्या राय है?"

जीवानन्दने कहा—"अब यहाँसे चलकर हमें राजधानीपर अधिकार जमाना चाहिये।"

सत्या०—"मेरी भी यही राय है।"

धीरा०—"पर आपके सिपाही कहां हैं?"

जीवा०—"क्यों? यहीं तो हैं।"

धीरा०—"कहां हैं? कोई नज़र भी आता है?"

जीवा०—"सब लोग जहां-तहां विश्राम कर रहे हैं। डङ्का बजाते ही सब इकट्ठे हो जायगे।"

धीरा०—"एकका भी पता नहीं लगेगा।"

सत्या०—"क्यों?"

धीरा०—"सब लूटपाट करने चले गये हैं। इस समय गांवोंकी रक्षाका कोई प्रबन्ध नहीं है। मुसलमानोंके गांवों और रेशमकी कोठियोंको लूटपाटकर सबके सब घर चले जायंगे। इस समय आप किसीको नहीं पायेंगे। मैं खोज ढूंढ़कर बैठा हूं।"

सत्यानन्द उदास होकर बोले—"जो हो, अब तो यह सारा प्रदेश हमारी मुट्ठीमें आ गया। अब यहां और कोई ऐसा नहीं जो हमारे विरुद्ध उठ खड़ा हो; इसलिये तुम लोग वीरभूमिमें सन्तानराज्यका झण्डा खड़ा करो, प्रजासे कर वसूल करो और नगरपर अधिकार करनेके लिये सेनाका संग्रह करते रहो। हिंदुओंका राज्य हुआ है, यह सुनते ही बहुतसे सैनिक हमारे झंडेके नीचे चले आयंगे।"

तब जीवानन्द आदि सब लोगोंने सत्यानन्दको प्रणाम कर

कहा—"हम सब आपको प्रणाम करते हैं। महाराजाधिराज! यदि आपकी आज्ञा हो, तो कहिये, हमलोग इसी जङ्गलमें आपका सिंहासन स्थापित करें।"

सत्यानन्दने जीवनमें आज पहली ही बार क्रोध प्रकाश किया था। बोले—"क्या तुमलोग मुझे भी ढोंगी साधु समझते हो? हमलोग राजा नहीं—संन्यासी हैं। इस समय इस देशके राजा स्वयं भगवान् वैकुण्ठनाथ हैं। नगरपर अधिकार हो जानेपर तुम लोग जिसे चाहना उसे राजमुकुट पहना देना; पर यह निश्चय समझ रखो, कि मैं इस ब्रह्मचर्याश्रमको छोड़कर और किसी आश्रमको नहीं स्वीकार कर सकता। जाओ, अपना-अपना काम देखो।"

यह सुन, वे चारों आदमी ब्रह्मचारीको प्रणामकर उठ खड़े हुए। तब औरोंकी नजर बचाकर सत्यानन्दने महेन्द्रको ठहरनेका इशारा किया। अन्य तीनों व्यक्ति तो चले गये, महेन्द्र रह गये। तब सत्यानन्दने महेन्द्रसे कहा—"तुम सबने विष्णु-मण्डपमें शपथ करके सन्तानधर्म ग्रहण किया था। भवानन्द और जीवानन्द, दोनोंने ही अपनी प्रतिज्ञा भङ्ग कर डाली। भवानन्दने तो अपने कहे मुताबिक अपने पापका प्रायश्चित्त कर डाला, अब मुझे डर है, कि कहीं जीवानन्द भी प्रायश्चित्त करनेके लिये अपने प्राण न दे डाले, पर मुझे एक ही बातका भरोसा है, जिससे वह अभी नहीं मर सकता। वह बात एकदम गुप्त है। अकेले तुमने ही अपनी प्रतिज्ञा पूरी तरह निबाही है। अब तो संतानोंका काम हो गया। प्रतिज्ञा तो उसी दिनतकके लिये थी, जबतक सन्तानोंका काम न हो जाता। अब कार्योद्धार हो गया है, इसलिये मैं चाहता हूं कि तुम फिरसे गृहस्थ बन जाओ।"

महेन्द्रकी आंखोंसे लगातार आंसू चलने लगे। वे बोले—"महाराज! अब मैं किसको लेकर फिरसे गृहस्थ बनूँ? स्त्रीने प्राण दे ही दिये, कन्याका कुछ पता ही नहीं, कि किधर गयी।

अब मैं उसे कहांसे ढूंढ़ लाऊं ? आपने कहा था, कि वह जीती है, इसीसे इतना भी जानता हूं। और कुछ मुझे नहीं मालूम।"

तब सत्यानन्दने नवीनानन्दको बुलाकर महेन्द्रसे कहा—"देखो, इनका नाम नवीनानन्द गोस्वामी है। ये बड़े ही पवित्रात्मा हैं और मेरे प्रिय शिष्य हैं। ये ही तुम्हें तुम्हारी कन्याका पता बता देंगे।" यह कह सत्यानन्दने शान्तिको इशारेसे कुछ कहा। उस इशारेको समझकर शांति वहांसे जाने लगी। यह देख, महेन्द्रने कहा—"अब तुमसे कहां देखादेखी होगी ?"

शांतिने कहा—"मेरे आश्रममें चलिये।" यह कह, शान्ति आगे-आगे चली। महेन्द्र भी ब्रह्मचारीके पैर छू, बिदा मांग शान्तिके पीछे-पीछे चलकर उसके आश्रममें पहुंचे। उस समय रात बहुत बीत गयी थी; तोभी शान्ति सोने न जाकर नगरकी ओर चल पड़ी।

सबके चले जानेपर ब्रह्मचारी भूमिमें माथा टेके हुए मन-ही-मन जगदीश्वरका ध्यान करने लगे। क्रमसे सवेरा होनेको आ गया। इसी समय न जाने किसने आकर उनका सिर छूकर कहा—"मैं आ गया !"

ब्रह्मचारी उठ खड़े हुए और चकपकाये हुए बड़ी घबराहटके साथ बोले—"आप आ गये ? क्यों ? किस लिये ?"

आनेवालेने कहा,—"दिन पूरे हो गये।"

ब्रह्मचारीने कहा,—"प्रभो, आज तो क्षमा कीजिये। आगामी माघी पूर्णिमाके दिन मैं आपकी आज्ञाका पालन करूंगा।"

पहला परिच्छेद



उस रातको वह प्रदेश हरिध्वनिसे भर गया। सन्तानोंके दल-के-दल जहां-तहां ऊंचे स्वरसे 'वन्देमातरम्' या 'जगदीश हरे!' गाते हुए घूमते दिखाई देने लगे। कोई शत्रु सेनाका अस्त्र, कोई वस्त्र छीनने लगा। कोई मरे हुए शत्रुओंकी लाशोंको पैरसे ठुकराते और तरह-तरहके उपद्रव मचाते थे। कोई गांवकी तरफ़ और कोई नगरकी तरफ़ चले जाते और राही या गृहस्थ-को पकड़कर कहते—"बोलो वन्देमातरम्! नहीं कहोगे, तो हम तुम्हें अभी मारकर फेंक देंगे।" कोई हलवाईकी दूकान लूटकर खा रहा है तो कोई ग्वालेके घर जा सींकेसे दहीकी मटकी उतार दहीमें मुँह लगा रहा है। कोई कहता—"अरे,व्रजके ग्वाले तो आ गये; पर ग्वालिनें कहाँ हैं?" उसी एक रातभरमें गाँव-गाँवमें, नगर-नगरमें घोर कोलाहल मच गया। सबोंने कहा,—"मुसलमान हार गये, हिन्दुओंका राज्य पुनः हो गया। अब क्या है? अब सब लोग प्रेमसे एकबार श्रीरामचन्द्रकी जय बोलो।" अब तो गाँववाले मुसलमानोंको देखते ही मारनेको दौड़ने लगे। कोई-कोई तो उसी रातको मुसलमानोंकी बस्तीमें घुस उनके घरोंमें आग लगाकर उनकी चीजें लूटने-खसोटने लगे। बहुतसे मुसलमान मारे गये, बहुतोंने दाढ़ी मुड़वा, देहमें रामरज पोत, रामका नाम लेना शुरू कर दिया। पूछनेपर वे झट कह उठते, कि भाई! मैं तो हिन्दू हूँ।

दलके दल डरे हुए मुसलमान नगरकी ओर भाग चले। चारों ओर राज्यके नौकर दौड़-धूप करने लगे। बचे-बचाये सिपाही सुसज्जित होकर नगरकी रक्षाके लिये आ इकट्ठे हुए। राजधानीके किलेकी घाटियों और खाइयोंके दरवाजोंपर हथियार

बन्द सिपाही बड़ी सावधानीसे पहरा देने लगे। सब लोग रात-रातभर जागे जागे रहते और प्रत्येक क्षण आगन्तुक विपत्तिकी सम्भावनासे कांपते रहते। हिन्दू लोग कहने लगे—"आयें, संन्यासी बाबा लोग आयें तो सही—मां दुर्गा करें, वह दिन शीघ्र देखना नसीब हो।" मुसलमान कहने लगे-"या खुदा! इतने दिनों बाद क्या आज कुरानशरीफ झूठा हो गया? हम पांच वक्त नमाज़ पढ़ते हैं, तोभी इन माथेमें चन्दन लगानेवाले हिन्दुओंको न हरा सके। दुनियामें किसी बातका भरोसा नहीं है।"

इसी तरह किसीने रोते हुए और किसीने हंसते हुए वह रात बड़ी घबराहटके साथ बितायी।

यह सब बातें कल्याणीके कानोंमें भी पड़ीं; क्योंकि यह बातें तो इस समयतक औरत, मर्द, बच्चे सबके कानोंतक पहुंच चुकी थीं। कल्याणीने मन-ही-मन कहा—"जय जगदीश्वर! आज तुम्हारा कार्य सम्पूर्ण हो गया। अब आज ही मैं अपने स्वामीको देखने जाऊंगी। हे मधुसूदन! आज तुम मेरे सहायक बनो।"

अधिक रात बीतनेपर कल्याणी शय्या छोड़कर उठी और चुपचाप खिड़की खोलकर देखने लगी। जब उसने कहीं किसीको न देखा, तब चुपकेसे धीरे धीरे गौरी देवीके मकानके बाहर आयी, उसने मन-ही-मन इष्टदेवताको याद कर कहा,—"प्रभो! ऐसा करना, जिसमें पदचिह्न पहुंचकर मैं उन्हें देख सकूं।"

कल्याणी नगरके द्वारके पास आ पहुंची। वहाँ पहरेवालेने पूछा—"कौन जा रहा है?" कल्याणीने डरते-डरते कहा—"मैं स्त्री हूं।" पहरेवालेने कहा—"जानेका हुक्म नहीं है।" बात दफ़ादारके कानमें पड़ी; उसने कहा—"बाहर जानेकी मनाई नहीं है, भीतर जानेकी रोक है।" यह सुन, पहरेवालेने कल्याणीसे कहा,—"जाओ माई! चले जाओ, बाहर जानेकी मनाई नहीं है। पर आजकी रात बड़ी आफ़तकी है। न मालूम माता! रास्तेमें क्या हो जाय। कौन जाने, कहीं तुम्हें डाकुओंके

हाथमें पड़ जाना पड़े या गड्ढेमें गिरकर प्राण गंवाने पड़ें। आजकी रात तो माईजी! तुम कहीं न जाओ।"

कल्याणीने कहा,—"बाबा! मैं भिखारिन हूं। मेरे पास फूटी कौड़ी भी नहीं है। डाकू मुझसे कुछ न बोलेंगे।"

पहरेवालेने कहा—"माँ! अभी तुम्हारी नयी उमर है। भरी जवानी है। दुनियामें इससे बढ़कर धन-दौलत कुछ भी नहीं है। इसके डाकू तो हम भी हो जा सकते हैं।" कल्याणीने देखा कि यह तो बड़ी विपद् आयी! इससे बिना कुछ कहे-सुने, चुपचाप वहांसे दबे पांवों खिसक पड़ी। पहरेवालेने देखा, कि उसकी माईजीने तो उसकी दिल्लगीका मतलब ही नहीं समझा। इससे उसके दिलको बड़ी चोट पहुँची। दुःख भुलानेके लिये उसने गांजेका दम लगाया और राग झिंझोटी खम्माचमें सोरी मियाँका टप्पा गाना शुरू किया। कल्याणी चली गयी।

उस रातको रास्तेमें दल-के-दल पथिक नज़र आ रहे थे। कोई 'मारो मारो' कह रहा था, कोई 'भागो भागो' के नारे बुलन्द कर रहा था। कोई रो रहा था, कोई हंस रहा था। जो जिसे देख पाता, वह उसीको पकड़ने दौड़ता था। कल्याणी बड़े चक्करमें पड़ी। एक तो राह नहीं मालूम, दूसरे, किसीसे कुछ पूछने लायक भी नहीं; क्योंकि सभी लड़नेको ही तैयार नज़र आते थे। वह लुक-छिपकर अंधेरेमें रास्ता चलने लगी; पर हज़ार छिप-छिपकर चलनेपर भी वह एक अत्यन्त उद्धत विद्रोही-दलके हाथमें पड़ ही गयी। वे खूब शोर-गुल मचाते हुए उसे पकड़नेको लपके। कल्याणी दम साधे हुए भाग चली और जङ्गलके भीतर घुस गयी। वहांतक एक दो डाकुओंने उसका पीछा किया। एकने उसका आँचल पकड़कर कहा—"अब कहो, प्यारी!" इसी समय अकस्मात् किसीने पीछेसे आकर उस दुष्टको एक लाठी मारी। वह मार खाकर पीछे हट गया। इस व्यक्तिका वेश संन्यासियोंका-सा था। छाती काले

मृगकी खालसे छिपी हुई थी—उम्र अभी बिलकुल ही थोड़ी थी। उसने कहा,—"देखो, डरो मत। मेरे साथ-साथ आओ। तुम कहां जाओगी ?"

कल्याणी—"मुझे पदचिह्न जाना है।"

आगन्तुक अचरजमें आकर चौक पड़ा; बोला,—"क्या कहा ? पदचिह्न ?" यह कह, उसने कल्याणीके दोनों कन्धोंपर हाथ रख-कर अँधेरेमें उनका चेहरा देखना शुरू किया।

अकस्मात् पुरुषका स्पर्श होनेसे कल्याणीकी देहके रोंगटे खड़े हो गये। वह डर गयी, शर्मा गयी, अचरजमें पड़ गयी और रोने लगी। वह ऐसी डर गयी, कि उससे भागते भी न बन पड़ा। आगन्तुकने जब अच्छी तरहसे उसे देख-भाल लिया तब कहा,—"हरे मुरारे! अब मैंने तुम्हें पहचाना। तुम वही मुंहजली कल्याणी हो न ?"

कल्याणीने डरते-डरते पूछा—"आप कौन हैं ?"

आगन्तुकने कहा,—"मैं तुम्हारा दासानुदास हूं। सुन्दरी! मुझपर प्रसन्न हो जाओ।"

बड़ी तेजीके साथ वहांसे हटकर कल्याणीने तनककर कहा,—"क्या इस तरह मेरा अपमान करनेके लिये ही आपने मेरी रक्षा की थी ? मैं देख रही हूं, कि आप ब्रह्मचारियोंका-सा वेश बनाये हुए हैं। क्या ब्रह्मचारियोंकी यही करनी है ? आज मैं निस्सहाय हो रही हूं, नहीं तो आपके मुंहपर लात मारती।"

ब्रह्मचारीने कहा—"अरी मन्द मुसकानवाली! मैं न जाने कबसे तुम्हारे इस सुन्दर शरीरको स्पर्श करनेके लिये तड़प रहा था।" यह कह, ब्रह्मचारीने लपककर कल्याणीको पकड़ लिया और उसे अपने कलेजेसे लगा लिया। अब तो कल्याणी खिल-खिलाकर हंस पड़ी और झटपट बोल उठी,—"अरी वाह री मेरी किस्मत! बहन! तुमने पहले ही क्यों नहीं कह दिया कि तुम्हारा भी मेरा ही जैसा हाल है ?"

शान्तिने कहा—"क्यों, बहन! क्या महेन्द्रको खोजने चली हो?"

कल्याणीने कहा—"तुम कौन हो? देखती हूं कि तुम्हें तो सब कुछ मालूम है?"

शान्तिने कहा,—"मैं ब्रह्मचारी हूं, सन्तान-सेनाका अधिनायक हूं, बड़ा भारी वीर पुरुष हूं। मुझे सब कुछ मालूम है। आज रास्तेमें सिपाही और सन्तान दोनों ही ऊधम मचाये हुए हैं। आज तो तुम पदचिह्न नहीं जा सकोगी।"

कल्याणी रोने लगी। शान्तिने आँखें नचाकर कहा—"डरनेकी क्या बात है? हमलोग नयनवाण चलाकर ही शत्रु-वध किया करती हैं। चलो, अभी पदचिह्न चलें।"

कल्याणीने ऐसी बुद्धिमती स्त्रीकी सहायता पाकर समझा, मानो उसे हाथों स्वर्ग मिल गया। वह बोल उठी—"चलो, तुम मुझे जहाँ ले चलोगी, वहीं चलूंगी।"

तब शान्ति कल्याणीको साथ लिये हुई जंगली रास्तेसे जाने लगी।

दूसरा परिच्छेद



जिस समय शान्ति अपने आश्रमसे निकलकर उस गहरी रातके समय नगरकी ओर रवाना हुई थी, उस समय जीवानन्द आश्रममें ही मौजूद थे। शान्तिने जीवानन्दसे कहा,—"मैं नगरकी ओर जाती हूं और शीघ्र ही महेन्द्रकी स्त्रीको लेकर आती हूं। तुम महेन्द्रसे कह रखना कि उसकी स्त्री जीती है।"

जीवानन्दने भवानन्दसे कल्याणीके जी उठनेकी बात सुन रखी थी। सब स्थानोंमें घूमने-फिरनेवाली शान्तिसे उन्हें इस

बातका पता भी मालूम हो गया था कि वह इन दिनों कहाँ रहती है। जीवानन्दने धीरे-धीरे सब बातें महेन्द्रको बतला दीं।

पहले तो महेन्द्रको विश्वासही न हुआ, पर अन्तमें वे इस आनन्दसे अभिभूत हो, मुग्ध हो रहे।

उस रातके बीतते बीतते शान्तिकी बदौलत महेन्द्रकी कल्याणीसे भेंट हुई। उस सुनसान जंगलमें सालके पेड़ोंकी घनी श्रेणीके भीतर अन्धेरेमें छिपे हुए पशु-पक्षियोंके सोकर उठनेके पहले ही उन दोनोंमें देखादेखी हुई। उनके इस मिलनेके साक्षी केवल नीले आकाशमें सोहनेवाले, क्षीण-प्रकाश नक्षत्र और चुपचाप कतार बाँधे खड़े रहनेवाले सालके पेड़ ही थे। दूरसे कभी-कभी पत्थरकी शिलाओंसे टकरानेवाली, मधुर कल-कल नाद करनेवाली, नदीका हर-हर शब्द और कभी-कभी पूर्व दिशामें उषाके मुकुटकी ज्योति जगमगाती हुई देखकर प्रसन्न होनेवाली एक कोयलकी कूक सुनायी पड़ जाती थी।

एक पहर दिन चढ़ आया। जहां शान्ति थी, वहीं जीवानन्द भी आ पहुंचे। कल्याणीने शान्तिसे कहा—"हम लोग आपके हाथों विना मोल बिक गये हैं! अब हमारी कन्याका पता बताकर आप इस उपकारको पूरा कर दें।"

शान्तिने जीवानन्दके चेहरेकी ओर देखते हुए कहा—"मैं तो अब सोती हूं। आठ पहरसे मैं बैठीतक नहीं हूं। दो रात जागकर ही बितायी है। मैं पुरुष हूं—"

कल्याणीने धीरेसे मुस्कुरा दिया। जीवानन्दने महेन्द्रकी ओर देखते हुए कहा—"अच्छा, इसका भार मेरे ऊपर रहा। आप लोग पदचिह्न चले जायँ, वहीं आप अपनी कन्याको पा जायंगे।"

यह कह जीवानन्द, निमाईके घरसे कन्याको ले आनेके लिये भरुईपुर चले गये, पर वहां पहुंचनेपर उन्होंने देखा कि यह काम कुछ आसान नहीं है।

पहले तो निमाई यह बात सुनते ही चकपका गयी और

इधर-उधर देखने लगी। इसके बाद उसकी नाक-भौं चढ़ गयी और वह रो पड़ी। फिर बोली—"मैं तो लड़की नहीं दूंगी।"

निमाईने अपने गोल-गोल हाथोंकी कलाईसे जब आँखोंके आँसू पोंछ डाले तब जीवानन्दने कहा—"बहन! रोती क्यों हो? कुछ दूर भी तो नहीं है? जब तुम्हारे जीमें आये, जाकर देख आया करना।"

निमाईने होंठ फुलाकर कहा—"अच्छा,तुम लोगोंकी लड़की है, ले जाना चाहते हो, तो ले जाओ। मुझे क्या है?" यह कहती हुई वह भीतरसे सुकुमारीको ले आयी और उसे क्रोधके साथ जीवानन्दके पास पटककर आप पैर पसारकर रोने बैठी। लाचार, जीवानन्द उस बारेमें कुछ भी न कहकर इधर-उधरकी बातें करने लगे। पर निमाईका क्रोध किसी तरह कम न हुआ। वह उठकर सुकुमारीके कपड़ोंकी गठरी, गहनोंका सन्दूक, बाल बांधनेके फीते खिलौने आदि ला लाकर जीवानन्दके आगे फेंकने लगी। सुकुमारी आप ही उन सब चीजोंको सहेजने लगी। वह निमाईसे पूछने लगी—"मां! मुझे कहां जाना होगा?"

अब तो निमाईसे न रहा गया। वह सुकुमारीको गोदमें लिये रोती हुई चली गयी।

———

तीसरा परिच्छेद



पदचिह्नके नये दुर्गमें आज महेन्द्र, कल्याणी, जीवानन्द, शान्ति, निमाई, निमाईके स्वामी और सुकुमारी जमा हैं। सब सुखमें पगे हुए हैं। शान्ति भी नवीनानन्दका रूप धारण किये हुए आयी है। वह जिस रातको कल्याणीको अपनी कुटियामें ले आयी थी, उसी रातको उसने कल्याणीको इस बातकी ताकीद कर दी थी कि अपने स्वामीसे यह कभी न कहना कि नवीनानन्द

स्त्री है। एक दिन कल्याणीने उसे घरके भीतर बुलाया। नवीनानन्द भीतर आये। उन्होंने नौकरोंकी रोकथाम नहीं सुनी।

शान्तिने कल्याणीके पास आकर पूछा—"तुमने मुझे किस लिये बुलाया है?"

कल्याणी—"इस तरह कबतक मर्दाना वेश बनाये रहोगी? न मिलना-जुलना होता है, न बातचीत होती है। तुम्हें मेरे स्वामीके सामने अपना यह परदा हटाना पड़ेगा।"

नवीनानन्द बड़े फेरमें पड़ गये, बहुत देरतक चुप रहे, अन्तमें बोले,—"कल्याणी! इसमें अनेक विघ्न हैं।"

बस, दोनोंमें इसी विषयपर बातें होने लगीं। इधर जिन नौकरोंने नवीनानन्दको भीतर जानेसे रोका था, उन्होंने महेन्द्रके पास जाकर खबर दी कि नवीनानन्द जबरदस्ती घरके अन्दर घुस गये हैं—उन्होंने कोई रोक टोक नहीं मानी। यह सुनकर महेन्द्र बहुत विस्मित हुए और घरके अन्दर गये। उन्होंने कल्याणीके सोनेके कमरेमें जाकर देखा कि नवीनानन्द घरमें एक ओर खड़े हैं और कल्याणी उनकी देहपर हाथ रखे, उनके बघछालेकी गांठ खोल रही है। महेन्द्र बड़े विस्मित, साथ ही क्रोधित भी हुए।

नवीनानन्दने उन्हें देख, हंसकर कहा—"क्यों गुसाईंजी! एक सन्तानपर दूसरे सन्तानका अविश्वास कैसा?"

महेन्द्रने कहा—"क्या भवानन्दजी विश्वासपात्र थे?"

नवीनानन्दने आंखें तरेरकर कहा—"तो कल्याणी भवानन्दके शरीरपर हाथ रखकर उनके बघछालेकी गांठ भी नहीं खोलने गयी थी!" कहते कहते शान्तिने कल्याणीके हाथमें चुटकी भरी—उसे बघछाला नहीं खोलने दिया।

महेन्द्र—"इससे क्या हुआ?"

नवीना०—"आप मेरे ऊपर भले ही अविश्वास कर सकते हैं; पर कल्याणीपर क्योंकर अविश्वास कर सकते हैं?"

अब तो महेन्द्र बड़े चक्करमें पड़े, बोले—"क्यों ? मैंने इनपर कब अविश्वास किया ?"

नवीना०—"नहीं किया, तो फिर मेरे पीछे पीछे यहांतक क्यों चले आये ?"

महेन्द्र—"मुझे कल्याणीसे एक बात करनी थी, इसीलिये चला आया।"

नवीना०—"अच्छा, तो अभी जाइये। अभी इनसे कुछ बातें कर लेने दीजिये। आपका तो यहीं घर-द्वार है, जब चाहेंगे चले आयेंगे। मैं तो आज बड़ी-बड़ी मुश्किलोंसे आने पाया हूं।"

महेन्द्र तो पूरे बुद्धू बन गये। वे कुछ भी न समझ सके कि यह मामला क्या है ? ऐसी बातें तो किसी अपराधीके मुंहसे नहीं निकल सकतीं। कल्याणीके भी रंग-ढंग निराले ही थे। वह भी अपराधिनीकी तरह न भागी, न डरी, न शर्मायी—बल्कि धीरे-धीरे मुस्कुरा रही थी और वह कल्याणी जो उस दिन वृक्ष-तले बैठी हुई हंसते-हंसते विष खा गयी थी—वह भला कभी अविश्वासिनी हो सकती है ? महेन्द्र मन-ही-मन यही सब सोच ही रहे थे कि इसी समय शान्तिने महेन्द्रको यों बुद्धू बनते देख, धीरेसे हँसकर कल्याणीपर एक तिरछी चितवनका वार किया। सहसा अंधेरा मानो दूर हो गया। महेन्द्रने देखा कि यह चितवन तो मर्दकी नहीं, स्त्रीकी है! बड़ा साहस कर महेन्द्रने नवीनानन्दकी दाढ़ी पकड़के खींच ली। नकली दाढ़ी-मूंछ एक ही झटकेमें नीचे गिर पड़ी। इसी समय अवसर पाकर कल्याणीने उसके बघछालेकी गांठ खोल डाली। बघछाला भी नीचे गिर पड़ा। यों परदा खुलते देख, शान्ति सिर झुकाये खड़ी रह गयी।

तब महेन्द्रने शान्तिसे पूछा—"तुम कौन हो ?"

शान्ति—"श्रीमान् नवीनानन्द गोस्वामी।"

महेन्द्र—"यह सब धप्पेबाजी है। तुम स्त्री हो।"

शान्ति—"अच्छा, स्त्री ही सही।"

महेन्द्र—"अच्छा, यह तो कहो, तुम स्त्री होकर हरदम जीवानन्दजीके साथ क्यों रहती हो?"

शान्ति—"मान लीजिये, कि मैंने यह बात आपसे नहीं कही।"

महेन्द्र—"क्या जीवानन्द यह जानते हैं कि तुम स्त्री हो?"

शान्ति—"हाँ, जानते हैं।"

यह सुनकर विशुद्धात्मा महेन्द्र बड़े ही दुःखित हुए। अब तो कल्याणीसे न रहा गया। वह झट बोल उठी, "ये जीवानन्द महाराजकी धर्मपत्नी, श्रीमती शान्तिदेवी हैं।"

क्षण भरके लिये महेन्द्रके चेहरेपर प्रसन्नता छा गयी। फिर उसपर अँधेरा छा गया। कल्याणी इसका मतलब समझ गयी, बोली—"यह पूर्ण ब्रह्मचारिणी है।"

चौथा परिच्छेद

उत्तरी बंगाल मुसलमानोंके हाथसे निकल गया। पर कोई मुसलमान इस बातको नहीं मानता। वे यही कहकर अपने मनको बहलाया करते हैं कि यह सब-कुछ लुटेरोंकी बदमाशी है। हम अभी उन्हें सर किये डालते हैं। इस तरह कितने दिनोंतक चलता, सो कहा नहीं जा सकता; परन्तु इस समय भगवान्‌की दयासे वारन हेस्टिंग्ज़ कलकत्तेमें बड़े लाट होकर आये। वे यों ही मनको बहलाकर रखनेवाले जीव नहीं थे; क्योंकि यदि उनमें यही गुण होता तो आज भारतमें वृटिश राज्यका कहीं पता न चलता। सन्तानोंके शासनके लिये मेजर एडवार्डिस नामके दूसरे सेनापति नयी सेना लिये हुए फौरन आ पहुंचे।

एडवार्डिसने देखा कि यह तो युरोपियनोंकी लड़ाई नहीं है।

शत्रुओंके पास न सेना है, न नगर है, न राजधानी है, न किला है, पर कुछ न होनेपर भी सब कुछ उन्हींके अधीन है। जिस दिन जहाँपर बृटिश सेनाका पड़ाव होता है उसी दिनभरके लिये वहाँ बृटिश सेनाका अधिकार हो जाता है। उसी दिनभरके लिये जब अंगरेजी सेना वहाँसे चली जाती है, तब फिर हर जगह वन्देमातरम्" का गान होने लगता है। साहबको इस बातकी थाह नहीं लगने पाती कि ये किधरसे टिड्डियोंके दलकी तरह रात-ही-भरमें पैदा हो जाते हैं और जो गाँव अंगरेजोंके दखलमें आता है, उसे जला जाते अथवा थोड़ीसी अंगरेजी फौज होनेसे उसे तत्काल नष्ट कर डालते हैं। अनुसन्धान करते करते साहबको मालूम हुआ कि इन लोगोंने पदचिह्नमें किला बनाया है और वहीं खजाना और सिलहखाना बना रखा है। अतएव उन्होंने निश्चय किया कि उसी किलेको हाथमें कर लेना चाहिये।

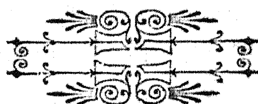
उन्होंने जासूसोंसे इस बातकी जोह लेनी शुरू की कि पदचिह्नमें कितने सन्तान रहते हैं। उन्हें जो खबर मिली, उससे उन्होंने किलेपर हमला करना अच्छा नहीं समझा। उन्होंने मन-ही-मन एक बड़ी विचित्र चाल सोची।

माघकी पूर्णिमा आ पहुंची थी। उनके पड़ावसे थोड़ी दूरपर नदीके किनारे एक मेला लगता था। इस बार मेला जोरोंपर था। यों तो हर बार ही यहाँ एक लाख आदमी जमा हो जाया करते थे। अबकी तो वैष्णव राजा हुए थे। उन लोगोंने इस बारके मेलेको और भी भड़कीला बनानेका विचार किया था। इसीसे अनुमान था कि जितने सन्तान हैं, सभी पूर्णिमाके दिन मेलेमें आ पहुंचेंगे। मेजर एडवार्डिसने सोचा कि सम्भव है, पदचिह्नके रक्षकगण भी मेलेमें ही चले आयें। अतएव हम उसी दिन पदचिह्नपर अधिकार कर लेंगे।

इसी अभिप्रायसे मेजरने इस बातकी तमाम शोहरत कर दी कि वे मेलेके दिन वहांके लोगोंपर हमला करेंगे। सब वैष्णव

उस दिन यहीं आकर जमा होंगे, इसलिये एक ही दिनमें, एक ही स्थानमें, वे सबका काम तमाम कर देना चाहते हैं। यह खबर गाँव-गाँवमें फैल गयी। फिर तो जो सन्तान जहाँ था, वह उसी क्षण वहाँसे हथियार लिये हुए मेलेकी रक्षा करनेके लिये दौड़ पड़ा। सभी सन्तान माघी पूर्णिमाके दिन नदीके तीरपर मेलेमें आ इकट्ठे हुए। मेजर-साहबका सोचना बिलकुल ठीक निकला। अंगरेजोंके सौभाग्यसे महेन्द्र भी इस फन्देमें आ पड़े। वे थोड़ेसे ही सैनिकोंको पदचिह्नमें रखकर, अधिकांश सैनिकोंको लिये हुए मेलेमें चले आये। इन सब बातोंके पहले ही जीवानन्द और शान्ति पदचिह्नसे बाहर चले गये थे। उस समय युद्धकी कोई बात ही नहीं हुई, क्योंकि उन लोगोंकी तबियत ही लड़ाई-भिड़ाईसे फिरी हुई थी। माघी पूर्णिमाके पुण्य दिवसके अच्छे मुहूर्त्तमें, पवित्र जलमें प्राण विसर्जन कर प्रतिज्ञा-भङ्गरूपी महापापका प्रायश्चित्त करनेका ही उनका विचार था। रास्तेमें जाते-जाते उन्होंने सुना कि मेलेमें जमा हुए सन्तानोंके साथ अंगरेजी सेनासे युद्ध होगा। यह सुनकर जीवानन्दने कहा— "तब चलो, झटपट वहीं चलें। युद्धमें ही प्राण दे देंगे।"

वे जल्दी-जल्दी पैर बढ़ाते हुए चले। एक जगह रास्ता एक टीलेके ऊपरसे गया था। टीलेपर चढ़कर उस वीर दम्पतिने देखा कि उसके नीचे थोड़ी ही दूरपर अंगरेजोंकी सेनाका पड़ाव है। शान्तिने कहा—"मरनेकी बात तो अभी रहने दो——बोलो, "वन्दे मातरम्।"



पांचवां परिच्छेद

—:o*o:—

फिर दोनोंने चुपचाप न जाने क्या सलाह की। इसके बाद जीवानन्द एक जंगलमें छिप गये और शान्ति एक दूसरे जंगलमें जाकर अद्भुत काण्ड रचनेकी तैयारी करने लगी।

शान्ति मरने जा रही थी; पर उसने सोच लिया था कि मैं मरते समय स्त्रीका ही वेश बनाये रखूंगी। महेन्द्रने उससे कहा था कि पुरुषका वेश बनाना धोखेबाजी है। इसलिये धोखेका रूप बनाकर मरना अच्छा नहीं। यही सोचकर वह अपनी पिटारी और सिन्दूरकी डिबिया साथ लिये आयी थी। उन्हींमें उसके श्रृंगारकी सब चीजें रहती थीं। अबकी नवीनानन्द वही पिटारी और डिबिया खोलकर अपना वेश बदलने लगे।

उस समयकी रीतिके अनुसार शान्तिने अपने लहराते हुए बालोंके गुच्छे इधर-उधर लटकते छोड़ दिये और उन्हींके भीतर मुंहको छिपाये, माथेमें चन्दन और कत्थेकी सुन्दर बिन्दी लगाये, हाथमें एक सारंगी लिये, खासी वैष्णवी बनी हुई, अंगरेजी सेनाके पड़ावपर आ पहुंची। उसे देखते ही कड़ी-कड़ी मूछोंवाले सिपाही उसपर लट्टू हो गये। किसीने ठप्पा, किसीने गजल, किसीने राधाके सम्बन्धके गीत और किसीने कृष्णावतारके भजन गानेके लिये फरमायश कर डाली और मनमाने गीत सुन, किसीने चावल, किसीने दारू, किसीने मिठाई, किसीने पैसे दिये और किसीने चवन्नीतक दे डाली। वैष्णवी जब वहांका सारा हाल अपनी आँखों देखकर लौटने लगी, तब सिपाहियोंने उससे पूछा—"अब फिर कब आओगी?" वैष्णवीने कहा—"कुछ कह नहीं सकती; क्योंकि मेरा मकान बहुत दूर है।" सिपाहियोंने पूछा—"कितनी दूर है?" वैष्णवीने कहा—"मेरा

घर पदचिह्न गांवमें है।" इधर उसी दिन मेजर-साहब पदचिह्नका हालचाल इधर-उधरसे मालूम कर रहे थे। एक सिपाहीको यह बात मालूम थी। वह वैष्णवीको लिये हुये कप्तान-साहबके पास चला गया। साहब उसे मेजर साहबके पास ले गया। मेजर-साहबके पास पहुंचकर वैष्णवीने मधुर मुस्कान छोड़ते हुए, एक तिरछी चितवनका वार साहबके कलेजेपर कर उन्हें पागल बनाते हुए, खंजरी बजाकर गाना शुरू किया,—

"म्लेच्छनिवह निधने कलयसि करवालम्।"

साहबने पूछा—"क्यों बीबी! टुमारा घार कहांपर हाय?"

वैष्णवीने कहा—"मैं बीवी नहीं, वैष्णवी हूं। मेरा घर पद-चिह्न ग्राममें है।"

साहब—"हुआं एक गार हाय?"

वैष्णवी—"घर? घर तो वहां बहुतसे हैं।"

साहब—"गर नहीं, गार, गार—"

वैष्णवी—"अच्छा साहब! मैं तुम्हारे मतलबकी बात समझ गयी। तुम गढ़की बात पूछते हो?"

साहब—"हाँय, हाँय, गार, गार, गार, हाँय?"

शान्ति—"गढ़ क्यों नहीं है? बड़ा भारी किला है।"

साहब—"किटना आडमी हाय?"

शान्ति—"वहां कितने आदमी रहते हैं" यह पूछते हो? चालीस-पचास हजार होंगे।"

साहब—"नोन्सेन्स, एक केल्लामें दो-चार हजार रहने सकटा है। हुआँपर आबी हाय, इया निकाल गिया?"

शान्ति—"अब वे कहां निकलकर जायेंगे?"

साहब—"मेलामें। टुम कब आया हुआंसे?"

शान्ति—"कल आयी हूं, साहब!"

साहब—"वह लोग आज निकाल गिया होगा।"

शान्ति मन-ही-मन सोच रही थी—"साहब! यदि मैंने तेरे

बापका श्राद्ध नहीं कर डाला तो फिर मेरा वैष्णवी बनना ही व्यर्थ है। मैं देखूंगी कि तेरा सिर सियार कितनी देरमें खाते हैं।"

ऊपरसे बोली—"हां, यह तो हो सकता है कि वे आज बाहर हुए हों। मैं क्या जानूं? मैं गरीब भिखमंगिन ठहरी, गीत गा-गाकर भीख मांगती-फिरती हूं, मुझे इन बातोंका क्या पता? बकते-बकते तो गला सूख गया। लाओ पैसा दो। ले-देकर चल दूं। और यदि अच्छी रकम इनाममें देना कुबूल करो तो तुम्हें परसों आकर वहांका राई-रत्ती हाल बतला जाऊंगी।"

साहबने झटसे एक रुपया निकाल शान्तिकी ओर फेंककर कहा—"परसों नहीं बीबी!"

शान्तिने कहा—"अरे जा बे मुए! बीबी क्यों कहता है? वैष्णवी कह, वैष्णवी।"

एडवार्डिस,—"परसों नहीं, हमको आज रातको खबार मिलनी चाहिये।"

शान्ति—"अबे जा अभागे! सिरके नीचे बन्दूक रख, शराब पी, कानमें तेल डाल, सो रह। आज मैं दस कोस जाऊं, दस कोस आऊं और इनको राततक खबर ला दूं। चल हट, हरामी कहींका।"

साहब—"हरामी किसको बोलटा है?"

शान्ति—"जो बड़ा वीर, भारी जर्नैल होता है।"

एड०—"ओह! हाम क्लाइवका माफिक भारी जर्नैल होने सकटा है। लेकिन आज हमको खबर मिलना चाहिये। हम टुमको एक साव रुपिया बकसीस देगा।"

शान्ति—"सौ दो, चाहे हजार दो, इन टांगोंसे तो बीस कोस चलना दुश्वार है।"

एड०—"घोरा पर चार कर जाओ।"

शान्ति—"यदि घोड़ेपर ही चढ़ना आता, तो मैं तुम्हारे खेमेमें भीख मांगने आती?"

साहब—"एक आदमी तुमको गोदमें ले जायगा।"

शान्ति—"तू मुझे गोदमें बैठाकर ले जायगा, क्या मुझे लज्जा नहीं लगती ?"

साहब—"किया मुसकिल ? हम टुमको पांच सात रुपिया डेगा।"

शान्ति—"अच्छा, कौन जायगा ? क्या तू ही जायगा ?"

यह सुन, साहबने खड़े हुए लिण्डले नामक एक नौजवान सिपाहीकी ओर अंगुलीसे इशारा कर कहा—"क्यों लिण्डले! तुम जाओगे ?"

लिण्डलेने शान्तिका रूप-यौवन देखकर कहा—"बड़ी खुशीसे।"

एक खूब बढ़िया अरबी घोड़ा कसकर तैयार किया गया। लिण्डले तैयार होकर चला गया। जब वह शान्तिका हाथ पकड़कर उसे घोड़ेपर चढ़ाने गया, तब शान्तिने कहा, "छिः छिः इतने आदमियोंके सामने ? क्या मेरे लाज-शर्म नहीं ? चलो, आगे बढ़ो ; इस छावनीके बाहर चलो।"

लिण्डले घोड़ेपर सवार हो, धीरे-धीरे घोड़ेको बढ़ा ले चला। शान्ति पीछे चली। इसी तरह आगे-पीछे चलते हुए वे लोग पड़ावके बाहर हो गये।

शिविरके बाहर आ, सुनसान मैदान देखकर शान्ति लिण्डले-के परपर पर रखकर एक ही उछालमें घोड़ेपर चढ़ गयी। लिण्डलेने मुसकराते हुए कहा, "टुम टो पक्का घोरसवार हाय।" शान्तिने कहा—"हम लोग ऐसे पक्के घुड़सवार हैं कि तुम लोगोंके साथ घोड़ा चढ़ते हमलोगोंको शर्म मालूम होता है। छिः! रिकाबपर पांव रखकर घोड़ा चढ़ना भी कोई घुड़सवारी है ?"

यह सुन, लिण्डलेने अपनी हेकड़ी भरनेके लिये झटपट रिकाब-से पांव निकाल लिये। यह देखते ही शान्तिने उस बेवकूफ अंगरेजके बच्चेके गलेमें हाथ डालकर उसे घोड़ेसे नीचे गिरा

दिया। शान्ति अच्छी तरह घोड़ेपर आसन जमा, उसे एँड़ लगाती हुई, तीरकी तरह दौड़ा ले चली। चार वर्षतक सन्तानोंके साथ रहकर शान्तिने घुड़सवारी करना अच्छी तरह सीख लिया था। अगर घुड़सवारी नहीं जानती होती तो जीवानन्दके साथ थोड़े ही रह सकती थी! लिण्डलेका पैर टूट गया। वह जहांका-तहां पड़ा रह गया। शान्ति हवासे बातें करती हुई घोड़ेको दौड़ाती चली गयी।

जिस वनमें जीवानन्द छिपे हुए थे, वहीं पहुंचकर शान्तिने जीवानन्दको सब समाचार सुनाया। जीवानन्दने कहा—"अच्छा, तो मैं अभी जाकर महेन्द्रको होशियार किये देता हूं। तुम मेलेमें जाकर सत्यानन्दको खबर दो। बस, घोड़ा दौड़ाये चली जाओ, जिसमें प्रभुको तुरन्त समाचार मिल जाय।"

अब तो दोनों व्यक्ति दो तरफको रवाना हो गये। कहना व्यर्थ है कि शान्तिने फिर नवीनानन्दका रूप बना लिया।

छठा परिच्छेद

एडवार्डिस पक्का अंगरेज था। नाके-नाकेपर उसने अपने आदमी मुकर्रर कर दिये थे। शीघ्र ही उसके पास खबर पहुंची कि उस वैष्णवीने लिण्डलेको घोड़ेसे नीचे गिरा दिया और आप घोड़ा दौड़ाये हुए न जाने किधर भाग गयी। सुनते ही वह बोल उठा—"अरे वह तो पूरी शैतानकी खाला निकली! अभी खीमे उठाओ।"

अब तो चारों तरफ डेरे तम्बुओंके खूंटोंपर हथौड़ेकी चोट पड़ने लगी। मेघ-रचित अमरावतीकी तरह वह वस्त्र-नगरी बातकी बातमें आँखोंकी ओट हो गयी। सारा सामान गाड़ियों-पर लादा गया। कुछ मनुष्य घोड़ोंपर और कुछ पैदल चल पड़े।

हिन्दू, मुसलमान, मद्रासी और गोरे सिपाही कन्धेपर बन्दूक रखे, जूते मचमचाते हुए कूच करने लगे। तोप खींचनेवाली गाड़ियाँ घरघराती हुई जाने लगीं।

इधर महेन्द्र सन्तान-सेना लिये हुए धीरे-धीरे मेलेकी तरफ बढ़े आ रहे थे। उसी दिन तीसरे पहर उन्होंने दिन ढलते देख, एक जगह डेरा डालनेका विचार किया। उस समय उन्होंने डेरा डालना ही उचित समझा। वैष्णवोंके पास डेरे-तम्बू तो होते नहीं। वे पेड़ोंके नीचे टाट या कथरी बिछाकर सो रहते हैं। कभी थोड़ासा हरिचरणामृत पीकर ही रात बिता देते हैं। यदि थोड़ी-बहुत क्षुधा बाकी रहती है तो वह स्वप्नमें वैष्णवीके अधरामृत पान करनेसे ही मिट जाती है? पास ही एक जगह ठहरनेयोग्य स्थान था। एक बड़ा भारी बागीचा था, जिसमें आम, कटहल, बबूल और इमलीके बहुतसे पेड़ लगे हुए थे। महेन्द्रने आज्ञा दी—"यहीं डेरा डालो।" उसके पास ही एक टीला था, जो बड़ा ऊबड़-खाबड़ था। महेन्द्रने एक बार सोचा कि उसी टीलेपर डेरा डाला जाय। इसीसे उन्होंने उस जगहको देख आनेका विचार किया।

यही विचारकर वे घोड़ेपर सवार हो, धीरे-धीरे उस टीलेपर चढ़ने लगे। वे कुछ ही दूर गये होंगे कि एक युवा वैष्णव सेनाके बीचमें आकर बोला—"चलो,चलो, टीलेपर चढ़ चलो।" आसपासके लोग अचरजमें आकर पूछ बैठे—"क्यों, क्यों, मामला क्या है?"

वह योद्धा एक मिट्टीके ढेरपर खड़ा होकर बोला—"चलो, इस चाँदनी रातमें उस पर्वत-शिखरपर चढ़कर नूतन वसन्तके नूतन पुष्पोंकी सुगन्धका आनन्द लेते हुए आज हम लोग शत्रुओंसे युद्ध करें।" सन्तानोंने देखा कि ये तो सेनापति जीवानन्द हैं, तब 'हरे मुरारे'का उच्च निनाद करते हुए सभी सन्तानगण भालेको जमीनमें टेककर उसीसे अड़कर खड़े हो रहे और

तदनन्तर जीवानन्दके पीछे-पीछे बड़ी तेजीके साथ उस टीलेपर चढ़ने लगे। एकने सजा-सजाया घोड़ा लाकर जीवानन्दको दिया। दूर-ही-से यह सब हाल देखकर महेन्द्र भौंचकसे हो रहे। उनकी समझमें न आया कि ये लोग बिना बुलाये क्यों चले आ रहे हैं?

यही सोच, महेन्द्रने घोड़ेका रुख फेर दिया और चाबुककी मारसे घोड़ेकी पीठका खून निकालते हुए पर्वतसे नीचे उतरने लगे। सन्तान-सेनाके आगे-आगे चलनेवाले जीवानन्दको देखकर महेन्द्रने पूछा—"आज यह कैसा आनन्द है?"

जीवानन्दने हंसकर कहा—"आज तो बड़ा ही आनन्द है। टीलेके उसी पार एडवार्डिस-साहब हैं। जो पहले ऊपर चढ़ जायगा, उसीकी जीत होगी।"

यह कह, जीवानन्दने सन्तान-सेनाकी ओर फिरकर कहा,—"तुम लोग मुझे पहचानते हो या नहीं? मैं हूं जीवानन्द गोस्वामी। मैंने हजारोंके प्राण ले डाले हैं।"

घोर कोलाहलसे कानन और प्रान्तरको प्रतिध्वनित करते हुए सब-के-सब एक साथ कह उठे—"हाँ, हम लोग आपको पहचानते हैं, आप ही जीवानन्द गोस्वामी हैं।"

जीवा०—"बोलो, हरे मुरारे।"

वह कानन प्रान्तर एक बार सहस्र सहस्र कण्ठोंकी ध्वनिसे गूंज उठा। सब-के-सब एक साथ "हरे मुरारे!" कह उठे।

जीवा०—"टीलेके उसी पार शत्रु मौजूद हैं। आज ही इस स्तूप-शिखरपर खड़े होकर हम लोग इस नीलाम्बरी यामिनीके रहते-रहते युद्ध करेंगे। जल्दी आओ; जो पहले शिखरपर चढ़ेगा, वही जीतेगा। बोलो! वन्देमातरम्।"

इसके बाद ही कानन प्रान्तर प्रतिध्वनित करता हुआ 'वन्दे-मातरम्' का गाना गूंज उठा। धीरे-धीरे सन्तान-सेना पर्वत शिखरपर चढ़ने लगी। पर उन लोगोंने एकाएक सभीत होकर

देखा कि महेन्द्रसिंह बड़ी जल्दी-जल्दी नीचे उतरते हुए तुरही बजा रहे हैं। देखते-ही-देखते टीलेके शिखर-प्रदेशमें तोपें लिये हुई अंगरेजोंकी गोलन्दाज पलटन आ पहुंची। ऐसा मालूम होने लगा, मानों वह नीले आसमानपर चढ़ी जा रही है। वैष्णवी सेना ऊंचे स्वरसे गा उठी—

"तुम्ही विद्या, तुम्ही भक्ति,
तुमही हो माँ, सारी शक्ति।
त्वं हि प्राणा शरीरे!"

पर अंगरेजोंकी तोपोंकी अरर धायंमें वह गीतध्वनि मानों डूब गयी। सैकड़ों सन्तान हताहत हो, हथियार-बन्दूक लिये जमीनपर ढेर हो गये। फिर अरर-धायंकी आवाज दधीचिकी हड्डियोंको मात करती, समुद्रकी तरङ्गोंको तुच्छ करती, इन्द्रके वज्रोंकी याद दिलाने लगी। जैसे किसानके हंसियेके सामने पके हुए धानके पौधोंके ढेर लग जाते हैं, वैसे ही सन्तान-सेना खण्ड-खण्ड होकर धराशायी होने लगी। जीवानन्द और महेन्द्रके सारे यत्न व्यर्थ होने लगे। पहाड़से नीचे गिरनेवाले पत्थरके ढोकोंकी तरह सन्तान-सेना टीलेसे नीचे उतरने लगी। कौन किधर भागा जा रहा है, कोई ठिकाना नहीं। इसी समय सबका एक ही साथ संहार करनेके लिये "हुर्रे, हुर्रे" का हल्ला मचाती हुई गोरी पलटन नीचे उतर पड़ी। पर्वतसे निकली हुई विशाल नदीके झरनेकी तरह न रुकनेवाली अजेय बृटिश सेना बड़े झपाटे-के साथ सङ्गीन ऊपर उठाये, उस भागती हुई सन्तान-सेनाका पीछा करने लगी। जीवानन्द सिर्फ एक बार महेन्द्रसे मिल सके—बोले "आओ, हम लोग यहीं प्राण दे दें।"

महेन्द्रने कहा—"मरनेसे ही यदि युद्धमें जय मिलती होती तो मैं जरूर प्राण दे देता; पर व्यर्थ प्राण गंवाना तो वीरोंका काम नहीं है।"

जीवा०—"अच्छा; मैं वृथा ही प्राण दूंगा। लड़ाईमें ही मरूंगा।"

तब पीछे मुड़कर जीवानन्दने बड़े जोरसे ललकारकर कहा—"कौन हरिनाम लेते हुए मरना चाहता है? जो चाहता हो, वह मेरा साथ दे।"

बहुतेरे आगे बढ़ आये। जीवानन्दने कहा—"ऐसे नहीं, ईश्वरको साक्षी कर शपथ करो कि देहमें प्राण रहते पीछे पैर न देंगे।"

जो आगे बढ़े थे, वे पीछे हट गये। जीवानन्दने कहा—"कोई नहीं आता? अच्छा, तो मैं अकेला ही चलता हूं।"

जीवानन्दने घोड़ेपर सवार हो, बहुत दूरपर पीछेकी ओर खड़े महेन्द्रको पुकारकर कहा—"भाई! नवीनानन्दसे कहना कि मैं तो अब सदाके लिये संसारसे विदा होता हूं। उनसे परलोकमें ही मिलना होगा।"

यह कह, वह वीर पुरुष गोलियोंकी बौछारकी कुछ भी परवा न कर घोड़ेको आगे बढ़ा और बायें हाथमें भाला, दाहिनेमें बन्दूक लिये, मुंहसे 'हरे मुरारे' कहते हुए आगे बढ़ा। युद्धकी कोई सम्भावना नहीं—उतने बड़े साहसका कोई फल नहीं—तो भी 'हरे मुरारे,' 'हरे मुरारे' कहते हुए जीवानन्द शत्रुओंके व्यूहमें घुस पड़े!

महेन्द्रने भागते हुए सन्तानोंको पुकारकर कहा—"देखो, एक बार तुम लोगोंको लौटकर जीवानन्द गुसाईंको देखना चाहिये। तुम लोगोंके पहुंच जानेसे वह प्राण न देंगे।" लौटकर कितने ही सन्तानोंने जीवानन्दकी अमानुषी कीर्त्ति देखी। पहले तो वे बड़ेही विस्मित हुए। इसके बाद कह उठे,—"क्या जीवानन्दही मरना जानता है? हम लोग नहीं जानते? चलो, हम सब ही जीवानन्दके साथ-साथ बैकुण्ठको चले चलें।"

यह बात सुन, कितने ही सन्तान आगे बढ़े। उनकी देखा-

देखी और भी कुछ लोग आगे आये। उन्हें आगे बढ़ते देख, कुछ और लोग आगे बढ़ते नजर आये। बड़ा शोर-गुल मच गया, उस समयतक जीवानन्द शत्रुके व्यूहमें घुस चुके थे। सन्तान सेना फिर उन्हें न देख सकी।

इधर समस्त रणक्षेत्रके सन्तानोंने देखा कि फिर बहुतसे सन्तान लौटे आ रहे हैं। सबने सोचा कि शायद सन्तानोंकी जीत हो गयी। उन्होंने शत्रुको मार भगाया। यह देख, सारी सन्तान-सेना 'मार-मार' की आवाज करती हुई अंगरेजी फौजका पीछा करने लगी।

इधर अंगरेजी सेनामें भी बड़ा भारी गोलमाल मचा हुआ था। सिपाहियोंने युद्धकी चिन्ता छोड़, भागना शुरू कर दिया था और गोरे संगीन उठाये अपने अपने डेरोंकी ओर दौड़े चले जा रहे थे। इधर-उधर नजर दौड़ाकर महेन्द्रने देखा कि टीलेके ऊपर बहुत सी सन्तान-सेना दिखाई दे रही है। उन्होंने और भी देखा कि वे नीचे उतरकर अंगरेजी फौजपर बड़ी बहादुरीके साथ हमला कर रहे हैं। उस समय उन्होंने सन्तानोंको पुकार कर कहा—"सन्तानगण! देखो, शिखरपर प्रभु सत्यानन्द गोस्वामीकी ध्वजा फहराती हुई दिखाई दे रही है। आज स्वयं मुरारि, मधुकैटभारि, कंस केशिनाशकारी, रणमें अवतीर्ण हुए हैं—आज लाखों सन्तान उस टीलेपर जमा हैं। बोलो—हरे मुरारे! हरे मुरारे! मुसलमानोंको जहां पाओ, मार गिराओ। आज एक लाख सन्तान टीलेपर आकर जमा हैं।"

उस समय 'हरे मुरारे' की भीषण ध्वनिसे सारा कानन प्रान्तर मथित होने लगा। सभी सन्तान 'मा भैः, मा भैः' का-रव करते, ललित तालपर अस्त्रोंको झनकारते हुए सब जीवोंको विमोहित करने लगे। शाही पलटन पत्थरसे टकराई हुई निर्झरिणोकी तरह ठोकर खाकर भौंचकसी हो रही, डर गयी और तितर बितर होने लगी। इसी समय पच्चीस सन्तानोंकी सेना

लिये हुए सत्यानन्द ब्रह्मचारी शिखरसे समुद्रप्रपातकी तरह उनके ऊपर आ पड़े। बड़ी घनघोर लड़ाई हुई।

जैसे दो बड़े-बड़े पत्थरोंके बीच पड़कर छोटी-सी मक्खी पिस जाती है, वैसे ही दोनों सन्तान-सेनाओंके बीच पड़कर राजकीय सेना मसल डाली गयी।

एक भी प्राणी जीता न बचा, जो वारन हेस्टिंग्जके पास संवाद लेकर जाय।

सातवां परिच्छेद

आज पूनो है। वह भीषण रणक्षेत्र इस समय सुनसान हो रहा है। वह घोड़ोंकी उछल-कूद, बन्दूकोंकी कड़कड़ाहट, तोपोंकी गड़गड़ाहट न रही। जो नीचेसे ऊपरतक धुआं-ही-धुआं नजर आता था, वह कैफियत जाती रही। इस समय न तो कोई 'हुर्रे' कहता है, न हरिध्वनि कर रहा है। केवल स्यार कुत्ते और गीध शोर मचाए हुए हैं। इससे भी भीषण वह घायलोंका रह रहकर कराहना है। किसीका हाथ कट गया है, किसीका सिर कट गया है; किसीका पैर ही टूट गया है। कोई बाप-बाप चिल्ला रहा है, कोई पानी माँग रहा है, कोई मौतकी घड़ियां गिन रहा है। बङ्गाली, हिन्दुस्थानी, अंगरेज, मुसलमान—सब साथ ही पड़े हुए हैं। जिन्दों और मुर्दोंकी, आदमियों और घोड़ोंकी आपसमें खूब रेलापेली मची हुई है। उस माघकी पूर्णिमाकी उजियाली रातमें वह रणभूमि बड़ी भयङ्कर मालूम पड़ रही थी। किसीकी उधर जानेकी हिम्मत नहीं पड़ती थी।

औरोंकी भले ही हिम्मत न पड़ती हो; पर आधी रातके समय एक स्त्री उस अगम्य रणक्षेत्रमें आकर इधर-उधर घूम रही थी। हाथमें एक मशाल लिये वह उन मुर्दोंके ढेरमें न जाने किसे ढूंढ़ रही थी। वह प्रत्येक शवके पास पहुंचकर मशालकी

रोशनीसे चेहरा देखकर आगे बढ़ जाती थी। वह जहां कहीं किसी लाशको घोड़ेके नीचे पड़ी पाती, वहीं मशालको नीचे रखकर घोड़ेकी लाशको दोनों हाथोंसे हटाती और उस लाशको देखने लगती। देखनेपर जब उसे यह मालूम हो जाता कि यह लाश तो उसकी नहीं है, जिसे मैं ढूंढ़ रही हूं, तब वह वहाँसे चल देती थी। इस तरह घूमती-फिरती हुई वह सारा मैदान ढूंढ़ आयी पर जिसे वह खोजती थी, उसे उसने कहीं नहीं पाया। तब लाचार हो, मशाल फेंक, उस मुर्दोंके ढेरसे भरे और खूनसे रंगे हुए युद्ध-क्षेत्रमें लोट लोटकर रोने लगी। वह थी शांति। वह जीवानन्दकी लाश ढूंढ़ रही थी।

शान्ति जमीनमें पड़ी लोट लोटकर रोने लगी। इसी समय एक अत्यन्त मधुर और करुणा भरी ध्वनि उसके कानमें पड़ी। उसने सुना, मानों कोई कह रहा है—"बेटी, रोओ मत।" शान्तिने आँखें उठाकर चन्द्रमाके प्रकाशमें देखा कि सामने ही एक अपूर्व दर्शनीय जटाजूटधारी महापुरुष खड़े हैं। उनका डील-डौल बड़ा लम्बा-चौड़ा है।

शान्ति उठकर खड़ी हो गयी। आनेवाले महात्माने कहा—"देखो बेटी! रोओ मत। तुम मेरे साथ साथ आओ। मैं जीवानन्दकी लाश ढूंढ़ लाता हूं।"

यह कह, वे महापुरुष शान्तिको रणक्षेत्रके बीचोंबीच ले गये। वहीं एक-पर-एक असंख्य लाशोंके ढेर लगे हुए थे। शान्ति उन्हें हटा नहीं सकती थी। उन्हीं महा बलवान पुरुषने एक एक करके उन लाशोंको हटाते हुए एक लाश बाहर निकाली। शान्ति झट पहचान गयी कि यह लाश जीवानन्दकी है। उनके सारे शरीरमें घाव लगे हुए थे, जिनसे सर्वाङ्ग लहूमें लथपथ हो रहा था। शान्ति साधारण स्त्रियोंकी तरह फूट-फूटकर रोने लगी।

महात्माने फिर कहा—"रोओ मत! जीवानन्द मरा नहीं

है। तुम चित्त स्थिर कर जरा इस लाशकी परीक्षा करके देखो। पहले नाड़ी देखो।"

शान्तिने उस लाशकी नाड़ी पकड़कर देखी। नाड़ीमें एकदम गति नहीं थी। उन्हीं महापुरुषने कहा—"छातीपर हाथ रखकर देखो।"

शान्तिने कलेजेपर हाथ रखकर देखा कि धड़कन एकदम नहीं है। सारी देह ठण्ढी हो रही है।

उस पुरुषने फिर कहा—"नाकके पास हाथ ले जाकर देखो, सांस चलती है या नहीं?"

शान्तिने देखा, सांस बिलकुल बन्द है।

उस पुरुषने कहा—"अच्छा, अबकी बार मुंहमें उंगली डालकर देखो, कुछ गरमी मालूम होती है या नहीं?"

शान्तिने उंगली मुंहमें डालकर देखा और कहा--"मेरी समझ में तो कुछ भी नहीं आता।"शान्तिके मनमें आशा पैदा हो रही थी।

महापुरुषने बायें हाथसे जीवानन्दकी लाश छुई। बोले--"तुम बहुत डर गयी हो, हिम्मत हार गयी हो, इसीसे तुम्हें नहीं मालूम पड़ता। एक बार फिर देखो। मुझे तो अबतक शरीरमें कुछ गरमी मालूम पड़ती है।"

शान्तिने अबकी फिर नाड़ी देखी, कुछ-कुछ चलती जान पड़ी। अचरजमें आकर उसने कलेजेपर भी हाथ रखकर देखा—वह भी कुछ-कुछ धड़कता हुआ मालूम पड़ा। नाकके पास उंगली ले जाते ही सांस चलनेकी आहट मिली। मुखके भीतर भी गरमी मालूम पड़ी।

शान्तिने पूछा—"क्या अबतक इस शरीरमें प्राण थे? अथवा आपने नयी जान डाल दी है?"

वे बोले—"बेटी! कहीं ऐसा भी होता है! क्या तुम उसे ढोकर तालाबके पास ले चल सकती हो? मैं चिकित्सक हूं। वहीं उसकी चिकित्सा करूंगा।"

शान्तिने झटपट जीवानन्दको गोदमें उठा लिया और तालाबकी ओर ले चली। महापुरुषने कहा—"तुम उसे तालाबके पास ले जाकर जहां जहां खून लगा है सब अच्छी तरहसे धो डालो।"

शान्तिने जीवानन्दको तालाबके पास ले जाकर खूनके सब दाग धोये। तबतक वे महापुरुष जङ्गली लता-पत्रोंका प्रलेप बनाये हुए आ पहुंचे। उन्होंने तमाम जख्मोंके ऊपर वही लेप लगा दिया और बारबार जीवानन्दके शरीरपर हाथ फेरना शुरू किया। थोड़ी ही देरमें जीवानन्द चटपट उठ बैठे। उठते ही उन्होंने शान्तिकी ओर देखते हुए कहा—"युद्धमें किसकी जय हुई!"

शान्तिने कहा—"तुम्हारी। इन महात्माको प्रणाम करो।" उसी क्षण सबने देखा, वहां तो किसीका पता भी नहीं है। अब वे प्रणाम किसको करें?

इधर पास ही जीतकी खुशीमें फूली हुई सन्तान-सेना बड़ा ऊधम उत्पात मचाये हुए थी। पर शान्ति और जीवानन्द वहांसे हिलेतक नहीं, चुपचाप उस पूर्णिमाकी चांदनीमें चमकती हुई पुष्करिणीके घाटपर बैठे रहे। औषधके प्रभावसे जीवानन्दका शरीर तुरत भला-चङ्गा हो गया। उन्होंने कहा—"शान्ति! उस वैद्यकी औषधिका कैसा विचित्र चमत्कार है। मेरे शरीरमें इस समय न तो कहीं कुछ पीड़ा है, न किसी तरहकी थकावट मालूम होती है। अब चलो, कहां चलोगी? वह देखो सन्तान-सेनाके जय जयकारका शब्द सुनाई दे रहा है।"

शान्तिने कहा—"अब वहां नहीं—माताका कार्योद्धार हो चुका। देश सन्तानोंका हो गया। हम लोग कुछ राज्य हिस्सा बंटाना नहीं चाहते—अब वहां किस लिये चलें?"

जीवा०—"जो राज्य औरोंसे छीना है, उसकी अपने बाहु-बलसे रक्षा करेंगे।"

शान्ति—"रक्षा करनेके लिये महेन्द्र काफी हैं। स्वयं महाप्रभु सत्यानन्द मौजूद हैं। तुमने सन्तान-धर्मके लिहाजसे अपने पापका प्रायश्चित्त करनेके लिये देह-त्याग कर दिया था। अब फिरसे पाये हुए इस शरीरपर सन्तानोंका कोई दावा नहीं है। सन्तानोंके लेखे तो हम मर चुके। अब हमें देखनेपर सन्तानगण कह सकते हैं कि तुम युद्धके समय प्रायश्चित्त करनेके डरसे छिप गये थे और अब जीत होनेकी खबर पाकर राज्यमें हिस्सा बांटने आये हो।"

जीवा०—"यह क्या शान्ति? लोग बुराई करेंगे, इसी डर-से क्या मैं अपना काम छोड़ दूंगा? मेरा काम माताकी सेवा करना है। कोई कुछ भी क्यों न कहे, पर मैं मातृसेवा न छोड़ूंगा।"

शान्ति—"अब तुम ऐसा करनेके अधिकारी नहीं रहे; क्योंकि तुमने मातृसेवाके लिये अपनी जान दे दी थी। यदि फिर माताकी सेवा करने पाये, तो प्रायश्चित्त ही कौन-सा हुआ। मातृसेवासे वञ्चित होना ही इस प्रायश्चित्तका मुख्य अङ्ग है। नहीं तो केवल जान दे डालना ही क्या कोई बड़ा भारी काम है?"

जीवा०—"शान्ति! असली तत्वतक तुम्हीं पहुंचती हो। मैं अपने प्रायश्चित्तको अधूरा न रखूंगा। मेरा सुख सन्तानधर्मका पालन करना ही है, उसी सुखसे मैं अपनेको वञ्चित करूंगा। पर कहां जाऊं! मातृसेवा त्यागकर घर जा सुख भोगना तो अपनेसे नहीं बन पड़ेगा।"

शान्ति—"मैं भी तो घर जानेकी बात नहीं कह रही हूं। हम लोग अब गृहस्थ नहीं रहे। दोनों जने इसी तरह संन्यासी रहेंगे। सदा ब्रह्मचर्यका पालन करते रहेंगे। चलो हमलोग इधर-उधर तीर्थोंमें घूम-फिरकर दिन बितायें।"

जीवा०—"उसके बाद?"

शान्ति—"उसके बाद हिमालयपर कुटी बना दोनों जने देवताकी आराधना करेंगे और यही वर मागेंगे कि हमारी माताका मङ्गल हो।"

इसके बाद दोनों जने हाथमें हाथ मिलाये उस आधीरातके समय, उस निखरी हुई चांदनीमें न जाने किधर गायब हो गये।

हाय, मां! क्या वे फिर न आयेंगे! क्या तू जीवानन्द सा पुत्र और शांति-सी कन्या फिर नहीं उत्पन्न करेगी!

आठवां परिच्छेद



सत्यानन्द महाराज विना किसीसे कुछ कहे-सुने चुपचाप रणक्षेत्रसे आनन्दमठमें चले आये। वे वहाँ गम्भीर रात्रिमें विष्णु-मण्डपमें बैठे ध्यानमें डूबे हुए थे। इसी समय वही चिकित्सक वहां आ पहुंचे। देखकर सत्यानन्द उठ खड़े हुए और उन्होंने उन्हें प्रणाम किया।

चिकित्सकने कहा—"सत्यानन्द! आज माघकी पूर्णिमा है।"

सत्या०—"चलिये, मैं तैयार हूं; पर महात्माजी! कृपाकर मेरा एक सन्देह दूर कर दीजिये। इधर ज्योंही युद्धजय हुई, सनातनधर्म निष्कण्टक हुआ, त्योंही मुझे लौट चलनेकी आज्ञा क्यों दी जा रही है?"

आनेवालेने कहा—"तुम्हारा कार्य सिद्ध हो गया। मुसलमानोंका राज्य चौपट हो गया। अब यहाँ तुम्हारा कोई काम नहीं है। व्यर्थमें प्राणियोंकी हत्या करनेसे क्या काम है?"

सत्या०—"मुसलमानी राज्य चौपट हुआ सही; पर हिन्दुओंका राज्य तो नहीं स्थापित हुआ? इस समय कलकत्तेमें अंगरेजोंका जोर बढ़ता जा रहा है।"

महात्मा—"अभी हिन्दू-राज्यकी स्थापना नहीं हो सकती। तुम्हारे यहाँ रहनेसे व्यर्थ ही नरहत्या होगी, इसलिये चलो।"

यह सुनकर सत्यानन्दको बड़ी मर्मवेदना हुई। वे बोले—"प्रभो! यदि हिन्दुओंका राज्य न होगा, तो फिर किसका होगा? क्या फिर मुसलमान ही राजा होंगे?"

महात्मा—"नहीं, अब अंगरेजोंका ही राज्य स्थापित होगा।"

सत्यानन्दकी दोनों आँखोंसे आँसू बहने लगे। वे ऊपर रखी हुई मातृ-स्वरूपिणी मातृभूमिकी प्रतिमाकी ओर फिरकर, हाथ जोड़, रुंधे हुए कण्ठसे कहने लगे—"हाय! मां! मुझसे तुम्हारा उद्धार करते न बन पड़ा। तुम फिर म्लेछोंके ही हाथमें जा पड़ोगी। सन्तानोंका अपराध मत समझना। माता! आज रण-क्षेत्रमें ही मेरी मृत्यु क्यों न हो गयी?"

महात्माने कहा—"सत्यानन्द! कातर मत हो। तुमने बुद्धि-भ्रममें पड़कर दस्यु-वृत्तिद्वारा धन संग्रह कर लड़ाई जीती है। पापका फल कभी पवित्र नहीं होता। इसलिये तुम लोगोंसे इस देशका उद्धार न हो सकेगा। और जो कुछ होनेवाला है, वह अच्छा ही है। अंगरेजोंका राज्य हुए बिना सनातनधर्मका पुनरुद्धार नहीं हो सकता। महापुरुष लोग जिस तरह सब बातोंको समझा करते हैं, मैं उसी तरह तुम्हें बतलाता हूं, सुनो। तैंतीस करोड़ देवताओंकी पूजा करना सनातनधर्म नहीं है। वह तो एक निकृष्ट लौकिक धर्म है। इसीके मारे सच्चा सनातन धर्म—जिसे म्लेच्छगण हिन्दूधर्म कहते हैं—लुप्त हो रहा है। हिन्दूधर्म ज्ञानात्मक है, क्रियात्मक नहीं, वह ज्ञान दो प्रकारका होता है—बाहरी और भीतरी। भीतरी ज्ञान ही सनातनधर्मका प्रधान अङ्ग है; किन्तु जबतक बाहरी ज्ञान नहीं प्राप्त हो जाता, तबतक भीतरी ज्ञान उत्पन्न होनेकी सम्भावना ही नहीं रहती। विना स्थूलको जाने, सूक्ष्म नहीं जाना जाता। इस समय इस देशका बाहरी ज्ञान बहुत दिनोंसे लुप्त हो रहा है। इसीलिये सनातनधर्मका भी लोप हो रहा है! सनातनधर्मका पुनरुद्धार करनेके लिये, पहले बाहरी ज्ञानका प्रचार करना आवश्यक है।

इस समय इस देशमें वह ज्ञान नहीं है। यह ज्ञान सिखलानेवाले लोग भी नहीं हैं। हम लोग लोकशिक्षामें निरे अधकचरे हैं। इसलिये और और देशोंसे यह बाहरी ज्ञान लाना पड़ेगा। अंगरेज इस बाहरी ज्ञानमें बड़े प्रवीण हैं। वे लोकशिक्षामें पूरे पण्डित हैं। इसीसे हमें अंगरेजोंको राजा मानना पड़ेगा। इस देशके लोग अंगरेजी शिक्षाद्वारा बाहरी तत्वोंका ज्ञान प्राप्त कर अन्तस्तत्वोंको समझनेके योग्य बनेंगे। उस समय सनातनधर्मका प्रचार करनेमें कोई विघ्नबाधा न रह जायगी। उस समय सच्चा धर्म आप-से-आप जगमगा उठेगा। जबतक ऐसा नहीं होता, जबतक हिन्दू फिरसे ज्ञानवान, गुणवान और बलवान नहीं हो जाते, तबतक अङ्गरेजोंका राज्य अटल-अचल बना रहेगा। अंगरेजोंके राज्यमें प्रजा सुखी होगी, सब लोग बेखटके अपने अपने धर्मकी राहपर चलने पायेंगे। अतएव, हे बुद्धिमान! तुम अंगरेजोंके साथ युद्ध करनेसे हाथ खींच लो और मेरे साथ चलो।"

सत्यानन्दने कहा—"महात्मन्! यदि आप लोगोंको अंगरेजोंको ही यहांका राजा बनाना था, यदि इस समय अंगरेजी राज्य स्थापित होनेमें ही इस देशको भलाई थी, तो फिर आपने मुझे इस हिंसापूर्ण युद्ध-कार्यमें क्यों लगा रखा था?"

महात्माने कहा—"अङ्गरेज इस समय बनिये होकर टिके हुए हैं। केवल माल बेचने और टके पैदा करनेमें लगे हुए हैं। राज्य-शासनका झंझट सिरपर लेना नहीं चाहते। अब इस सन्तान-विद्रोहके कारण वे लोग मजबूत होकर राज्यशासन अपने हाथमें लेंगे; क्योंकि बिना राज्यशासनका प्रबन्ध ठीक हुए धनसंग्रह नहीं होने पाता। अंगरेजोंका राज्य स्थापित करनेहीके लिये यह संतानविद्रोह हुआ है। अब आओ, ज्ञानलाभ करनेपर तुम आप ही सब बातें समझ जाओगे।"

सत्यानन्द—"मुझे ज्ञानलाभकी लालसा नहीं। ज्ञानसे मुझे कोई मतलब नहीं है। मैंने जो व्रत ग्रहण किया है, उसीका

पालन करूंगा । आशीर्वाद करें कि मेरी मातृभक्ति अचल हो।"

महात्मा—"व्रत तो सफल हो गया। तुमने माताका मंगल साधन कर डाला। अंगरेजी राज्य स्थापित करनेमें मदद पहुंचा ही दी। अब युद्ध-विग्रहकी बात छोड़ो। लोगोंको खेतीबारी करने दो, जिससे लोगोंके भाग्यके दरवाजे खुल जायं।"

सत्यानन्दकी आँखोंसे चिनगारियां निकलने लगीं। उन्होंने कहा—"मैं तो शत्रुओंके रुधिरसे सींच-सींचकर माताको शस्य-शालिनी बनाऊंगा।"

महात्मा—"शत्रु कौन हैं? शत्रु अब रहे कहाँ? अंगरेज मित्र राजा हैं। अंगरेजोंके साथ युद्ध करने योग्य शक्ति भी नहीं है।"

सत्यानन्द—"न सही, मैं यहीं, इसी मातृप्रतिमाके सम्मुख प्राण-त्याग करूंगा।"

महापुरुष—"योंही अज्ञानमें पड़कर? चलो, चलकर ज्ञान-लाभ करो। हिमालयके शिखरपर मातृमन्दिर है, वहींसे मैं तुम्हें माताकी मूर्त्तिका दर्शन कराऊंगा।"

यह कह, महापुरुषने सत्यानन्दका हाथ पकड़ लिया। अहा! कैसी अपूर्व शोभा थी। उस गम्भीर विष्णुमन्दिरमें, विराट् चतुर्भुजी मूर्त्तिके सामने, धुंधले प्रकाशमें खड़े वे दोनों महा प्रतिभापूर्ण पुरुष एक दूसरेका हाथ पकड़े खड़े हैं। किसने किसे पकड़ रखा है। मानों ज्ञानने आकर भक्तिको पकड़ लिया है, धर्मने आकर कर्मका हाथ थाम लिया है, विसर्जनने आकर प्रतिष्ठाको पकड़ रखा है, कल्याणीने शान्तिको आ पकड़ा है। यह सत्यानन्द शान्ति हैं और वह महापुरुष कल्याणी हैं। सत्या-नन्द प्रतिष्ठा हैं, महापुरुष कल्याणी हैं। विसर्जन आकर प्रतिष्ठा-को ले गया।

* इति शम् *

परिशिष्ट क



संन्यासी-विद्रोहका इतिहास

[क्लेगके 'स्मरण लेख' में प्रकाशित वारन हेस्टिंगजके पत्रोंसे उद्धृत ।]

वारन हेस्टिंग्ज ने सर जार्ज कोलब्रुकके पास २री फरवरी १७७३ के पत्रमें निम्नलिखित बातें लिखी थीं :—

"आपको संन्यासियों अर्थात् रमते फकीरोंके उपद्रवका वृत्तान्त मालूम ही होगा। ये लोग हर साल इसी समय हजार दस हजारका दल बांधकर जगन्नाथजीकी यात्रापर जाते हुए, इस प्रान्तमें उपद्रव मचाते हैं। कप्तान टामस नामक एक वीर सैनिक अफसर इन लुटेरोंके फेरमें पड़कर मारा गया। उसने थोड़ेसे देशी सिपाहियोंको लेकर ३००० लुटेरोंका रङ्गपुरके समीप सामना किया था। टामसके सिपाही बड़ी बहादुरीके साथ लड़े और अपनी योग्यतासे अधिक प्रशंसाके पात्र बने। उत्तरी जिलोंमें इनके उपद्रवोंका मालगुजारीपर बुरा प्रभाव पड़ा है। सिपाहियोंके नूतन संगठनसे, जो कि कोर्ट आफ डाइरेक्टर्सके आदेशानुसार किया गया है और उनपर जिस ढङ्गसे प्रान्तकी रक्षाका भाग अर्पण किया जा रहा है, उससे आशा की जाती है कि भविष्यमें इनके उपद्रवोंसे यहांकी रक्षा भलीभांति हो सकेगी।"

(क्लेगके स्मरण-लेख, भाग १२८२)

* * *

इसके बाद ९वीं मार्चको जोशिस डिउप्रेके पास हेस्टिंग्ज साहबने जो पत्र लिखा था उसमें उन्होंने इस सम्बन्धमें लिखा था :—

"मेरे प्रान्तमें इस वर्ष खासा युद्ध छिड़ गया है। संन्यासि-

योंके एक गिरोहने परगना सिपाहियोंके दो दलोंको हरा दिया है और उनके दो सेनानायकोंको मार डाला है। एक तो कप्तान टामस थे जिसे आप जानते होंगे। ब्रिगेड सिपाहियोंके दल इस समय उनका पीछा कर रहे हैं। वे लड़ न सकेंगे, क्योंकि न तो उनके पास डेरे-खोमे हैं, जिससे जगह-ब-जगह पड़ाव डाल सकें, न उनके पास सैनिकोंके योग्य कपड़े-लत्ते हैं, इसलिये उनका भागना निश्चित है। तो भी मुझे आशा है कि वे कुछ कर दिखायेंगे; क्योंकि बोच-बीचमें नदियां पड़ती हैं, जिनके पार उतरना संन्यासियोंके लिये मुश्किल हो जायगा। अगर हमारे सैनिक ठिकानेसे उनका पीछा करते चले गये।"

"इन लोगोंका इतिहास बड़ा विचित्र है। ये तिब्बतकी पहाड़ियोंके दक्खिन, काबुलसे चीनतक फैली हुई विस्तृत भूमिमें रहते हैं। प्रायः नंगे रहते हैं और न तो इनकी कोई निश्चित बस्ती है, न घर-द्वार है, न जोरू-बच्चे हैं। ये एक जगहसे दूसरी जगह घूमते रहते हैं और जहां कहीं हट्टे-कट्टे बालक देख पाते हैं, वहींसे उन्हें उड़ा लाते हैं। इसीसे ये लोग हिन्दुस्थानमें सबसे बढ़कर वीर और मुस्तैद मनुष्य हैं। इनमें कितने ही सौदागर भी हैं। ये सब रमते योगी हैं और सब लोग इनका बड़ा सम्मान करते हैं। इसी कारण हमलोगोंको सर्वसाधारणसे न तो इनके बारेमें कुछ पता मालूम होता है, न इन्हें दबानेमें सहायता मलती है—यद्यपि इसके विषयमें बड़े कड़े-कड़े हुक्मनामे जारी किये गये। ये लोग कभी-कभी इस प्रान्तमें ऐसे घुस पड़ते हैं, मानों आसमानसे टपक पड़े हों। ये बड़े हट्टे-कट्टे साहसी और अतुल उत्साहवाले होते हैं। हिन्दुस्थानके ये 'जिपसी'* अर्थात् संन्यासी ऐसे ही अद्भुत हैं।"

---

* 'जिपसी' युरोपके कञ्जरोंको कहते हैं, जिनके न तो घर-द्वार होता है, न कहीं जगह। इधर-उधर घमना और लट-पाटकर खाना ही इनका काम है।—अनुवादक।

"मैंने परगना सिपाहियोंको हटाकर सीमाके नाके-नाके ब्रिगेड सिपाहियोंके थाने कायम कर दिये हैं जो प्रान्तकी रक्षा करते हैं। हर तीसरे महीने ये बदले जाते हैं इससे आशा है कि आगे चलकर उपद्रव न होने पायेगा, प्रान्त सुरक्षित रहेगा। चूंकि हम लोगोंने इनके हाथसे मालगुजारी वसूल करनेका काम छीन लिया है, इसलिये हमारे आदमियोंके अत्याचारोंसे भी लोग बच जायेंगे।"

* * *

फिर ३१ मार्च १७७३ को वारन हेस्टिंग्जने इन लोगोंके बारेमें निम्न पत्र लिखा था:—

"हालमें यहांपर संन्यासी कहलानेवाले कुछ थोड़ेसे उपद्रव-कारियोंके मारे बड़ा हैरान होना पड़ा है। इन लोगोंने बड़े-बड़े दल बाँधकर सारे प्रान्तको तवाह कर दिया है। इन लोगोंके उपद्रव और हम लोगोंकी रोकनेकी चेष्टाका हाल आपको हम लोगोंके पत्रों और सलाहोंसे मालूम हो गया होगा। उन्हें देखनेसे आपको मालूम हो जायगा कि गवर्नमेण्टका कोई अपराध नहीं है। इस समय हमारी पाँच पलटनें उनका पीछा कर रही हैं। मुझे आशा है कि वे अपनी करनीका पूरा-पूरा फल पा जायेंगे, क्योंकि सिवा इस बातके कि वे भागनेमें बड़े तेज हैं, और किसी बातमें वे हमारे आदमियोंसे चढ़े-बढ़े नहीं हैं। इन उपद्रवोंका विस्तृत विवरण आपको रोचक न होगा, क्योंकि उनमें कोई महत्व नहीं है।"

(ग्लेगके स्मरण-लेख भाग १ पृ० २६७)

* * *

उसी तारीखमें हेस्टिंग्ज साहबने सर जार्ज कोलब्रुकके नाम निम्नलिखित पत्र लिखा था:—

"पिछले पत्रमें मैंने लिखा था कि जहाँतक मालूम पड़ता है, संन्यासियोंने कम्पनीके अधिकारभुक्त प्रदेशोंको खाली कर दिया

है। यही खबर मुझे उस समय मिली थी और जैसी अवस्था थी, उससे मुझे यह बात ठीक भी मालूम पड़ी। पर मालूम होता है कि या तो वे ब्रह्मपुत्र-नदको पार न कर सके या अपना इरादा बदल दिया। वे २-२ या ३-३ हजारके दलमें विभक्त होकर एकाएक रङ्गपुर और दिनाजपुरके भिन्न-भिन्न स्थानोंमें दिखाई दिये। देशवासियोंको कड़ी-कड़ी धमकियां दी गयी हैं कि अगर वे संन्यासियोंके आनेकी सूचना तत्काल न दे दिया करेंगे, तो उनको बड़ी सख्त सजा की जायगी। तो भी लोगोंपर इन संन्यासियोंका जादू ऐसा चढ़ा हुआ है कि कोई सूचनातक नहीं देता। अतः जबतक वे बस्तियोंमें घुस नहीं आते हम लोगोंको उनका कुछ पता नहीं लगता। मानों ये लोग इन देशवासियोंकी मूर्खताका दण्ड देनेके लिये आसमानसे उतर आये हैं। हालमें इनका एक दल कप्तान एडवार्डिसके सैन्य दलसे भिड़ गया था। इस लड़ाईमें कप्तान एडवार्डिस एक नालेको पार करते समय मारे गये और उनके सिपाही भाग खड़े हुए। इस दलमें हमारे सबसे रद्दी परगना-सिपाही भरे हुए थे, जिन्होंने बुरी तरह पीठ दिखाई। इस जीतसे संन्यासियोंकी हिम्मत बढ़ गयी और उन्होंने उक्त जिलोंमें हर जगह ऊधम मचाना शुरू कर दिया। कप्तान स्टुअर्टने १६ वीं नम्बर पलटनके साथ उनका पीछा किया, पर कोई नतीजा न निकला। जबतक वे एक जगह पहुंचते संन्यासी उसे ध्वंस कर चम्पत हो जाते थे। मैंने बरहमपुरसे एक दूसरी पलटन कप्तान स्टुअर्टसे मिलकर काम करनेके लिये भेज दी। उन्हें स्वतन्त्र युद्ध करनेकी पूरी स्वतन्त्रता दे दी थी ताकि उन्हें मुकाबिला करनेका अच्छा अवसर मिले। साथ ही मैंने दानापुरकी एक पलटनको तिर्हुत होते हुए पूर्नियाकी उत्तरी सीमा होकर उसी राहसे होकर जानेका हुक्म दे दिया है जिधरसे संन्यासी बहुधा जाया करते हैं ताकि यदि वे उस राहसे गये तो घेर लिये जायंगे। इस पलटनको यह भी हुक्म

दिया गया था कि अवसर आ जानेपर संन्यासियोंको दबाकर वे लोग बिहारकी तरफ बढ़ें और यहां कप्तान जोन्ससे मिलकर शान्ति-स्थापनकी चेष्टा करें।

"संन्यासियोंके बहुतसे दल पुर्निया जिलेमें घुस पड़े और गांवोंमें आग लगाकर लोगोंका मालमता लूटने और बरबाद करने लगे। तब वहांके कलक्टरने कप्तान ब्रुकके पास समाचार भेजा और सहायता मांगी। कप्तान ब्रुक हालहीमें राजमहलके पास पानीती आये थे। उनके पास एक ताजादम पैदल सेना थी। कप्तानने खबर पाते ही नदी पार कर संन्यासियोंके विरुद्ध काररवाई करनी शुरू की। उस समय संन्यासी कोसा-नदी पार कर भाग जानेकी चेष्टा कर रहे थे। इसी समय कप्तानके साथ उनके एक दलकी मुठभेड़ हो गयी, पर बिना किसी क्षतिके वे सब नदी पार कर गये जिससे ये लोग उनका कुछ भी बिगाड़ न सके। यह साफ मालूम पड़ता है कि संन्यासी यथाशीघ्र कम्पनीके अधिकार-भुक्त प्रदेशसे भाग जाना चाहते हैं। पर मुझे विश्वास है कि उनके कुछ गिरोहोंके साथ हमारी किसी न किसी सेनाका मुकाबिला अवश्य ही हो जायगा और वह उनकी उद्दण्डताका उन्हें पूरा ; पूरा दण्ड दे सकेगी।

यद्यपि यह असम्भव है, तथापि इन संन्यासियोंके उपद्रवोंके कारण मालगुजारीमें कमी पड़नेकी सम्भावना मालूम होती है; क्योंकि कहींके लोग तो सचमुच इनसे सताये गये हैं और कहींके लोग झूठमूठ यह बहाना निकालेंगे कि वे लोग भी संन्यासियों द्वारा लूटे-खसोटे गये हैं। इसी विचारसे बोर्ड आफ् रेवेन्यूने यह प्रस्ताव किया है कि मालगुजारीमें कमी पड़नेका कोई कारण नहीं सुना जायगा और त्रुटि करनेवालोंको दण्ड दिया जायगा। इस तरहसे वे लोग कम्पनीको हानिसे बचानेकी पूरी चेष्टा कर रहे हैं। जहां-तहां सीमापर पलटनें रख दी जायंगी, ताकि फिर

संन्यासी न घुसने पायें या और तरहके लुटेरे डाकुओंका उपद्रव न होने पाये। यह सावधानी गत बारके संन्यासी विद्रोहको देखकर ही काममें लायी गयी है। जहांतक मेरा ख्याल है, थोड़ीसी ही सेनासे यह काम हो जायगा और मुझे आशा है कि आगेसे संन्यासी भी यहां उपद्रव न करने पायेंगे।"

* * * *

२० मार्च १७७१ को हेस्टिंग्जने लारेन्सके नाम निम्नलिखित पत्र लिखा था:—

"गत वर्ष संन्यासियोंने जैसा उपद्रव किया था, वैसा ही इस वर्षके प्रारम्भमें भी हुआ। पर चूंकि हमलोग पहलेहीसे उनका सामना करनेके लिये तैयार थे और उन्होंने पहलेही धक्केमें खूब मुंहकी खायी, इसीसे हमलोगोंने उन्हें एकदम देशसे बाहर कर दिया है। हमलोगोंने कुछ घुड़सवार उनके पीछे लगा दिये हैं, जिससे वे बहुत डर गए हैं; क्योंकि पैदल सिपाहियोंसे तो वे दौड़नेमें जीत जाते थे पर घोड़ोंकी बराबरी नहीं कर सकते। मेरा इरादा उन्हें उत्तर पूर्व प्रदेशसे भगा देनेका है, जहां उन लोगोंने अड्डा कायम कर रखा है। मैं उन जमींदारोंकी भी पूरी मरम्मत कर देना चाहता हूं, जो उन्हें शरण और सहायता दे रहे हैं।"

——

परिशिष्ट ख

संन्यासी-विद्रोहका इतिहास

(हण्टर रचित "बंगालके ग्रामोंका इतिहास" से उद्धृत)

"कौन्सिलने १७७२ में लिखा था—'डाकुओंका एक दल संन्यासी या फ़कीरका वेश बनाये, इन मुल्कोंको तबाह करता

फिरता है। ये तीर्थयात्रीके रूपमें रहते हैं और बंगालके प्रधान भागको लूटते-खसोटते हैं। ये जहां जाते वहां भीख मांगकर खाते, चोरी करते, डाका डालते या जैसा मौका देखते, वैसा कर बैठते हैं। अकालके बाद कई वर्षोंतक इनके दलमें वे किसान भी मिलते चले गये, जिन्हें न तो बीजके लिये अन्न मिल सका, न जमीन जोतनेके लिये हल-फावड़े मिले। १७७२ के जाड़ोंमें इन लोगोंका प्रायः ५० हजारका दल दक्षिण बंगालके हरे-भरे प्रदेशोंमें लूट-पाट मचाता और घरोंको जलाता रहा। कलक्टरोंने सेनासे काम लिया; कुछ सफलता भी मिली, पर अन्तमें हमारे सिपाहियोंकी बुरी तरह हार हुई और उनका अध्यक्ष कप्तान टामस समस्त सैनिकोंके साथ खेत रहा। जाड़ोंके अन्तमें कौन्सिलने कोर्ट आफ डाइरेक्टर्सके पास लिखा कि एक चतुर सेनाध्यक्षके अधीन भेजी हुई सेनाने सफलताके साथ उनका मुकाबिला किया है। पर एक ही महीनेके बाद यह मालूम हुआ कि यह सूचना भी ठीक नहीं थी। सन् १७७२ की १३वीं मार्चको वारन हेसिंटग्जको यह बात स्वीकार करनी पड़ी कि कप्तान टामसके बाद जो सेनाध्यक्ष भेजा गया था उसकी भी वही गति हुई और यद्यपि जमीन्दारोंके दिये हुए जवानोंके साथ-साथ चार पलटनें उनके मुकाबिले खड़ी थीं तथापि संन्यासियोंकी कुछ हानि नहीं हुई। मालगुजारीकी वसूली न हो सकी। देशवासी भी उन्हीं डाकुओंके तरफदार हो रहे और गांवोंपरसे हुकूमत उठ-सी गयी। इस तरहकी घटनाएं यहां हर साल होती रहती हैं और इसे ही लोग बंगालका शान्तिमय जीवन बतलाते हैं!"



हिन्दी पुस्तक एजेन्सी माला

स्थायी ग्राहकोंके लिये नियम—

१—प्रत्येक व्यक्ति ॥) आने प्रवेश-शुल्क जमाकर इस मालाका स्थायी ग्राहक बन सकता है। उक्त ॥) लौटाये नहीं जायंगे।

२—स्थायी ग्राहकोंको मालाकी प्रकाशित प्रत्येक पुस्तक पौन मूल्यमें मिल सकेगी। एकसे अधिक प्रतियां पौन मूल्यमें मंगा सकेंगे।

३—पूर्व प्रकाशित पुस्तकोंके लेने न लेनेका पूर्ण अधिकार स्थायी ग्राहकोंको होगा, पर सालभरमें जितनी पुस्तकें प्रकाशित होंगी, उनमेंसे कमसे कम ६) रु० की पुस्तकें प्रति वर्ष अवश्य लेनी होंगी।

४—पुस्तक प्रकाशित होते ही उसकी सूचना स्थायी ग्राहकोंके पास भेज दी जाती है। स्वीकृति मिलनेपर पुस्तक वी० पी० द्वारा सेवामें भेजी जाती है। जो ग्राहक वी० पी० नहीं छुड़ावेंगे उनका नाम स्थायी ग्राहकोंकी श्रेणीसे काट दिया जायगा। यदि उन्होंने वी० पी० न छुड़ानेका उचित कारण बतलाया और वी० पी० खर्च (दोनों ओरका) देना स्वीकार किया तो उनका नाम ग्राहक श्रेणीमें पुनः लिख लिया जायगा।

५—हिन्दी पुस्तक एजेन्सी मालाके स्थायी ग्राहकोंको मालाकी नव-प्रकाशित पुस्तकोंके साथ अन्य प्रकाशकोंकी कमसे कम १०) रु० की लागतकी पुस्तकें भी पौन मूल्यमें दी जायंगी, जिनकी नामावली हर नव-प्रकाशित पुस्तककी सूचनाके साथ भेजी जाती है।

६—हमारा वर्ष विक्रमीय संवत्से आरम्भ होता है।

मालाकी विशेषतायें

१—सभी विषयोंपर सुयोग्य लेखकों द्वारा पुस्तकें लिखायी जाती हैं।

२—वर्तमान समयके उपयोगी विषयोंपर अधिक ध्यान दिया जाता है।

३—मौलिक पुस्तकें ही प्रकाशित करनेकी अधिक चेष्टा की जाती है।

४—पुस्तकोंको सुलभ और सर्वोपयोगी बनानेके लिये कमसे कम मूल्य रखनेका प्रयत्न किया जाता है।

५—गम्भीर और रुचिकर विषय ही मालाको सुशोभित करते हैं।

६—स्थायी साहित्यके प्रकाशनका ही उद्योग किया जाता है।

६--सेवासदन

लेखक उपन्यास-सम्राट् श्रीयुक्त "प्रेमचन्द"

हिन्दी-संसारका सबसे बड़ा गौरवशाली सामाजिक उपन्यास। यह हिन्दीका सर्वोत्तम, सुप्रसिद्ध और मौलिक उपन्यास है। इसकी खूबियोंपर बड़ी आलोचना और प्रत्यालोचना हुई है। पतित-सुधारका बड़ा अनोखा मन्त्र, हिन्दू-समाजकी कुरीतियां जैसे अनमेल विवाह, त्यौहारोंपर वेश्यानृत्य और उसका कुपरिणाम, पाश्चिमीय ढङ्गपर स्त्री-शिक्षाका कुफल, पतित आत्माओंके प्रति घृणाका भाव इत्यादि विषयोंपर लेखकने अपनी प्रतिभाकी वह छटा दिखायी है कि पढ़नेसे ही आनन्द प्राप्त हो सकता है। कुछ त्रैमासिक सभी पत्रोंकी आलोचनाका मुख्य विषय यह उपन्यास रहा है। दूसरा संस्करण, मनोहर स्वदेशी कपड़ेकी सजिल्द पुस्तकका मूल्य २॥)

७—संस्कृत कवियोंकी अनोखी सूझ

लेखक पं० जनार्दन भट्ट एम०ए०

संस्कृतके विविध विषयोंके अनोखे भावपूर्ण उत्तमोत्तम श्लोकोंका हिन्दी भावार्थ सहित संग्रह। यह ऐसी खूबीसे लिखा गया है कि साधारण मनुष्य भी पढ़कर आनन्द उठा सकें। व्याख्यानदाताओं, रसिकों और विद्यार्थियोंके बड़े कामकी पुस्तक है। दूसरा संस्करण, मूल्य ।≥)

८—लोकरहस्य

लेखक उपन्यास-सम्राट् श्रीयुक्त बंकिमचन्द्र चटर्जी

यह "हास्यरस" पूर्ण ग्रन्थ है। इसमें वर्तमान धार्मिक, राज-नीतिक और सामाजिक त्रुटियोंका बड़े मजेदार भाव और भाषामें चित्र खींचा गया है। पढ़िये और समझ समझकर हँसिये। कई विषयोंपर ऐसी शिक्षा मिलेगी कि आप आश्चर्य्यमें पड़ जायंगे। अनुवाद भी हिन्दीके एक प्रसिद्ध और अनुभवी हास्य-रसके लेखककी लेखनीका है। बढ़िया एण्टिक कागजपर छपी पुस्तकका मूल्य ॥≥)

९—खाद

लेखक श्रीयुक्त मुख्तारसिंह वकील

भारत कृषिप्रधान देश है। कृषिके लिये खाद सबसे बड़ा आवश्यकीय पदार्थ है। बिना खादके पैदावारमें कोई उन्नति नहीं की जा सकती। यूरोपवाले खादके बदौलत ही अपने खेतोंमें दूनी चौगुनी पैदावार करते हैं। इसलिये इस पुस्तकमें खादोंके भेद तथा किन अन्नोंके लिये कौन सी खादकी आवश्यकता होती है इनका बड़ी उत्तमतासे वर्णन किया गया है, चित्रों द्वारा भली प्रकार दिखलाया गया है। इसे प्रत्येक कृषक तथा कृषिप्रेमियोंको अवश्य रखना चाहिये। मूल्य सचित्र और सजिल्दका १)

१०—प्रेम-पूर्णिमा

लेखक उपन्यास-सम्राट् श्रीयुक्त "प्रेमचन्द"

प्रेमचन्दजीकी लेखनीके सम्बन्धमें अधिक लिखनेकी आवश्यकता नहीं है। जिन्होंने उनके 'प्रेमाश्रम' "सप्तसरोज" और "सेवासदन" का रसास्वादन किया है उनके लिये तो कुछ लिखना व्यर्थ है। प्रत्येक गल्प अपने २ ढङ्गकी निराली है। ज़मींदारोंके अत्याचारका विचित्र दिग्दर्शन कराया गया है। भाषा और भावकी उत्कृष्टताका अनूठा संग्रह देखना हो तो इस ग्रन्थको अवश्य पढ़िये। इसमें श्रीयुक्त "प्रेमचन्द" जीकी १५ अनूठी गल्पोंका संग्रह है। बीच बीचमें चित्र भी दिये गये हैं। खादीकी सुन्दर सजिल्द पुस्तकका मूल्य २)

११—आरोग्यसाधन

लेखक म० गांधी

बस, इसे महात्माजीका प्रसाद समझिये। यदि आप अपने शरीर और मनको प्राकृत रीतिके अनुसार रखकर जीवनको सुखमय बनाना चाहते हैं, यदि आप मनुष्य-शरीरको पाकर संसारमें आनन्दके साथ कुछ कीर्ति कमाना चाहते हैं तो महात्माजीके अनुभव किये हुए तरीकेसे रहकर अपने जीवनको सरल, सादा और स्वाभाविक बनाइये और रोगमुक्त होकर आनन्दसे जीवन बिताइये। तीसरा संस्करण, १३० पृष्ठकी पुस्तकका दाम केवल ।=)

१२—भारतकी साम्पत्तिक अवस्था

लेखक श्रीयुक्त राधाकृष्ण झा, एम० ए०

यदि भारतकी आर्थिक अवस्था, यहांके वाणिज्य-व्यापारके रहस्यों, कृषिकी दुर्व्यवस्था और मालगुजारी तथा अन्यान्य टैक्सोंकी भरमारका रहस्य जानना चाहते हैं, यदि आप यहांका उत्पन्न कच्चा माल और वह कितनी कितनी संख्यामें विलायतको ढोया चला जाता है, उसके बदलेमें हमें कौन कौनसा माल दिया जाता है, आने और जानेवाले मालोंपर किस नीयतसे कर बैठाया जाता है, यहां प्रत्येक वर्ष कहीं न कहीं अकाल क्यों पड़ता है, हम दिनपर दिन क्यों कौड़ी कौड़ीके मोहताज हो रहे हैं, इत्यादि बातोंको जानना चाहते हैं तो इस पुस्तकको एक बार अवश्य पढ़ें। यह पुस्तक साहित्यसम्मेलनकी परीक्षामें है। ६५० पृष्ठकी खादीकी सुन्दर सजिल्द पुस्तकका मूल्य ४॥)

१३—भाव चित्रावली

चित्रकार श्रीधीरेन्द्रनाथ गंगोपाध्याय

इस पुस्तकमें एक ही सज्जनके विविध भावोंके १०० रंगीन और सादे चित्र दिखलाये गये हैं। आप देखेंगे और आश्चर्य करेंगे और कहेंगे कि ऐं! सब चित्रोंमें एक ही आदमी! गङ्गोपाध्याय महाशयने अपनी इस कलासे समाज और देशकी बहुतसी कुरीतियोंपर बड़ा जबर्दस्त कटाक्ष किया है। चित्रोंके देखनेसे मनोरञ्जनके साथ साथ आपको शिक्षा भी मिलेगी। खादीकी सजिल्द पुस्तकका मूल्य ४)

१४—राम बादशाहके छः हुक्मनामे

स्वामी रामतीर्थजीके छः व्याख्यानोंका संग्रह उन्हींकी जोरदार भाषामें। स्वामीजीके ओजस्वी और शिक्षाप्रद भाषणोंके बारेमें क्या कहना है, जिसने अमरीका, जापान और यूरोपमें हलचल मचा दी थी। इन व्याख्यानोंको पढ़कर प्रत्येक भारतवासीको शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। उर्दूके शब्दोंका फुटनोटमें अर्थ भी दिया गया है। स्वामीजीकी भिन्न भिन्न अवस्थाओंके तीन चित्र भी हैं। पुस्तक बढ़िया एंटिक कागजपर छपी है। मूल्य सुन्दर खादीकी सजिल्द पुस्तकका १।)

१५—मैं नीरोग हूं या रोगी

ले० प्रसिद्ध जलचिकित्सक डाक्टर लुईकूने

यदि आप स्वस्थ रहकर आनन्दसे जीवन बिताना, डाक्टरों, वैद्यों और हकीमोंके फन्देसे छुटकारा पाना, प्राकृतिक नियमानुसार रहकर सुख तथा शान्तिका उपभोग करना चाहते हैं तो इस पुस्तकको पढ़िये और लाभ उठाइये। जर्मनीके प्रसिद्ध डा० लुईकूनेकी इस पुस्तकका मूल्य ।-)

१६—रामकी उपासना

ले० रामदास गौड़ एम०ए०

स्वामी रामतीर्थसे कौन हिन्दू परिचित न होगा। उनके उपदेशोंका श्रवण और मनन लोग बड़ी ही श्रद्धाभक्तिसे करते हैं। प्रस्तुत पुस्तक उपासनाके विषयमें लिखी गयी है। उपासनाकी आवश्यकता, उसके प्रकार, परब्रह्ममें मनको लीन करना, सच्ची उपासनाके बाधक और सहायक, सच्चे उपासकोंके लक्षण आदि बातें बड़ी ही मार्मिक और सरल भाषामें लिखी गयी हैं। हिन्दू गृहस्थोंके लिये पुस्तक बड़ी ही उपयोगी है। सुन्दर एंटिक कागजपर छपी है। कवरपर उपासनाकी मुद्रामें स्वामी रामतीर्थजीका एक चित्र भी है। ४८ पृष्ठकी पुस्तकका मूल्य ।-)

१७—बच्चोंकी रक्षा

ले० डाक्टर लुईकूने

डाक्टर लुईकूने जर्मनीके प्रसिद्ध डाक्टर हैं। आपने अपने अनुभवोंसे सब बीमारियोंके दूर करनेका प्राकृतिक उपाय निकाला है। आपकी जल-चिकित्सा आजकल घर घरमें प्रचलित है। इस पुस्तकमें डाक्टर साहबने यह दिखलाया है कि बच्चोंकी रक्षाकी उचित रीति क्या है और उसके अनुसार न चलनेसे हम अपनी सन्ततिको किस गर्तमें गिरा रहे हैं। स्त्रियों-के लिये विशेष उपयोगी है। विद्यालयोंकी पाठ्य पुस्तकोंमें रखने योग्य है। सुन्दर एंटिक कागजके ४८ पृष्ठोंकी पुस्तकका मूल्य ८-)

१८—प्रेमाश्रम

ले० उपन्यास सम्राट् श्रीयुत प्रेमचन्दजी

जिन्होंने प्रेमचन्दजीकी लेखनीका रसास्वादन किया है उनके लिये इसकी प्रशंसा करना व्यर्थ है। पुस्तक क्या है, वर्तमान दशाका सच्चा चित्र है। किसानोंकी दुर्दशा, जमींदारोंके अत्याचार, पुलिसके कारनामे, वकीलों और डाक्टरोंका नैतिक पतन, धर्मके ढोंगमें सरलहृदया स्त्रियोंका फंस जाना, स्वार्थसिद्धिके कलुषित मार्ग, देशसेवियोंके कष्ट और उनके पवित्र चरित्र, सच्ची शिक्षाके लाभ, गृहस्थीके झंझट, साध्वी स्त्रियोंका चरित्र, सरकारी नौकरीका दुष्परिणाम आदि भावोंको लेखकने ऐसी खूबीसे चित्रित किया है कि पढ़ते ही बनता है, एक बार शुरू करनेपर बिना पूरा किये छोड़नेको दिल नहीं चाहता। ठूंस ठूंस कर मैटर भर देनेपर भी पृष्ठ संख्या ६५० हो गयी। खादीकी जिल्दका ३॥) रेशमी ३॥)

१९—पंजाबहरण

ले० पं० नन्दकुमारदेव शर्मा

यह सिक्खोंके पतनका इतिहास है। १९ वीं सदीके आरम्भमें सिक्ख-साम्राज्य महाराज रणजीतसिंहके प्रतापसे समृद्धशाली हो गया था। उनके मरते ही आपसकी फूट, कुचक्र, अंग्रेजोंके विश्वासघातसे उसका किस प्रकार पतन हुआ। जो अंग्रेज जाति सभ्यताकी डींग हांकती है, उसने अपने परम प्रिय मित्र महाराज रणजीतसिंहके परिवारके साथ किस घातक नीतिका व्यवहार किया इसका वास्तविक दिग्दर्शन इस पुस्तकसे होता है। इससे अंग्रेजोंके सच्चे पराक्रमका भी पूरा पता चलता है। जो अंग्रेज जाति आज गली गली ढिंढोरे पीट रही है कि "हमने भारतको तलवारके बल जीता है" उनके सारे पराक्रम चिलियानवालाके युद्धमें लुप्त हो गये थे और यदि सिक्खोंने मिलकर एक बार उसी प्रकार और हराया होता तो शायद ये लोग डेराडण्डा लेकर कूंच ही कर गये होते। पुस्तक बड़ी ओजसे लिखी गयी है। मोटे कागजपर २५० पृ० का मूल्य केवल २)

२०–भारतमें कृषिसुधार

ले० प्रो० दयाशंकर एम० ए०

प्रस्तुत पुस्तकमें लेखकने बड़ी खोजके साथ दिखलाया है कि भारतकी गरीबीका क्या कारण है, कृषिका अधःपतन क्यों हुआ है, जिसके फलस्वरूप भारत परतन्त्रताकी शृंखलामें जकड़ गया। अन्य देशोंकी तुलनामें यहांकी पैदावारकी क्या अवस्था है और उसमें किस तरह सुधार किया जा सकता है। सरकारका क्या धर्म है और वह उसका किस तरह प्रतिपालन कर रही है, किस प्रकार प्रजाकी उन्नतिके मार्गमें कांटे बिछाये जा रहे हैं इत्यादि बातोंका दिग्दर्शन लेखकने बड़ी मार्मिक भाषामें दृढ़तर प्रमाणोंके साथ किया है। पुस्तक अपने ढंगकी निराली है और बड़ी ही उपादेय है। २५० पृष्ठकी सचित्र पुस्तकका मूल्य १॥)

२१–देशभक्त मैजिनीके लेख

भूमिका ले० दैनिक "आज" के सम्पादक

बाबू श्रीप्रकाश बी० ए० एम० एल० बी० बेरिस्टर-ऐट-ला

इटलीका इतिहास पढ़नेवालोंको भलीभांति विदित है कि १८ वीं सदीमें इटलीकी क्या दशा थी। परराजतन्त्रके दमनचक्रमें पड़कर इटली सारे यातनायें भोग रहा था। न कोई स्वतन्त्रतापूर्वक लिख सकता था और न बोल सकता था। कहनेका मतलब यह है कि भारतकी वर्त्तमान दशा इटलीकी उस समयकी दशासे ठीक मिलती-जुलती है। इटली एकदम निर्जीव हो गया था। ऐसी ही दशामें देशभक्त मैजिनीने अपने लेखोंका शंखनाद किया और नवयुवकोंको चेतावनी दी कि उठो, आलस्यको त्यागो, माता वसुन्धरा बलिदान चाहती है। प्रत्येक नवयुवकके शरीरमें स्वतन्त्रताकी प्राप्त करनेकी ज्योति जग उठी। ग्रन्थके अन्तमें संक्षेपमें मैजिनीका जीवनचरित भी दिया गया है। अनुवादक पण्डित छविनाथ पाण्डेय बी० ए०, एल० एल० बी०। पृष्ठसंख्या २६० मूल्य केवल २)

२२-गोलमाल

जिन लोगोंने "चौबेका चिट्ठा" और "गोबर गणेशसंहिता" पढ़ी है, वे गोलमालके मर्मको भलीभांति समझ सकते हैं। रा० ब० काली प्रसन्न घोषने बंगलाके 'भ्रान्ति विनोद' में समाजमें प्रचलित कुछ बुराइयोंकी—जिसे वर्तमान समाजने प्रायः अनिवार्य और क्षम्य मान लिया है—मार्मिक भाषामें चुटकीली है। प्रत्येक निबन्ध अपने ढंगका निराला है। 'रसिकता और रसीली' बातोंसे लेकर 'दिगन्त मिलन' तक समाजकी बुराइयोंकी आलोचनासे भरा है। इसी भ्रान्ति-विनोदका यह गोलमाल हिन्दी अनुवाद है। २०० पृष्ठ, मूल्य १=)

२३-१८५७ ई० के गदरका इतिहास

ले० पण्डित शिवनारायण द्विवेदी

सिपाहीविद्रोह क्यों हुआ ? यह प्रश्न अभीतक प्रत्येक भारत-वासीके हृदयको आन्दोलित कर रहा है। कोई इसे सिपाहियोंका क्षणिक जोश, कोई सिपाहियोंकी बेजड़ बुनियाद, धर्मभीरुता और कोई इसे राजनीतिक कारण बतलाते हैं। प्रस्तुत पुस्तक अनेक अंग्रेज इतिहासज्ञोंकी पुस्तकोंकी गवेषणापूर्ण छानबीनके बाद लिखी गयी है। पूरे प्रमाणसहित इसमें दिखलाया गया है कि सिपा-हियोंकी क्रान्तिके लिये अंग्रेज अफसर पूर्णतः दोषी हैं और यदि उन्होंने चेष्टा की होती तो लार्ड डलहौजीकी कुटिल और दोषपूर्ण नीतिके रहते हुए भी इतना रक्तपात न हुआ होता। प्रस्तुत पुस्तकसे इस बातका भी पता लगता है कि इसरक्तपातकी भीषणता बढ़ानेमें अंग्रेजोंने भी कोई बात उठा नहींरखी थी। प्रथम भागके सजिल्द प्रायः ६००पृष्ठोंकी पुस्तकका मूल्य ३॥) द्वितीय भागकी सजिल्द प्रायः ८०० पृष्ठका मूल्य ४॥)

२४—भक्तियोग

ले० श्रीयुक्त अश्विनीकुमार दत्त

कौन भगवान्‌की प्रेमसे सेवा नहीं करना चाहता ? कौन भगवद्-भक्तिके रसका आनन्द नहीं लेना चाहता ? आदर्श भक्तोंके जीवनका रहस्य कौन नहीं जानना चाहता ? हृदयकी साम्प्रदायिक संकीर्णताको त्याग-कर, सुन्दर मनोहर दृष्टान्तोंके साथ साथ, धर्मशास्त्रों और उच्च कोटिके विद्वानों, भक्तों और महात्माओंके अनुभवोंसे भक्तिका रहस्य जाननेके लिये इस ग्रन्थका आदिसे अन्ततक पढ़ जाना आवश्यक है। ईश्वरभक्तोंके लिये हिन्दी साहित्यमें अपने ढङ्गका यह एक अपूर्व ग्रन्थ है। पृष्ठ २६८। मूल्य सजिल्द १॥।)

२५—तिब्बतमें तीन वर्ष

ले० जापानी यात्री श्रीइकाई कावागुची

तिब्बत एशिया खंडका एक महत्वपूर्ण अङ्ग है, परन्तु वहांके निवासियों-की धर्मांधता तथा शिक्षाके अभावके कारण अभीतक वह खंड संसारकी दृष्टिसे ओझल ही था, परन्तु अब कई यात्रियोंके उद्योग और परिश्रमसे वहांका बहुत कुछ हाल मालूम हो गया है। सबसे प्रसिद्ध यात्री कावागुचीकी यात्राका विवरण हिन्दी-भाषा-भाषियोंके सामने रक्खा जाता है। इस पुस्तकमें आपको ऐसी भयानक घटनाओंका विवरण पढ़नेको मिलेगा जिनका ध्यान करने मात्रसे ही कलेजा कांप उठता है, साथ ही ऐसे रमणीक स्थानोंका चित्र भी आपके सामेन आयेगा जिनको पढ़कर आनन्दके सागरमें लहराने लगेंगे। दार्जिलिङ्ग, नेपाल, हिमालयकी बर्फीली चोटियां, मानसरोवरका रमणीय दृश्य तथा कैलाश आदिका सविस्तर वर्णन पढ़कर आप ही आनन्दलाभ करेंगे। इसके सिवा वहांके रहन-सहन, विवाह-शादी, रीति-रिवाज एवं धार्मिक सामाजिक, राजनैतिक अवस्थाओंका भी पूर्ण हाल विदित हो जायगा। ५२५ पृष्ठकी पुस्तकका मूल्य २॥) सजिल्द २॥।=)

२६—संग्राम

ले० उपन्याससम्राट् श्रीयुक्त प्रेमचन्दजी

मौलिक उपन्यास एवं कहानियां लिखनेमें प्रेमचन्दजीने हिन्दीमें वह नाम पाया है जो आजतक किसी हिन्दी-लेखकको नसीब नहीं हुआ उनके लिखे उपन्यास 'प्रेमाश्रम' एवं 'सेवासदन' तथा 'सप्तसरोज' 'प्रेमपूर्णिमा' और 'प्रेमपचीसी' आदि पुस्तकोंकी सभी पत्रोंने मुक्तकंठसे प्रशंसा की है।

इन उपन्यासों और कहानियोंको रचकर उन्होंने हिन्दी-संसारमें नवयुग उपस्थित कर दिया है, नये तथा पुराने लेखकोंके सामने भाषाकी प्रौढ़ता मौलिकता, विषयकी गम्भीरता और रोचकताका आदर्श रख दिया है।

उन्हीं प्रेमचन्दजीकी कुशल लेखनी द्वारा यह 'संग्राम' नाटक लिखा गया है। यों तो उनके उपन्यासोंमें ही नाटकका मजा आ जाता है फिर उनका लिखा नाटक कैसा होगा यह बतानेकी आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। प्रस्तुत नाटकमें मनोभावोंका जो चित्र खींचा है वह आप पढ़कर ही अन्दाजा लगा सकेंगे। बढ़िया-एन्टिक कागजपर प्रायः २७५ पृष्ठोंमें छपी पुस्तकका मूल्य केवल १॥)

२७—चरित्रहीन

ले० श्रीयुक्त शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय

बंगालमें श्रीयुत शरत् बाबूके उपन्यास उच्च कोटिके समझे जाते हैं। तथा उनके लिखे उपन्यासोंका बंगलामें बड़ा आदर है। उनके लिखे उपन्यास पढ़ते समय आंखोंके सामने घटना स्पष्ट रूपसे भासने लगती है। युवा पुरुष बिना पूर्वदेख रेखके किस तरह चरित्रहीन हो बैठतेहैं, तथा स्वामिभक्त सेवक किस तरह दुर्व्यसनके पंजेमें अपने मालिकको फुंसा सकता है। इसके अतिरिक्त पति-पत्नीका प्रेम, पतिव्रताकी पति सेवा और विधवा स्त्रियां दुष्टोंके बहकावेमें पड़कर कैसे अपने धर्मकी रक्षा कर सकती है, इन सब बातोंका इसमें पूर्णरूपसे दिग्दर्शन कराया गया है। पृष्ठ ६६४ जिल्दसहित मूल्य ३।) रेशमी ३॥)

२८—राजनीति-विज्ञान

ले० सुखसम्पति राय भण्डारी

आज भारत राजनीति-निपुण न होनेके कारण ही दासताकी यातनाओंको भोग रहा है। हिन्दीमें राजनीतिकी पुस्तकोंका अभाव जानकर ही यह पुस्तक निकाली गई है। मुनरोस्मिथ, रो, ब्लंशले, गार्नर आदि पाश्चात्य राजनीति-विशारदोंके अमूल्य ग्रन्थोंके आधारपर यह पुस्तक लिखी गई है। राजनीति-शास्त्र, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, इकरार-सिद्धान्त, शक्तिसिद्धान्त, राज्य और राष्ट्रकी व्याख्या आदि राजनीतिके गूढ़ रहस्योंका प्रतिपादन बड़ी खूबीसे इस ग्रन्थमें किया गया है। इस राजनीतिक युगमें राजनीति-प्रेमी प्रत्येक पाठकको इस पुस्तककी एक प्रति पास रखनी चाहिये। राष्ट्रीय स्कूलोंकी पाठ्य पुस्तकोंमें रखी जाने योग्य है। २१६ पृ० की पुस्तकका मूल्य १।~) है।

२९—आकृति-निदान

ले० जर्मनीके प्रसिद्ध जल-चिकित्सक डा० लूईकूने

सम्पादक-रामदास गौड़ एम० ए०

आज संसार डाक्टर लूईकूनेके आविष्कारोंको आश्चर्यकी दृष्टिसे देखता है। उसी लूईकूनेकी अंग्रेजी पुस्तक 'The Science of Facial Expression' का यह अनुवाद है। इसमें लगभग ६० चित्र दिये गये हैं, जो बहुत सुन्दर आर्ट पेपरपर छपे हैं। उन चित्रोंके देखनेसे ही पता मालूम हो जाता है कि इस चित्रमें दिये हुए मनुष्यमें यह बीमारी है। उन बीमारियोंकी प्राकृतिक चिकित्सा-विधि भी बतलाई गयी है। यदि पुस्तक समझ कर पढ़ी जाय और चित्रोंका गौरसे अवलोकन किया जाय तो मनुष्य एक मामूली डाक्टरका अनुभव सहज ही प्राप्त कर सकता है। इतने चित्रोंके रहते भी पुस्तकका मूल्य केवल १॥) रखा गया है।

३०—वीर केशरी शिवाजी

ले० पं० नन्दकुमारदेव शर्म्मा

महाराज छत्रपति शिवाजीका नाम किसीसे छिपा नहीं है। हिन्दू-धर्मपर विधर्मियोंद्वारा होते हुए अत्याचारसे बचानेवाले, गो-ब्राह्मण-भक्त, सच्चे धर्म्मवीर, कर्म्मवीर, राष्ट्रवीर 'वीर-केशरी शिवाजी' की इतनी बड़ी जीवनी अभीतक नहीं निकली थी। अंग्रेजी इतिहास-लेखकोंने शिवाजीके सम्बन्धमें अनेकों बातें बिना किसी प्रमाणके आधारपर मनमानी लिख डाली हैं। उन सबका समाधान एतिहासिक प्रमाणोंद्वारा लेखकने बड़ी खूबीके साथ किया है। औरंगजेबकी कुटिल चालोंको शिवाजीने किस प्रकार शह देकर मात किया, दगाबाज अफजलखाँकी दगाबाजीका किस प्रकार अन्त किया, हिन्दुओंके हिन्दुत्वकी कैसे रक्षा की, किस प्रकार मराठा-राज्य स्थापित किया, इन सब विषयोंका बड़ी सरल और ओजस्विनी भाषामें वर्णन किया है। लगभग ७५० पृष्ठकी पुस्तकका मूल्य खद्दरकी जिल्द सहित ४) रेशमी सुनहली जिल्द सहित ४॥)

३१—भारतीय वीरता

ले० श्रीयुक्त रजनीकान्त गुप्त

कौन ऐसा मनुष्य होगा जो अपने पूर्वजोंकी कीर्त्ति-कथा न जानना चाहता हो। महाराणा प्रतापसिंहके प्रताप, वीर-केशरी शिवाजीकी वीरता, गुरु गोविन्दसिंहकी गुरुता और महाराजा रणजीतसिंहके अद्भुत शौर्य्य और रण-कौशलने आज भी भारतके गौरवको कायम रखा है। रानी दुर्गावती, पद्मावती, किरणदेवी आदि भारत रमणियोंकी वीरता पढ़कर आज भी भारतीय अबलायें बल प्राप्त कर सकती हैं। ऐसे वीर भारतके सपूतों और आर्य्य-ललनाओंकी पवित्र चरित्र-कथायें इसमें वर्णित हैं। इसकी १६—१७ आवृत्तियां बङ्ग-भाषामें हो चुकी हैं। अनुवाद भी सरल और ओजस्विनी भाषामें हुआ है। कवरपर तीनरङ्गा सुन्दर चित्र है। भीतर ८ चित्र दिये गये हैं। प्रत्येक नर-नारीको यह पुस्तक पढ़नी चाहिये। २७५ पृष्ठकी सचित्र पुस्तकका मूल्य केवल १॥) है।

३२–रागिणी

ले०: मराठीके प्रसिद्ध उपन्यासकार

श्रीयुक्त वामन मल्हारराव जोशी एम० ए०



अनुवादक--हिन्दी नवजीवनके सम्पादक तथा हिन्दीके प्रसिद्ध लेखक

श्रीयुक्त पं० हरिभाऊ उपाध्याय



रागिणी है तो उपन्यास, परन्तु इसे केवल उपन्यास कहनेसे सन्तोष नहीं होता। क्योंकि आजकल उपन्यासोंका काम केवल मनोरंजन और मनबहलाव होता है। इसको तर्क-शास्त्र और दर्शन-शास्त्र भी कह सकते हैं। इसमें जिज्ञासुओंके लिये जिज्ञासा, प्रेमियोंके लिये प्रेम और अशान्त जनोंके लिये विमल शान्ति मिलती है। वैराग्य खण्डका पाठ करनेसे मोह-माया और जगत्की उलझनोंसे निकलकर मनमें स्वाभाविक ही भक्ति-भाव उठने लगता है। देशभक्तिके भाव भी स्थान स्थानपर वर्णित हैं। लेखककी कल्पना-शक्ति और प्रतिभा पुस्तकके प्रत्येक वाक्यसे टपकती है। सभी पात्रोंकी पारस्परिक बातें और तर्क पढ़ पढ़कर मनोरंजन तो होता ही है, बुद्धि भी प्रखर हो जाती है। भारतीय साहित्यमें पहले तो 'मराठी'का ही स्थान ऊँचा है फिर मराठी-साहित्यमें भी रागिणी एक रत्न है। भाषा और भावकी गम्भीरता सराहनीय है। उपाध्यायजीके द्वारा अनुवाद होनेसे हिन्दीमें इसका महत्व और भी बढ़ गया है। लेखककी लेखनशैली, अनुवादककी भाषा-शैली जैसी सुन्दर है, आकार भी वैसा ही सुन्दर, छपाई वैसी ही साफ है। ऐसी रत्नांकपूर्ण सुन्दर पुस्तक आपके देखनेमें कम आवेगी। लगभग ८०० पृष्ठकी सजिल्द पुस्तकका मूल्य ४) और सुन्दर रेशमी सुनहली जिल्दका ४॥)

३३—प्रेम-पचीसी

ले० उपन्यास-सम्राट् श्रीयुक्त प्रेमचन्दजी

प्रेमचन्दजीका नाम ऐसा कौन साहित्य-प्रेमी है जो न जानता हो। जिस प्रेमाश्रमकी धूम दैनिक और मासिक पत्रोंमें प्रायः बारह महीनेसे मची हुई है उसी प्रेमाश्रमके लेखक बाबू प्रेमचन्दजीकी रचनाओंमेंसे एक यह भी है। 'प्रेमाश्रम', 'सप्त सरोज','प्रेम पूर्णिमा' और 'सेवासदन' आदि उपन्यासों और कहानियोंका जिसने रसास्वादन किया है वह तो इसे बिना पढ़े रह ही नहीं सकता। इसमें शिक्षाप्रद मनोरञ्जक २५ अनूठी कहानियां हैं। प्रत्येक कहानी अपने अपने ढङ्गकी निराली है। कोई मनोरञ्जन करती है, तो कोई सामाजिक कुरीतियोंका चित्र चित्रण करती है। कोई कहानी ऐसी नहीं है जो धार्मिक अथवा नैतिक प्रकाश न डालती हो। पढ़नेमें इतना मन लगता है कि कितना भी चिन्तित कोई क्यों न हो प्रफुल्लित हो जाता है। भाषा बहुत सरल है। विद्यार्थियोंके पढ़ने योग्य है। ३८४ पृ० की पुस्तकका खद्दरकी जिल्द सहित मूल्य २।)—रेशमी जिल्दका २॥)

३४—व्यावहारिक पत्र-बोध

ले० पं० लक्ष्मणप्रसाद चतुर्वेदी

आजकलकी अंग्रेजी शिक्षामें सबसे बड़ा दोष यह है कि प्रायः अंग्रेजी शिक्षित व्यवहार-कुशल नहीं होते। कितने तो शुद्ध बाकायदा पत्र लिखनातक नहीं जानते। उसी अभावकी पूर्तिके लिये यह पुस्तक निकाली गयी है। व्यापारिक पत्रोंका लिखना, पत्रोंका उत्तर देना, प्रार्थनापत्रोंका बाकायदा लिखना तथा आफिसियल पत्रोंका जवाब देना आदि दैनिक जीवनमें काम आनेवाली बातें इस पुस्तकद्वारा सहज ही सीखी जा सकती हैं। व्यापारिक विद्यालयों (Commercial Schools) की पाठ्य-पुस्तकोंमें रहने लायक यह पुस्तक है। अन्यान्य विद्यालयोंमें भी यदि पढ़ायी जाय तो लड़कोंका बड़ा उपकार हो। विद्यार्थियोंके सुभीतेके लिये ही लगभग १२५ पृ० की पुस्तककी कीमत ॥=) रखी गयी है।

३५—रूसका पञ्चायती-राज्य

ले० प्रोफेसर प्राणनाथ विद्यालंकार

जिस बोल्शेविज्मकी धूम इस समय संसारमें मची हुई है, जिन बोल्शे-विकोंका नाम सुनकर सारा यूरोप कांप रहा है उसीका यह इतिहास है। जारके अत्याचारोंसे पीड़ित प्रजा जारको गद्दीसे हटानेमें कैसे समर्थ हुई, मजदूर और किसानोंने किस प्रकार जार-शाहीको उलटनेमें काम किया, आज उनकी क्या दशा है इत्यादि बातें जाननेको कौन उत्सुक नहीं है ! प्रजातन्त्र-राज्यकी महत्ताका बहुत ही सुन्दर वर्णन है। प्रजाकी मर्जी बिना राज्य नहीं चल सकता और रूस ऐसा प्रबल राष्ट्र भी उलट दिया जा सकता है, अत्याचार और अन्यायका फल सदा बुरा होता है इत्यादि बातें बड़े सरल और नवीन तरीकेसे लिखीं गयी हैं। लेनिनकी बुद्धिमत्ता और कार्यशैली पढ़कर दांतों तले अँगुली दबानी पड़ती है। किस कठिनता और अध्यवसायसे उसने रूसमें पंचायती राज्य स्थापित किया इसका विवरण पढ़कर मुर्दा दिल भी हाथों उछलने लगता है। १३६ पृ० की पुस्तकका मूल्य केवल ॥ु माम्र रखा गया है।

३६—टालस्टायकी कहानियां

सं० श्रीयुक्त प्रेमचन्दजी

यह महात्मा टालस्टायकी संसार-प्रसिद्ध कहानियोंका हिन्दी अनुवाद है। यूरोपकी कोई ऐसी भाषा नहीं है जिसमें इनका अनुवाद न हो गया हो। इन कहानियोंके जोड़की कहानियां सिवा उपनिषदोंके और कहीं नहीं हैं। इनकी भाषा जितनी सरल, भाव उतने ही गम्भीर हैं। इनका सर्वप्रधान गुण यह है कि ये सर्व-प्रिय हैं। धार्मिक और नैतिक भाव कूट कूटकर भरे हैं। विद्यालयोंमें छात्रोंको यदि पढ़ाई जायँ तो उनका बड़ा उपकार हो। किसानोंको भी इनके पाठसे बड़ा लाभ होगा। पहले भी कहींसे इनका अनुवाद निकला था परन्तु सर्वप्रिय न होनेके कारण उपन्यास सम्राट् श्रीयुक्त प्रेमचन्दजी-द्वारा सम्पादित कराकर निकाली गयी हैं। सर्वसाधारणके हाथोंतक यह पुस्तक पहुंच जाय इसीलिये मूल्य केवल १ु रक्खा गया है।